ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 8 अंक 30-31 अप्रैल-सितम्बर 2022

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

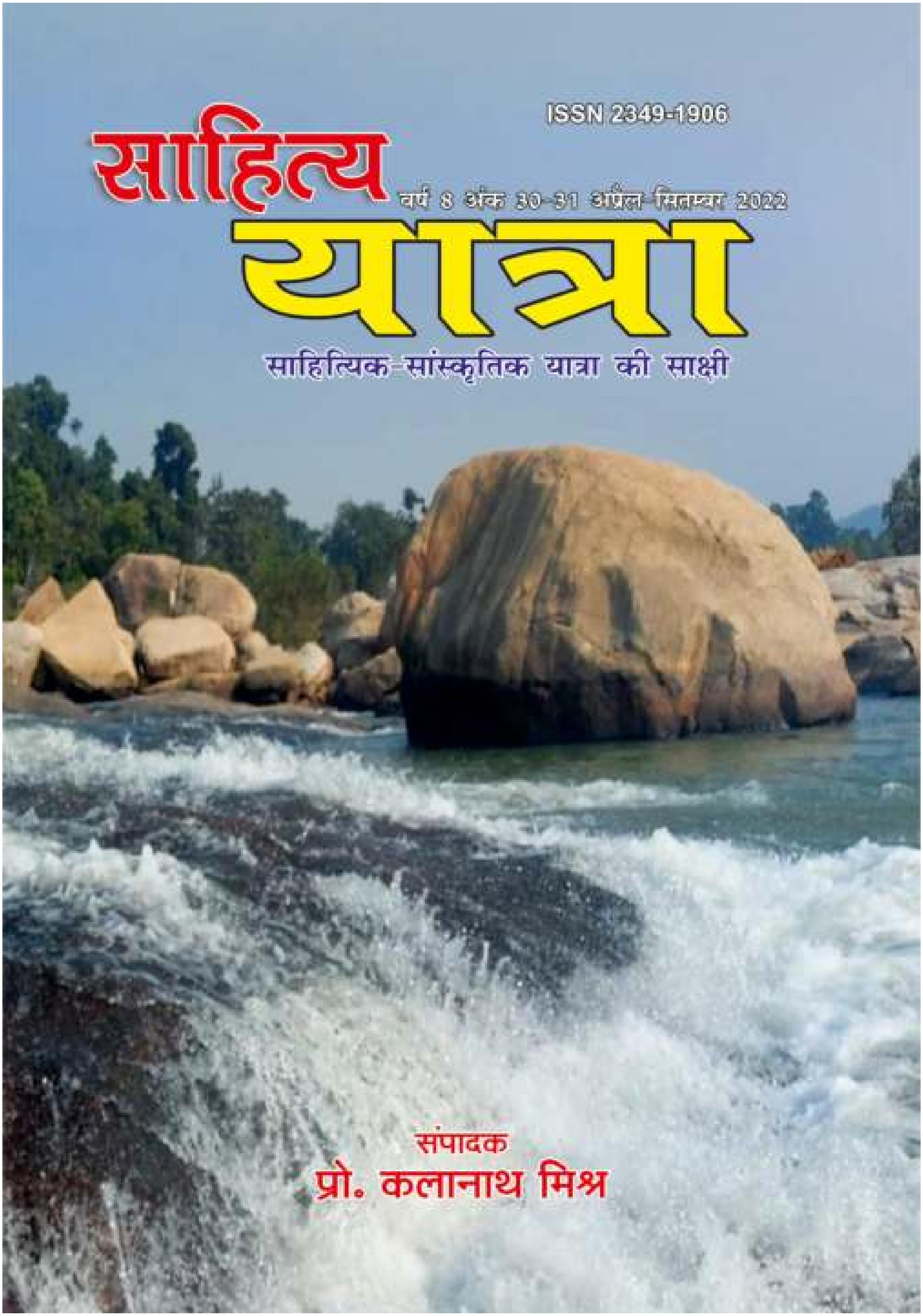

संपादक

प्रो. कलानाथ मिश्र

बिहार विभूति डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह की 135वीं जयंती के अवसर पर कार्यक्रम के उद्घाटन के दौरान उपस्थित विद्वतजन।

आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर ए.एन. कॉलेज पटना में, साहित्य संस्कृति फाउंडेशन, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा एवं हिंदी विभाग ए.एन. कॉलेज पटना के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करते विद्वतजन।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत एवं आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की पावन स्मृति पर आयोजित संगोष्ठी में डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त, माननीय कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की अध्यक्षता में आयोजित संगोष्ठी में सम्माननीय अतिथि डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी, कोलकाता, डॉ. कलानाथ मिश्र, पटना डॉ. आनन्द कुमार सिंह, भोपाल आदि।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक
प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	500/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1500/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1500/-
आजीवन सदस्यता	:	15000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। ऑन लाईन खाते में डाल दिया हूँ (रेफरेन्स नं०) कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०... द्वारा..

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :...

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :.................................... दिनांक :......................................

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1

खाता क्रमांक- 6236000100016263, IFSC- PUNB0623600

वेबसाईट - www.sahityayatra.com

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-8 | अंक-30-31 | अप्रैल-सितम्बर, 2022

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ प्रेम जनमेजय

डॉ॰ हरीश नवल

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

सहायक संपादक

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

डॉ॰ करुणा पीटर 'कमल'

अमित कुमार मिश्र

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा पूर्व अनुमोदित

विद्वत संपादक मंडल द्वारा समीक्षित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)

मोबाइल : 8434880332/09304302308/09835063713

ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com

वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 100/- (एक सौ रुपये मात्र)

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास, सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : प्रो॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

बातचीत

ख्यातिलब्ध कथा लेखिका चित्रा मुद्‌गल के साथ डॉ. कलानाथ मिश्र की अंतरंग बातचीत 15

आलेख

खुद एक लोकगीत बन गए सत्यार्थी जी 42
प्रकाश मनु

सीता की प्रतीति 56
डॉ. मंगलमूर्त्ति

राजी सेठ : मनुष्य की अप्रतिहत जिजीविषा 63
डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ

लीलाधर मंडलोई की कविता चुनौती भरे समय में एक सार्थक वक्तव्य 69
डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

साक्षात्कार

डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर के साथ डॉ. गायत्री देवी की बातचीत 78
डॉ. गायत्री देवी जे. लालवानी

आलेख

हिन्दी साहित्य में महिलाएँ 84
सुधा गोयल

राहुल सांकृत्यायन : साहित्य का महापण्डित 88
शंकर लाल माहेश्वरी

सृजन, विसर्जन का वृंदगान : असाध्य वीणा 92
कृष्ण बिहारी पाठक

कालजयी 'कालिदास' और महावीर प्रसाद द्विवेदी 99
डॉ. प्रभात कुमार मिश्र

यशोधरा में राहुल का स्थान तथा गुप्त जी का संदेश 111
डॉ. शशिभूषण प्रसाद सिंह

संस्मरण

आलोचक डॉ. नंदकिशोर नवल की कविता में प्रेम 117
पंडित विनय कुमार

आलेख
नए दौर में नए तरीके से हो साहित्य पत्रकारिता 126
डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'
लोक साहित्य में बिखरी लोक संस्कृति 129
बृजेश आनन्द राय
कहानी
यूट्रेस 146
डॉ. रंजना जायसवाल
कविता
नदी हूँ मैं 152
सुमेधा पाठक
आलेख
शमशेर की कवितओं में रूप, रंग, गंध और स्पर्श की अभिव्यक्ति 155
डॉ. अर्चना त्रिपाठी
पुस्तक समीक्षा
सच्चिदानंद प्रेमी का काव्य संग्रह 'कैसे गीत गाऊँ' 161
डॉ. करुणा पीटर 'कमल'
अन्तस की पुकार 166
राम किशोर सिंह विरागी
आलेख
'गीता महाबोध' का दर्शन 170
डॉ. हरेराम सिंह
''राष्ट्र की प्रगति में साहित्य का योगदान'' 175
रूमन कुमारी
साहित्यिक खबर
मीठेश निर्माही साहित्य अकादेमी 184
आलोक रावल
रिपोर्ट
'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत एवं आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की पावन स्मृति पर संगोष्ठी' 186
डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त
पूर्वोत्तर भारत के अध्यात्म, कला, साहित्य, संस्कृति और फोटोग्राफी के केन्द्र थे हरिलाल कुंज जी : पूर्णिमा मनाई गई श्री हरिलाल कुंज की जन्मशती-समारोह 190

सम्पादकीय

प्रकृति के चितेरे पंत

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल–जाल में,
उलझा दूँ मैं कैसे लोचन।

इस वर्ष 5 जून को पर्यावरण दिवस के अवसर पर पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय के अन्तर्गत जेडी विमेंस कॉलेज एवं विश्व संस्कृत हिन्दी परिषद् दिल्ली के संयुक्त तत्वाधान में ''साहित्य और पर्यावरण'' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। अध्यक्षता प्रसिद्ध कवि 'आलोक धन्वा' कर रहे थे। मुझे पंत का प्रकृति प्रेम विषय पर विशिष्ट वक्ता के रूप में बोलना था। प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत जी का प्रकृति प्रेम से सराबोर व्यक्तित्व एवं काव्य पर व्याख्यान के बाद भी मन में विचार आता रहा व उक्त पंक्तियाँ सहसा मेरे मानस पटल पर उभर आईं। उनका प्रकृति के प्रति जो अनुराग है वह भावुक करनेवाला है। और उनका यही प्रकृति प्रेम मुझे इस बार का संपादकीय उनपर लिखने के लिए प्रेरित कर रहा है। अतः यह संपादकीय पंत और प्रकृति के नाम। वैसे तो हिन्दी साहित्य का प्रत्येक काल प्रकृति चित्रण से परिपूर्ण है। किन्तु छायावाद के अग्रणी कवि पंत जी ने जिस तरह प्रकृति को देखा, आत्मसात किया, वह अद्भुत है।

पंत जी प्रकृति प्रेम से इतने अभिभूत थे कि उन्होंने नारी सौंदर्य के आकर्षण को भी प्राकृतिक सौंदर्य के सामने गौण मान लिया था। उन्होंने किसी किशोरी के बाल जाल में अपने नयनों को उलझाने की चाह की थी किन्तु वे वृक्षों की छाया को छोड़कर प्रेयसी के केशों में उलझना स्वीकार नहीं कर सके। यौवनावस्था में पंत जी के मन को उषा, फूल, नदी, निर्झर आदि सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहे।

मेरे विद्यार्थी जीवन में मेरे गुरु प्रोफेसर अनंत लाल चौधरी ने पंत जी को समझाने के लिए मेरे नोट्स पर एक पंक्ति लिखी– 'प्रकृति के प्रति पंत का प्रेम जन्मना है, नारी उनके जीवन में उसके बाद आती है।' पंत जी के व्यक्तित्व को समझने में ये पंक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। आज चार दशक बाद भी जब लिखने बैठा हूँ तो वही पंक्ति आधार बना है। पंत ने अपने काव्यों में प्रकृति का केवल चित्रण ही नहीं किया है, उन्होंने प्रकृति को जिया है, हर सांस में उसे महसूस किया है। प्रकृति और पंत में एक नैसर्गिक संबंध है। इसीलिए पंत जब

प्रकृति की चर्चा करते हैं, प्रकृति का वर्णन करते हैं तो प्रकृति मूर्तिमान रूप में सामने आकर खड़ी हो जाती है। वही प्रकृति जिसके द्वारा हमारा ब्रह्मांड सृजित है, जो मानव के लिए ईश्वर प्रदत्त अनमोल उपहार है। प्रकृति मनुष्य की सहचर, उसकी पोषक, उसको धारण करनेवाली, उसकी जीवनदायिनी है। प्राकृतिक हवा, पानी, वन–उपवन, जीव–जन्तु, वनस्पति, हमारे आस–पास के लोग और वह सबकुछ जो प्रकृति से प्रदत्त है, सब मिलकर हमारे रहने योग्य पर्यावरण का निर्माण करते हैं। हम प्रकृति के बगैर ब्रह्मांड और जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं।

प्रकृति का चित्रण करते हुए पंत जी ने अपने काव्यों में कई बार बाल, वाला, बालिके, शब्द का प्रयोग किया है। नारी रूप में ही उन्होंने प्रकृति को देखा है और वाला उससे सतत् प्रभावित होते रहे हैं तथा प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं। पंत प्रकृति को नारी के विविध रूप में जानने की चेष्टा करते प्रतीत होते हैं। बचपन में माँ के रूप में, युवावस्था में प्रिया, संगिनी, सहचरी के रूप में प्रकृति से उनका रागात्मक संबंध रहा। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माँ का निधन हो गया। माँ की कमी उन्हें सदैव सालती रही। उन्होंने प्रकृति में ही अपनी माँ के स्नेह व ममता को देखा। ऐसे में जब उन्हें कौसानी में प्रकृति के रूप में माँ की गोद का सहारा और वात्सल्य मिला, तो मानों वे उसके लाड़ से अपने आप को पूरी तरह सराबोर कर लेना चाहते थे :–

मातृहीन, मन में एकाकी,
सजल बाल्य था स्थिति से अवगत,
स्नेहांचल से रहित,
आत्म स्थित, धात्रि पोषित,
नम्र, भाव–रत

पंत को कवि बनाने का श्रेय प्रकृति को है और प्रकृति को चेतन बनाने का सेहरा पंत को जाता है। उन्होंने अपने प्रकृति परिवेश के विषय में लिखा है – ''कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुर्वांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घंटो एकांत में बैठा प्रकृति दृश्य को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर चेतना को तन्मय कर देता था।'' प्रकृति की रमणीयता व सुंदरता ने पंत जी के जीवन में माँ की कमी को न केवल पूरा किया, बल्कि अपनी ममता भरी छाँह में पंत जी के व्यक्तित्व का विकास भी किया। जिस प्रकार एक बच्चे के लिए उसकी माँ सबकुछ होती है, उसी प्रकार पंत जी के लिए प्रकृति ही सबकुछ थी। उनकी रचनाओं में उनका प्रकृति से माँ सा नेह–प्रेम पाने का वर्णन मिलता है।

'माँ से बढ़कर रही धात्री तू बचपन में मेरे,

धात्री कथा रूपक भर, तूने किया जनक बन पोषण
मातृ हीन बालक के सिर पर, वरद हस्त धर गोपन।'

आरंभिक कविताओं के संबंध में कवि ने वीणा की भूमिका में कहा है– ''मेरा मंद कवि या प्रार्थी निर्बोध, लज्जा भीरु कवि, वीणा वादिनी के चरणों के पास बैठ स्वर साधना करते समय अपने आप को उत्सुक हृतंत्री से बार–बार चेष्टा करते रहने पर, अत्यंत असमर्थ उंगलियों के उल्टे सीधे हाथों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट, अस्पष्ट कवि जागृति कर सका है, इस वीणा के रूप में आपके समक्ष उपस्थित है।''

पंत जी ने अपनी आरंभिक कविताओं में प्रकृति के बिंबों को इतने अनूठे व सजीवता से चित्रित किया है कि कुछ विद्वान इन्हें हिन्दी साहित्य का वडर्सवर्थ मानते थे। इनकी प्रेम रस की कविताएँ मानव मन को सराबोर कर देती हैं। पंत जी की एक खास विशेषता यह भी रही है कि वे प्रत्येक जगह के सौंदर्य को संवेदना के सूक्ष्म स्तर तक जाकर सराहते और उसे अपने काव्यों में उकेरते थे। वे बड़ी खूबसूरत, सशक्त और समृद्ध भाषा में सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते थे।

पंत जी बिम्ब विधान की परिकल्पना करते हुए लिखते हैं– काव्य को परिपूर्ण करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। उनका मानना था कि काव्य में संगीतात्मकता प्रधान तत्व है। पंत जी की कविता में कल्पना जगत की प्रधानता है। उनकी पल्लव व गुंजन काव्य रचना साहित्य जगत में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 'प्रथम रश्मि का आना रंगीनी' वीणा की महत्वपूर्ण कविता है। ऐसी कविताओं में पंत जी का जिज्ञासा भाव अभिव्यक्त हुआ है। इस कविता में अनुभूति, कल्पना, सौंदर्यनुभूति एवं संगीत का संतुलित समन्वय कुछ इस तरह दृष्टिगत होता है–

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना।
कहाँ, कहाँ हे बाल–विहंगिनि!
पाया तूने वह गाना।
सोयी थी तू स्वप्न नीड़ में,
पंखों के सुख में छिपकर,
ऊँघ रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी–से जुगनू नाना।

पंत जी की प्रकृति संबंधित कविताओं में उनकी जिज्ञासा भावना के साथ ही रहस्य भावना भी व्यक्त हुई है। कवि प्रकृति में अगोचर सत्ता के स्पंदन को महसूस करते हैं। वे उस अदृश्य सत्ता को प्रकृति में देखते व निहारते हैं। उनकी 'प्रथम रश्मि', 'मौन निमंत्रण', 'एक तारा' आदि ऐसी कविताएँ हैं जिसमें कवि की सूक्ष्म और गहन निरीक्षण दृष्टि के साथ–साथ

उनकी आध्यात्मिक मान्यता भी प्रकट हुई है। उनकी 'मौन निमंत्रण' कविता में प्रकृति के माध्यम से रहस्यमयी सत्ता की व्यंजना की गयी हैं–

सघन मेघों का भीमाकाय
गरजता है तब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःवास,
प्रखर झरती जब पावस–धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन!

पंत को प्रकृति के तन–मन का सहज ज्ञान है क्योंकि उन्होंने उसकी सूक्ष्म स्पंदनों की धड़कन सुनी है। कवि की प्रतिभा ने प्रकृति के रम्य प्रांगण में रास रचाया है। यही कारण है कि पंत ने प्रकृति के चेतन स्वरूप का चित्रण किया है। पंत की प्रकृति में मानव हृदय की संवेदनशीलता है क्योंकि वह मानव हृदय के प्रेम को समझने में समर्थ है। कवि और प्रकृति एक–दूसरे के लिए आलंबन है।

ज्ञात रहस्य मुझे अब क्यों एकाकी जीवन,
निज करुणा में मुझे वर लिया तूने गोपन।
नहीं जानता माँ तुम कब कैसे आती हो,
बन जीवन प्रेरणा निति नव मुस्काती हो।

पंत जी के काव्य में प्रकृति निर्जीव, जड़ वस्तु होकर एक सरूप, साकार और सजीव सत्ता के रूप में उपस्थित हुई है। प्रकृति का कण–कण कभी उनमें जिज्ञासा उत्पन्न करती है, तो कभी उनके मन को उद्वेलित करती है। संध्या, प्रातः, बादल, वर्षा, लता, पेड़, वसंत, नदी, निर्झर, पक्षी, भ्रमर, तितली, चांदनी आदि का मानवीकरण करने से सभी अचेतन–सचेतन प्राणी के रूप में दृष्टिगत होते हैं। ये सभी कवि के मन को आंदोलित करते हैं। यहाँ संध्या का एक जिज्ञासा पूर्ण चित्र दर्शनीय है। ''संध्या'' कविता में कवि ने संध्या को नव युवती के रूप में चुपचाप पृथ्वी पर पर्दापण करते हुए चित्रित किया है :–

''कौन तुम रूपसी कौन
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज माया में छवि आप
सुनहला फैला केश कलाप
मंत्र मधुर मृदु मौन; ''

पंत ने विभिन्न रूपों में प्रकृति का चित्रण किया है। आलंबन, उद्दीपन, अलंकारिक,

रचनात्मक, दार्शनिक उद्भावना, रहस्यात्मक, मानवीकरण और नारी रूप आदि विभिन्न रूपों में प्रकृति उनके काव्यों में दिखती है।

कवि– दर्शन तर्कसम्मत नहीं, भावना तथा प्रेरणा–सम्मत होता है। राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिंच कर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते, हमारा हृदय उनके हृदय में प्रवेश कर एक भाव हो जाता है। प्रत्येक शब्द एक संकेत मात्र, इस विश्व–व्यापी संगीत की अस्फुट झंकार मात्र है। जिस प्रकार किसी प्राकृतिक–दृश्य में, उसके रंग – बिरंगी पुष्पों, लाल – हरे – पीले, छोटे – बड़े तृण – गुल्म – लताओं, ऊँची – नीची, सघन–विरल वृक्षावलियों, झाड़ियों, छाया–ज्योति की रेखाओं तथा पशु – पक्षियों की प्रचुर ध्वनियों का सौंदर्य–रहस्य उनके एकांत सम्मिश्रण पर ही निर्भर रहता, और उनमें से किसी एक को मैत्री अथवा संपूर्णता से अलग कर देने पर वह अपना इंद्रजाल खो बैठता है, उसी प्रकार काव्य के शब्द भी परस्पर अन्योन्याश्रित होने के कारण एक–दूसरे के बल से सशक्त होते रहते हैं। अपनी संकीर्णता की झिल्ली तोड़, तितली की तरह भाव तथा राग के रंगीन पंखों में उड़ने लगते और अपनी डाल से पृथक होते ही शिशिर की बूँद की तरह अपना अमूल्य–मोती गँवा बैठते हैं। इन पंक्तियों में सौंदर्य के सहस्त्रदल को अपनी प्रतिभा के सूर्य से पंत जी ने पूर्ण प्रस्फुट कर दिया है।

गाओ, गाओ विहग–बालिके,
तरुवर से मृदु मंगल–गान
मैं छाया में बैठ, तुम्हारे
कोमल स्वर में कर लूँ स्नान,
–हाँ साखि! आओ, बाँह खोल,
हम लगकर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में,
हो जावें द्रुत अंतर्धान!

प्रकृति के अनंत रमणीय प्रसार में काव्योपयोगी असीम सौंदर्य, अगाध माधुर्य अगणित रंजनकारी ध्वनियाँ आकर्षक वर्ण रूप, आकृतियाँ भरी पड़ी हैं। रूप माधुरी के भंडार से काव्य अपने को सदा ही संपन्न रखता है।

पंत जी पर बहुत आरोप लगाया गया। कहा गया कि 'वे ध्वनि नहीं प्रतिध्वनि' है। वाणी में उन्होंने इसका उत्तर दिया और वे कहते हैं–

मैं भाव नहीं केवल प्रभाव हूँ।
सूझ नहीं केवल सुझाव हूँ।
मैं केवल स्वभाव हूँ।

हिन्दी साहित्य के इस महत्वपूर्ण लेखक ने उच्छवास, वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन,

युगांत, ग्राम्य, स्वर्ण किरण जैसे कई अप्रतिम कृतियों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है। जिस प्रकार अनेक रंगों में हंसती हुई फूलों की वाटिका को देखकर दृष्टि सहसा आनंद – चकित रह जाती है, उसी प्रकार जब काव्य चेतना का सौंदर्य हृदय में प्रस्फुटित होने लगता है, तो मन उल्लास से भर जाता है।

कोई यथार्थ से जूझकर सत्य की उपलब्धि करता है और कोई स्वप्नों से लड़कर। यथार्थ और स्वप्न दोनों ही मनुष्य की चेतना पर निर्मम आघात करते हैं, और दोनों ही जीवन की अनुभूति को गहन गंभीर बनाते हैं।

यथार्थ का दर्पण जिस प्रकार जगत की बाह्‌य परिस्थितियाँ हैं, उसी प्रकार आदर्श का दर्पण मनुष्य के भीतर का मन है। स्वप्नद्रष्टा या निर्माता वही हो सकता है, जिसकी अंतदृष्टि यथार्थ के अंतस्तल को भेदकर उसके पार पहुँच गई हो, जो उसे सत्य न समझकर केवल एक परिवर्तनशील अथवा विकासशील स्थिति भी मानता हो।

जिस कोमलकांत पदावली ने कवि को सुकुमार कहा, उस भाषा के निर्माण में छायावादियों का अमूल्य योगदान है– हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह 'पिय' को 'प्रिय' कहने लगी। उसका किशोर–कंठ फूट गया, अस्फुट–अंग कट–छंट गए, उनकी अस्पष्टता में एक स्पट–स्वरूप की झलक आ गई। वक्ष विशाल उन्नत हो गया। पदों की चंचलता दृष्टि में आ गई। वह विपुल विस्तृत हो गई। हृदय में नवीन भावनाएँ, नवीन कल्पनाएँ उठने लगें, ज्ञान की परिधि बढ़ गई। चारों दिशाओं से त्रिविध–समीर के झोंके उसके चित्त को रोमांचित करने लगे, उस चाँद में नवीन सौन्दर्य, मेघ में नवीन गर्जन सुनाई देने लगा। वह अज्ञात–यौवना कलिका अब विकसित हो गई। प्रभात के सूर्य ने उसका उज्ज्वल–मुख चूम, उसको अजस्त्र आशीर्वाद दे दिया। चारों ओर से भीड़ आकर उसे नव–नव संदेश सुनाने लगे। उसके सौरभ का वायुमंडल इधर–उधर वहन करने लग गया। विश्वजननी प्रकृति ने उसके भाल में स्वयं अपने हाथ से केशर का सुहाग–टीका लगा दिया। उनके प्राणों में अक्षय–मधु भर दिया है। वस्तुतः नई अस्मिता का संबंध नई भाषा से, नए शब्दों से जुड़ता है :–

जग के उर्वर–आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु–लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर–नूतन!

कैलाश जैन कहते हैं – ''प्रसाद और निराला के साथ मिलकर पंत ने हिन्दी को कविता की न केवल सौम्य, सुकुमार और सशक्त भाषा के रूप में एक सर्वथा नवीन प्रतिष्ठा

दिलवाई, बल्कि हिन्दी काव्य के लिए एक बिल्कुल नई शैली भी ईजाद की।''

पंत जी ने नौ वर्ष की अल्पायु में मेघदूत, अमरकोश, चाणक्य आदि संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। पंडित अम्बादत्त जोशी से पंत ने फारसी तथा अपने पिता से अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। पंत जी आजीवन अविवाहित रहे। उन्होंने कक्षा सातवीं या आठवीं में अध्ययन के दौरान ही कविकर्म को अपनाने का निश्चय कर लिया था। सुधाकर, मर्यादा तथा अल्मोडा के स्थानीय अखबारों में उनकी रचनाएँ छपती थीं।

पंत शब्द शिल्पी थे। पंत जी की शैली अत्यंत सरल किन्तु प्रभावशाली है। सरलता, मधुरता, चित्रात्मकता, कोमलता और संगीतात्मकता इनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पंत की इन्हीं विशेषताओं के कारण अज्ञेय ने कहा था कि, 'पंत जी से भावी रचनाकार पीढ़ी सीखने का कार्य करेगी।'

पंत का व्यक्तित्व प्रभावशाली, कलात्मक व आकर्षक था। डॉ. बलदेव के शब्दों में, 'कंधे तक लहराते घुंघराले रेशमी बाल, हल्का ताम्रवर्णी रंग, सौम्य मुखमंडल, तीखे नाक–नक्श, सुनहले फ्रेम के चश्मे से झांकते राजीव नयन, पतले होंठ, होंठो पर खेलती मंद मृदु स्मिति....देखता ही रह गया।'

पंत जी के व्यक्तित्व से जुड़ी एक खास बात डॉ. बच्चन सिंह द्वारा ज्ञात होती है कि वे अपने बाल स्वयं ही काटते–छाँटते थे, उसी तरह जैसे अपनी कविता की पंक्तियों को काट–छाँट कर सुंदर बनाते थे। इसी संदर्भ में सरस्वती के भूतपूर्व संपादक पंडित देवीदत्त शुक्ल कहा करते थे कि पंत जी के बालों में भी कवित्व है।

प्रकृति के प्रत्येक क्रियाकलाप मनुष्य के लिए प्रेरणादायी हैं। यह मानव जगत को शिक्षा देती है। पंत जी ने प्रकृति के माध्यम से जीव जगत को उपदेश देने का प्रयास किया है तथा वे जीवों को आशावादी बनकर आत्म चिंतन करने के लिए प्रेरित करते भी प्रतीत होते हैं। प्रातःकालीन प्राकृतिक सुषमा जीवों को आशावान बनाते हुए यह बताती है कि सांसारिक जीवन बहुत सुंदर और आनंदकारी है। इसे पंत जी अप्रतिम ढंग से व्यक्त करते हुए कहते हैं– ''हंसमुख प्रसून सिखलाते, पलभर है जो हंस पाओ। अपने उर की सौरभ से, जग का आंगन भर जाओ।।''

अल्मोड़ा जिले के कौसानी में जन्मे सौंदर्यवादी कवि सुमित्रानंदन पंत एक विचारक, दार्शनिक और मानवतावादी कवि माने जाते हैं। पंत जी का संपूर्ण साहित्य 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के आदर्शों से प्रभावित है। हिन्दी साहित्य को अक्षुण्ण बनाने में सुमित्रानंदन पंत के महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार जैसे सम्मानों से सम्मानित किया गया।

77 वर्ष की आयु में प्रकृति के अनुपम चितेरे अपने स्थूल काया को छोड़कर अपनी

कीर्ति काया में समा गए किन्तु अपने अनुपम साहित्य सृजन के कारण साहित्य जगत में सदा के लिए अमर हो गए हैं। उन्हें मैं इस संपादकीय के माध्यम से अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

'साहित्य यात्रा' के इस अंक में सुप्रसिद्ध कथा लेखिका आदरणीया चित्रा जी के साथ संपादक प्रो0 कलानाथ मिश्र की लंबी बातचीत को प्रकाशित किया जा रहा है। इसके साथ–साथ वरिष्ठ साहित्यकार प्रकाश मनु जी का संस्मरण 'खुद एक लोकगीत बन गए सत्यार्थी जी', मंगलमूर्ति जी का आलेख 'सीता की प्रतीति', डॉ. सुधा गोयल का आलेख 'हिंदी साहित्य में महिलाएँ', डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी का आलेख 'लीलाधर मंडलोई की कविता : चुनौती भरे समय में एक सार्थक वक्तव्य', वेदप्रकाश अमिताभ जी का लेख 'राजी सेठ : मनुष्य की अप्रतिहत जिजीविषा', श्री शंकरलाल माहेश्वरी का आलेख 'राहुल सांत्यायन : साहित्य का महापंडित', ख्यातिलब्ध साहित्यकार डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर जी का साक्षात्कार, पंडित विनय कुमार का 'आलोचक डॉ. नंदकिशोर नवल की कविता में प्रेम', सुमेधा जी की कविता 'मैं नदी हूँ', डॉ. अर्चना त्रिपाठी का 'शमशेर की कविताओं में रूप, रंग, गंध और स्पर्श की अभिव्यक्ति' आदि के साथ अन्य कई महत्वपूर्ण आलेख, साहित्यिक रिपोर्ट, संस्मरण, पुस्तक–समीक्षा आदि भी प्रकाशित किया जा रहा है। यदि 'साहित्य यात्रा' का यह अंक भी पूर्व के अंकों की तरह सुधी पाठकों को संतोष दे सकेगा, तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा। 'साहित्य यात्रा' परिवार को पाठकीय प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

कलानाथ मिश्र

ख्यातिलब्ध कथा लेखिका चित्रा मुद्गल के साथ डॉ. कलानाथ मिश्र की अंतरंग बातचीत

विगत दिनों मैं दिल्ली गया था। ज्ञात हुआ कि हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका और मेरी दीदी आदरणीया चित्रा मुद्गल जी अस्वस्थ हैं। मैं उनसे मिलने उनके आवास पर गया। दीदी के रुग्ण शरीर को देखकर मन दुःखी हुआ, किन्तु उस स्थिति में भी उनकी रचनात्मकता और साहित्यिक ऊर्जा देखकर मैं दंग रह गया। मन–ही–मन विचार आया कि क्यों न इस पल को स्मरणीय बनाया जाए। सृजनधर्मिता की ऊर्जा में आकंठ डूबी चित्रा जी से मैंने कहा कि मैं चाहता हूँ कि आपसे हो रही इस अंतरंग बातचीत को 'साहित्य यात्रा' के लिए रिकॉर्ड कर लूँ।

और इस प्रकार चित्रा जी से एक लंबी अंतरंग बातचीत हुई, जिनमें बहुत कुछ अनछुए पहलू भी समा गए हैं। निश्चय ही इससे साहित्य यात्रा के पाठक रू–ब–रू हो सकेंगे।

प्रस्तुत है कथा लेखिका चित्रा मुदगल जी के साथ साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र की यह अनछुई लंबी बातचीत।

दीदी, आप हिन्दी साहित्य और देश की सुप्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आमतौर पर लोग ये पूछते हैं कि साहित्य लिखने की प्रेरणा शुरुआती दौर में कहाँ से मिली, लेकिन मैं जानता हूँ कि आपने 'डोमिन काकी' के साथ कहानी के क्षेत्र में प्रवेश किया और फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। आपकी रचना, कहानियाँ सामाजिक संवेदना से उपजी हैं। तो सबसे पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप एक संभ्रांत परिवार से आई हैं, जहाँ धन–वैभव की कोई कमी नहीं थी, फिर भी आपकी जो संवेदना है वह वंचितों के प्रति हुई। यह पीड़ा आपके मन में कैसे प्रस्फुटित हुआ और कैसे आपने लिखना प्रारंभ किया?

बहुत अच्छा लग रहा है कला... कि तुम मुझसे बातचीत कर रहे हो। तुम जानते हो तुमको लेकर बहुत गहरा... गहरा सम्मान है मेरे ह्रदय में, जो तुमने अर्जित किया है।

कला, घर का... परिवेश का.. और उसके इर्द–गिर्द के समाज का... जिस तरह का वातावरण होता है। मुझे लगता है कि कोई भी बच्चा, अगर थोड़ा भी संवेदनशील है, तो वो उसको महसूस करता है। वह उसे महसूस करता है एक दबाव के रूप में..., वह दबाव उसके मन में प्रश्न उपजाते हैं। वह प्रश्न बच्चे के मन में एक द्वंद्व बनकर उमड़ते है। अगर बच्चा सोचने वाला है, तो वह सोचता है कि ऐसा क्यों है? उस बच्चे को ये लगता है कि जब वह शहर में होता है, तो कोई उससे ये नहीं कहता है कि तुम इस गेट से बाहर नहीं जाओगे। बंगले का... अहाते का...वो एक गेट है, उसी से सब बाहर जाते–आते हैं। लेकिन जब वह गाँव में अपने पैतृक घर में होता है, तब उस बच्चे से यह कहा जाता है कि अरे... अरे ये जो दरवाजा है, यहाँ से लड़कियाँ नहीं बाहर जाती... ना आती। उनके लिए घर के पिछवाड़े तीन आँगन छोड़ कर एक बहुत बड़ा सहन है, उसको पार करके एक दरवाजा है, जिससे वो बाहर जाती हैं, चादर ओढ़कर और उसी से वो घर के भीतर आती हैं। एक छः–सात वर्ष के उम्र की, उस बच्ची को टोकना कि अरे! अरे! इससे मत निकल जाना, दरवाजे पर वो सब बैठे हैं, आशय यह होता था कि पुरुष बैठे हैं। तो इस तरह की टोका–टाकी ने उसके बचपन को थोड़ा–सा कठघरे में खड़ा किया, 'लड़की' शब्द ने भी कठघरे में खड़ा किया, लड़के जा सकते हैं... लड़की नहीं जा सकती। इसी तरह से, उसी विसंगति को, कहीं एक अलग तरीके से उसने महसूस किया। अपने आँगन में ही, जो खड़िया होती है, उससे वो खींच करके गिटक खेल रही थी, तो इतने में दादी की आवाज आई कि सुन चितरिया.! मैं गई और मैंने कहा कि दादी.. दादी डोमीन आई हैं। जब मैंने दो तीन बार उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिए कहा, तो उन्होंने कहा कि हिया आऊं तो....हम उनके पास गए, तो उन्होंने एक चाटा लगाया और कहा कि डोमीन काहे कह रही हो, ये तुम्हरी काकी लगती हैं.. रिश्ते में।

अच्छा! पर... दादी ने चाटा क्यों लगाया? इसका आप पर क्या असर हुआ?

उनका कहना था कि इनका डोमीन काकी कहकर पुकारा करो, गुहारा करो। डोमीन...डोमीन कहकर नहीं। अब का है ना... शहर में बाबू नौकरी करत है, तो तुमको कुछ ढंग से सीखावत–पढावात है नहीं। तो वो जो चाटा था, वो कहीं ना कहीं उस बच्ची के द्वंद से

भी जुड़ गया। उसके बाद उन्होंने उसकी संवेदनाओं का एक विस्तार किया, आत्मीयता का विस्तार किया कि ये रिश्ते में नहीं है तुम्हारे, फिर भी यह तुम्हारी काकी लगती है। इस तरह बताया गया कि 'काकी' संबोधन का भी एक रिश्ता है और उस शब्द की बहुत बड़ी गरिमा है।

दो–तीन दिनों बाद की बात होगी। डोमीन ऊपर से दो–तीन टट्टियाँ धो करके नीचे आ गई। नीचे नहा होता है, ये जैसे आंगन है ना... थोड़ा ऐसे ही सिमेंट का चौरस नहा बना हुआ है। वो आकर डेहरी के पास कोने में बैठ गई। तो मैंने दादी को फिर ध्यान दिलाया। वो अपने काम में लगी थी, तो मैंने कहा, 'दादी! दादी! डोमीन काकी आई हैं।' तो बोली, शाहजहाँपुर वाली ऐसा करो, कलेवा उनका ले आओ। पहले नाम नहीं लेते थे। मेरी माँ को जब पुकारना होता, तो प्रतापगढ़ वाली। सब बहुओं का यही था, इसी तरह से पुकारना था, यही उनकी पहचान थी। तो उन्होंने आवाज दी कि कलेवा दे दो और एक टोकरी भर अनाज... पूछ लो डोमीन से कि कौन–सा अनाज चाहिए। ये तो था कि पूछ लो– चावल चाहिए या दाल चाहिए या गेहूँ चाहिए या क्या चाहिए। तो उन्होंने लाकर करके दिया। टोकरी होती है न, जो हाथ से बुनी होती है, उसमें हमारी काकी ने भर करके दिया। उसके साथ मोटी–मोटी रोटियाँ रख करके और उसके ऊपर केलहा आम का अचार, वो समूचा आम होता है, उसको छील करके, चार फाक करके, सिरके में डुबो कर रखते हैं। तो वो एक रख दिया और कहा– 'जाओ, दे आओ।' हम गए, अनाज की टोकरी लेकर तो उन्होंने अपना कोच, हमलोग आँचल को कोच कहते हैं, उसने कोच पसार दिया और कहा– 'बिटिया हेमे डाल दियो।' हमने जब उसमें डाला, तो वह छिटक गया, वह कोच के बाहर चला गया और हम बैठकर उसको सँवारने लगे। यही कहानी है। इतने में दादी भागी–भागी आई और उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर पीछे खींच लिया, फिर एक चाटा मारा। छू लई नयो और फिर मेरी काकी को आवाज दिया कि नहान घर में पानी धर दो, गंगाजल रख दो, इनका नहला दो और इनके बाद तुम नहा लो और दूसरे नहान घर में मेरे लिए भी गंगाजल डालकर पानी भर के रख दो और मेरी भी धोती और पेटीकोट रख दो। यानी वो भी नहाएँगी। उन्होंने मुझे जब चाटा लगाया, तो उन्होंने मुझे छुआ और इसी तरह काकी ने मुझे छुआ, हाथ पकड़ कर ले गई। तो ये जो काकी कहना है, ये बात मुझे समझ में नहीं आई क्योंकि काकी के साथ तो दिन भर हम लपटते ही रहते थे, गुलगुले खाएँगे...ये खाएँगे....वो खाएँगे.... भूख लगी है। तब तुम चाटा नहीं मारती हो, अब मारती हो। काकी नहीं कहा, तो चाटा मारा और कहा तो भी चाटा मारा। यह मेरे लिए कथनी और करनी के अंतर को समझने का एक सबक था। एक बच्चे के मन में द्वंद्व डाला गया कि ये कथनी और करनी का जो अंतर है, कितनी भी सहकारिता की बात कर लिया जाए, कितना भी रिश्तों को नाम और संबोधन दे दिया जाए लेकिन वह जो रिश्ता वंचित के साथ है, वह रहता है। जो छुआछूत का है, वो रहेगा। मेरे लिए यह भी एक सबक था।

आगे चलकर जब मैं हिंदी हाई स्कूल घाटकोपर में पढ़ रही थी, तब मुझे कहानी लिखने के लिए कहा गया और हमने कहानी लिखी– डोमिन काकी। मुझसे पूछा गया कि

कौन–कौन सी कहानियाँ पढ़ी है, तो मैंने कहा, 'दो कहानियाँ पढ़ी :– ठाकुर का कुआँ और प्रसाद जी की सुजाता। उन्होंने कहा कि ठाकुर का कुआँ पढ़ी हो ना। मैंने कहा, 'हाँ, मेरे घर के आगे.. दुआरे भी वैसा कुआँ है। उसमें हमारे घर के लिए ही कहारन पानी भरती है। कोई दूसरा नहीं भर सकता, गेट के अंदर दाखिल नहीं हो सकता था। तो बोले कि कोई प्रसंग याद करो, ऐसे ही कोई प्रसंग याद करो, तो मुझे डोमीन काकी वाली प्रसंग याद आई और मैंने कहानी लिखी।

यही से द्वंद्व की शुरुआत होती है कि लड़की हो, तो यहाँ मुख्य दरवाजे से बाहर नहीं जा सकती हो और भैया जा रहे हैं... बाकी और सब लोग जा रहे हैं, औरतों के लिए, लड़कियों के लिए, पिछला दरवाजा ही है। दुआरे वो खेल नहीं सकती और उसके साथ मुंबई में, वो जो बंगले का अहाता था, उसमें बैडमिंटन खेल सकती है, उसी से वह स्कूल जा सकती है, उसी से जीप निकाली जाती है। अम्मा जो गाँव पहुँचते ही इतना इतना घूँघट काढ़ लेती, वो मुंबई में क्यों नहीं काढ़ती, मुंबई में बिना घूँघट के रहती हैं। जब मैंने दादी से यह प्रश्न किया कि अम्मा से घूँघट क्यों कढ़वा रही हो, तो बोली कि घूँघट तो मर्दों से बचने के लिए होता है। मैंने कहा कि आप मर्द थोड़ी हैं, आपके सामने घूँघट क्यों काढ़ती हैं और जब नहा–धोकर चूल्हे के सामने जाती? तो भी घूँघट काढ़ लेती है। यह तो गलत बात है। इस पर अम्मा ने भी मुझे डाँटा कि तुम दादी से ऐसे, मालकिन के मुँह नहीं लगता कोई, तुम ऐसे मुँह लगती हो, यह ठीक नहीं है। इसका अर्थ है कि कहीं ना कहीं मेरे भीतर जानने की और उसकी जो एक विसंगति है, उसके बारे में सोचने की आदत जिज्ञासावश या चाटे की वजह से उत्पन्न हुई।

एक तार्किक विवेचन की मनोवृत्ति आपके भीतर मन में थी। इस तार्किक विवेचन का आपके बालग्मन पर कैसा प्रभाव पड़ा?

हाँ, बच्चा तो नहीं पहचानता ना कि यह क्या हो रहा है? वो क्यों रो रहा है? मुंबई में अम्मा भी कभी हाथ नहीं उठाती और पिता के अ... हूँ... से ही हमलोग काँपते थे। तो चाटे का प्रश्न ही कहाँ उठता था? और जब तक वो घर में रहते थे, उनके साथ एक आतंक घर में रहता था। वह आतंक जैसे ही जीप स्टार्ट हुई, तो घुर्र...घुर्र...के साथ ऐसा लगता जैसे आतंक से मुक्त हो गए। तो कला, ऐसी स्थितियाँ और दोहरापन मुझे शहर और गाँव से महसूस हुआ। अक्सर ऊपर टट्टिइयाँ होने के बाद भी, चाहे शाहजहाँपुर वाली चाची हो, चाहे पूरबगाँव वाली हो, चाहे अम्मा हो, ये लोग शाम को भी और सुबह भी, लोटा लेकर खेतों में जाते थे, ऊपर नहीं जाते थे इसीलिए नहीं जाते थे कि इन औरतों का, पूरे गाँव की औरतों का मिलन स्थल होता था। तो वहाँ ये मिलती थी, ये खड़ी रहती थी और आपस में दुख–सुख बाँटती थी। बाद में समझ में आया कि जाति से ऊपर है तो ठीक है। लेकिन जब ये वहाँ बाहर जाती हैं, खेतों में....तो और घरों की औरतें भी आती हैं, इमली तरखी है... वो मिल रही है, ये मिल रही है, तो हमको भी बड़ा मजा आता था। हम जाते थे, इतने बड़े लोटे में तो कुछ होता नहीं है, तो हम वहीं ट्यूबल में धक–धक करके, वो चल रहा था....तो पानी भर ले आते थे। जो छोटी–छोटी नालियों से बह रहा है। हमें लगा कि ये दोहरा–तिहरापन...इस तरह से...ये

रिवाज है...ये क्या है..... । ये सारे प्रश्न सिर्फ मुझे, मेरे मन में बहुत घुमड़ते थे, मेरी छोटी बहन थी केशा, उसको ऐसा कुछ नहीं लगता था। और लड़के को शायद बिल्कुल भी नहीं लगता था क्योंकि उनको तो शहर में भी सम्मान मिल रहा है, खैर वे तो डॉन बॉस्को हॉस्टल में रहते थे, लखनऊ में रहे, तालुकेता में पढ़े। और घर में आए, तो भी... भले कम आना होता था लेकिन फिर भी आना होता था तो उनको कोई रोक–टोक नहीं थी। सबसे पहले घर में पुरुष पार्टी खाना खाएँगे, लड़के खाएँगे, फिर लड़कियों का नंबर आएगा।

तो ये जो विभेद था, उसको लेकर आपके मन में उलझन थी। क्या यह उलझन समय के साथ सुलझ पाई?

हाँ, चाँदी की थाली में बाबा बैठेंगे और हमारे भैया कुंवर कमलेश बहादुर सिंह बैठेंगे। पिता तो होते नहीं थे। ये सारी चीज थी। तुम्हारी तरह मेरे मन में वंचितों के प्रति जो प्रश्न है... जब हम भी लोटा लेकर मजे–मजे जा रहे हैं, तो देख रहे हैं कि जिस चमरा टोली के सामने से गुजर रहे हैं, वहाँ सब जगठ हो गई है और वहाँ स्त्री भी बाहर अपने दरवाजे पर डोल रही है और पुरुष भी डोल रहा है और बच्चे भी डोल रहे हैं, वहाँ कोई प्रतिबंध नहीं है। लेकिन हम लोगों को प्रतिबंध थी कि हम दरवाजे नहीं जा सकते थे।

दीदी, सृजनात्मकता जो लेखन है, इसके अपने दायित्व हैं। आप एक तरफ रचनाधर्मिता से जुड़ी रही, दूसरी ओर सामाजिक गतिविधियों से जुड़ी रहीं, एक्टिविट्स् की तरह कई ऐसे ट्रेड यूनियन और भी कई चीजों में आप ने भाग लिया, तो सृजनात्मक लेखन का दायित्व समाज के प्रति पहला क्या है?

जब मैं डोमीन काकी कहानी लिखी और वह कक्षा 7 'ब' में हमारी वार्षिक पत्रिका में छपी, तो मुझे बहुत अच्छा लगा और ये लगा कि एनुअल फंक्शन होगा, तो जिनके रचनाएँ छपे हैं, उनको छोटे–छोटे कप भी मिलेंगे। वो पीतल के कप, चाँदी की तरह पॉलिश किये होते हैं। खैर, मेरे मन ने बचपन में इन दबाओं को झेला और देखा कि हमारी जीप जब निकलती है, तो जो जोचूम कंपाउंड से बाहर जाते ही पवई लेप के पीछे की पहाड़ी के ऊपर जो झोपड़पट्टी हैं, इन झोपड़पट्टियों में जो रहने वाले हैं, वे कैसे चालियों के बीच, नालियों, दलदल... उसी में रहते हैं, उधर मेरी नजर तो जाती थी ना। भले ही गाँव में चमइन टोला में वैसी दरिद्रता, दलदल नहीं दिखती थी। लेकिन ये प्रतिबंध था उनको कि वे नहीं आ सकते थे।

एक दिन दत्ता सामंत आए, तब शायद मैं दसवीं कक्षा में थी। हमारा 11वीं बोर्ड एग्जाम हायर सेकेंडरी पुणे बोर्ड से थी। बैठक में उन्हें बैठाया गया। वे पिताजी से बात कर रहे थे कि देखिए, ठाकुर साहब आप इतने बड़े अफसर हैं और नेवल डॉकयार्ड और एम.ई. एस. क्वाटर्र्स के बीच में, आप जो कह रहे हैं कि जहाँ विक्रम ग्लास फैक्ट्री है, वहाँ से मजदूर ऊपर से उतरते हैं, उन्होंने इसे शॉर्टकट का रास्ता बना लिया है। इसको उन्होंने जब रास्ता बना लिया है, तो रात पाली के लोग भी हा..हा...हू... हू... और गीत गाते हुए जा रहे हैं और

तीन पाली के लोग भी अरली इन द मॉर्निंग जा रहे हैं, यह तो ठीक नहीं है... इसको रोकना पड़ेगा। पिताजी ने कहा– यह तो रोकना ही पड़ेगा। वास्तव में यह कंप्लेन तो पिता जी की थी। बोले, आप तो कह रहे हैं कि वहाँ चारों तरफ दीवाल बना देंगे और रास्ता बंद कर देंगे। जहाँ तक आगरा रोड है, वहाँ तक पूरी दीवाल.. पूरा नेवल डॉकयार्ड...एम.ई.एस. सड़कों को ताकि वे शॉर्टकट ना बना सके क्योंकि बंगले के भीतर, शाम को रात पाली में जा रहे साहब लोग हैं, सब बैठकर ड्रिंक कर रहे हैं, तो आवाज आ रही हैं, साथ में उनकी पत्नियाँ भी बैठी हैं। मैंने जब उनको पिता जी से यह बात करते हुए देखा, तो मुझे भी यह बात लगी। पिताजी ने कहा कि बाउंड्री बनाने का, हर तरह से हम लोगों का अधिकार है। सुरक्षा का भी ख्याल करना पड़ता है। आए दिन चोरी चपारी होती रहती हैं, जो नहीं चलेगा। दत्ता सामंत...तो दत्ता सामंत थे। उनकी तस्वीरें तो मैं अखबारों में देखती थी, मुझे बहुत ही आकर्षण लगता था। वे कितना बड़ा वह काम कर रहे हैं, जहाँ खड़े हो जाते थे, वहाँ किसी की हिम्मत नहीं कि उनको कोई हाथ लगा ले। इस तरह से हमको लगा कि जो बातचीत हो रही है, हम अखबारों में पढ़ते हैं, तो थोड़ा–थोड़ा मालूम है और यह भी मालूम है कि ऐसा विवाद चल रहा है। हमने कहा कि बात ठीक कह रहे हैं आप। उनको तीन–चार किलोमीटर का रास्ता और बढ़ जाएगा। उनको आगरा रोड से आगे पहुँच कर, फिर चलना पड़ेगा। यह अगर शॉर्टकट है, तो क्यों आप लोग रोकना चाहते हैं। हमको तो कुछ नहीं लगता है। बंगले की बाउंड्री है..। उन्होंने हमें देखा और बोले– 'आप भीतर जाइए।' पर दत्ता अंकल ने कहा– 'रुको बेटा! तुमने इस चीज को बहुत ही महसूस किया है और बहुत अच्छी बात है। पर तुम्हारे पिताजी को यह बात समझ में नहीं आ रही है', उन्होंने व्यंग्य से कहा। उन्होंने मुझसे पूछा– 'क्या कर रही हो तुम?' मैंने कहा कि अभी हायर सेकेंडरी आई.सी.एस.ई. घाटकोपर हिंदी हाई स्कूल में हूँ। बोले अच्छा, जाती कैसे हो? मैंने कहा– 'यहीं से जीप निकलती है, जो जोचूम कंपाउंड होकर, जयहिन्द ऑयल मिल और फिर मेन आगरा रोड से निकलती हूँ। तो बोले अरे! जयहिन्द ऑयल मिल... और उसी के थोड़ा ढलान पर तो हमारा ऑफिस है, तुम आओ कभी। मुझे उनका यह आमंत्रण बहुत अच्छा लगा। दत्ता सामंत जिनकी तस्वीरें अखबारों में छपी देखती थी, वो बोल रहे हैं, तो हमको लगा कि बहुत अच्छी बात कर रहे हैं, हमको अभी मौका मिलेगा, हम जरूर जाएँगे। एक दिन जब हम स्कूल से लौट रहे थे, तो जीप को रोककर ड्राइवर से कहा कि हमको जरा रोक दो और ढलान से उतर करके मैं उनके ऑफिस गई। उनका ऑफिस बिल्कुल गंदे लोगों से भरा हुआ था। मैले–कुचैले कपड़े पहने कुछ औरतें और आदमी बैठे हुए थे। उन्हें देखकर आई कैन मेक आउट कि इनमें से कुछ उत्तर प्रदेश के, कुछ बिहारी लोग और कुछ मराठी भी हैं। मैं वहाँ गई, तो सबने नमस्ते वगैरह किया, अच्छा लगा।

दत्ता अंकल तो वहाँ नहीं थे। वे मराठी में बोले, आप किसी काम से आईं हैं। मैंने कहा कि नहीं, मैं देखने के लिए आई हूँ, मुझे दत्ता अंकल ने कहा था कि तुम ऑफिस में आना इसलिए आए थे। इस तरह समय चुरा करके, ड्राइवर को पटा कर हम वहाँ जाने लगे। लेकिन उसके बाद जब ज्यादा देर हो जाया करती थी, तो मैं ड्राइवर को बोलती थी कि हम

कह देंगे कि हमारी थोड़ी ट्यूटोरियल की क्लास हो रही है। तुमसे पूछेंगे तो तुम भी ऐसा बोल देना। इस तरह हमने झूठ बोलना शुरू किया। वहाँ पर दत्ता अंकल से भी हमारी मुलाकात हुई, तो यह लगा कि यहाँ जो लोग बैठे हैं, वो जैसे मेरे गाँव के ही कुछ लोग वहाँ पहुँच गए। जो जन–मजदूरों का टोला है, वो वहाँ पहुँच गया है। वैसे ही लोग धोती पहने, बंडी पहने। ये जो स्थिति थी, इस स्थिति ने कहीं–न –कहीं मुझे उनके करीब ला दिया, मुझे एक अपनापन लगा। वहाँ तो अफसरों, उनके खाने की कैंटीन, क्लब, बड़ी मॉडर्न–सी औरतें थी।

उसी समय मैंने साहित्य पढ़ना भी शुरू किया था। अपने स्कूल की लाइब्रेरी से मृगनैनी वृंदावन लाल वर्मा की राधा की पत्नी, प्रेमचंद की सेवाश्रम लाकर पढ़ी। इसी तरह एक दो बार गोदान पढ़ी। तो मुझे लगा कि गोदान जो पात्र हैं, वो पात्र मेरे गाँव में भी रहते हैं और गोदान के वो पात्र यहाँ दत्ता अंकल के ऑफिस में भी हैं, गोदान के वो पात्र इन चालियों में जिनके रास्ते दलदल से भरी थी, उन चालियों के बीच भी रहते थे। तो मुझे बिहारी और उत्तर प्रदेश के जो लोग हैं, उसमें बहुत फर्क नहीं लगता था। भाषा और बोली का थोड़ा–सा अंतर रहता था। बाद में मैंने भोजपुरी पहचाननी शुरू की– इनके खाइयों, जइयो जैसे शब्द भोजपुरी में एक लिरिक है, एक लावण्य है, एक रीदम है। जब इसे पहचानना शुरू किया, तो जो मैंने साहित्य पढ़ा, उस साहित्य के जो पात्र हैं, वो कहीं ना कहीं उनके जो ठिकाने हैं, जहाँ वो रहते हैं, गाँव में भी जन–मजदूरों के टोलों की जो झोपड़पट्टियाँ बनी हुई हैं; उसे झोपड़पट्टियाँ नहीं कहेंगे, मिट्टी की दीवारों वाला, वहाँ छोटे–छोटे आँगन है। कहीं ना कहीं यहाँ इस तरह बदल गया है। ये अपने घर छोड़कर यहाँ रहे हैं। मेरे अनुभव का पढ़ते हुए एक विस्तार होना आरंभ किया। मैं नव भारत टाइम्स में, बिलीट्स में मजदूरों की समस्याओं को लेकर छोटे–छोटे लेख लिखने लगी थी। आर.के करण जय, बीके करण जय, उस समय आजाद कलम हिंदी में बिलीट्स आता था, जिसमें ख्वाजा अहमद अब्बास भी लिखते थे। इस तरह मैंने छोटी–छोटी चीजें लिखनी शुरू की। ये सब वे बैठक में बताते थे। वे कहते थे कि तुम इनके बारे में ज्यादा समझती हो, तुम इनके बारे में लिखो। चुँकि मेरे अनुभवों का विस्तार हुआ था, मैंने साहित्य के पात्रों को प्रत्यक्ष वहाँ इस रूप में देखा और गाँव में जिस रूप में देखा कि गोल–सी मशीन में कटिया काटते हैं, उस को बारीक भूसा और सरसों का तेल की खली में मिक्स करते और यह देखा कि जहाँ गाय बंधी है, भैसे बंधी हैं, बैल बंधे हैं और वहाँ हाथी की जो रोटियाँ हैं, वो इतनी बड़ी–बड़ी रोटियाँ होता है, उसका तवा अलग है। यह सब देखकर मुझे यह लगा कि यह मैंने देखा जरूर है पर इस तरह से नहीं देखा। यहाँ शहर में भी ये मौजूद हैं और अपने घर के अहाते से बाहर भी मौजूद हैं। भले ही वो सेवक जो काम करते थे, जिनकी ड्यूटी रहती थी, वे भी शायद वैसे ही होंगे। चुँकी वे लेवल में काम करते हैं, तो उनकी ड्यूटी है– साहब की बेड साफ करना, जूते पॉलिश करना, घर में और कोई जरूरत हो। इन सब चीजों ने मेरे अनुभवों को विस्तार दिया। एक नई वो दुनिया, जो मेरे अनुभव, मेरा गाँव, मेरा अपने शहर में अपना बंगला और स्कूल के इर्द–गिर्द का इलाका था।

इससे यह बात स्पष्ट हुई कि साहित्य समाज के लिए और समाज साहित्य के लिए है। इसी समय मैंने हिंदी पॉकेड बुक्स की एक–एक, दो–दो, तीन–तीन रुपए में वर्ल्ड क्लासिक्स हैमिंग्वे से लेकर टॉलस्टॉय, दस्तावॉस्की तक अनेक लोगों को पढ़ा। टॉलस्टॉय की सामंतवादी व्यवस्था की कहानियों को पढ़कर मुझे लगा कि ये तो मेरे घर की कहानी है। उसमें जो पात्र है, वो खूँटी से कैप और लंबा कोट निकालता है। और हमारे यहाँ खूँटी में धोती टंगी होती है, बाबा का सिल्क का कुर्ता टंगा होता है और जो जरूरत की चीजें होती हैं वो बंधी होती है। लेकिन उस तरह के कैप और लंबी कोट नहीं टंगे होते थे। बाबा तो अँगोछा लपेट लेते है, तो मैंने बहुत बारीकी से इसको अनुभव किया और वैश्विक स्तर पर भी मैंने खोजा कि मेरा गाँव, मेरे लोग कहाँ है? इस तरह से मेरे अनुभव का निरंतर विस्तार हुआ। मैंने साहित्य लिखने में कक्षा 7 'ब' से आरंभ कर दसवीं–ग्यारवीं कक्षा में भी बराबर भाग लिया। वो क्या साहित्य थे... लेकिन फिर भी मैं इस तरह से लेखन की ओर आकर्षित हुई और मुझे लगा कि मैं गाँव के मजदूर टोले, जन टोला के घरों के अंदर नहीं गई लेकिन यहाँ ट्रेड यूनियन के छोटे से दफ्तर की वजह से, मैंने झूठ बोलकर इनकी चालियो में, इनके घर जाकर देखी। एक खोली में छः–छः लोग रहते हैं, कैसे रहते हैं? कई लोग मिलकर रहते हैं, जो यहाँ की फैक्ट्ररियों में काम करते हैं, पैसा जमा करते हैं, खर्च नहीं करते हैं, बड़ी मुश्किलों से राशन कार्ड बनवा ली है। इस तरह से वंचितों के प्रति वहाँ भी एक अनुभव व प्रतिरोध का और द्वंद का जो विसंगति झेली, उन सब के दबावों को यहाँ मैं अकुआते देखी, तो मैंने कहानियाँ लिखी। दत्ता अंकल कहते हैं कि तुम बहुत अच्छा बोलती हो, लिखना भी जरूरी है। तुम इनकी समस्याएँ लिखो, ये जो अपने प्रदेश से यहाँ आए हैं, क्या कर रहे हैं और फैक्ट्री में इनके साथ किस तरह का व्यवहार किया जाता है? इनके विषय में कहानी लिखने से मेरे अनुभव और अध्ययन को विस्तार मिलने लगा। और मैं अपने पाठ्यक्रम को तो पढ़ ही रही थी। 15 अगस्त, 1964 में नव भारत टाइम्स में जब कहानी छपी और पुरस्कृत होकर पचीस रुपए का पुरस्कार मिला, तो तेंदुलकर जी बताए कि उसके लिए बहुत चिट्टियाँ आईं हैं। नवभारत टाइम्स में संडे के दिन फिचर वाला कॉलम में नीचे पाठकों की प्रतिक्रिया भी होती थीं, अब वो नहीं देते हैं, पहले देते थे। इससे मुझे लगा कि ये प्रतिक्रियाएँ दूरदराज से आती हैं। ये प्रतिक्रियाएँ शोलापुर से हैं, कोल्हापुर से भी हैं। बाहर जो इसका एडिशन जाता है, वही दिल्ली के एडिशन में भी छपता है और वहाँ भी बहुत से लोग पढ़ते होंगे। मैं जो बोलती हूँ, वो तो मजदूर सुनते हैं और मैं जो उनके हित में लिखती हूँ, उसे उसी इलाके के मजदूर, जो थोड़े पढ़े–लिखे हैं, वो पढ़ते हैं। लेकिन मैं जब कथा साहित्य में मजदूरों व वंचितों के संघर्ष के कोई पक्ष को लेकर लिखती हूँ, तो वह कहीं ना

कहीं दूर दराज के हमारे हिन्दी के पाठक तक पहुँच जाते हैं। वह हिंदी सीखने की कोशिश करने वाले लोगों और बच्चे जो हिंदी के अखबार पढ़ते हैं, उन तक भी जा रहा है। तो मैंने बिलीट्स में कविताएँ लिखना शुरू किया। फिर धीरे–धीरे मेरा विस्तार हुआ और मैंने अन्य हिंदी के अखबारों में लिखना शुरू किया और मनी ऑर्डर भी आने लगा।

बिहार के लोगों ने गाँधी जी को 1916 या 17 में जब चंपारण बुलाया और बताया कि इधर नील की खेती करके कैसे उनका शोषण किया जा रहा है, तब बाबू वहाँ गए। मैंने गणदेवता में, जो शायद 1946 में आई थी, मैंने उसमें पहली बार पढ़ा कि नील की खेती करने वाले जो किसान हैं; उनके साथ अंग्रेज क्या करते थे? नील की खेती उनकी मिट्टी की सारी नमी सोख लेता है। उनकी तकलीफों को समझने के लिए बापू और कस्तूरबा को बुलाकर वहाँ लाया गया है और यह सब कुछ साहित्य में आ गई है। ये लगा कि गोदान और गणदेवता ट्रांसलेट होकर आया और लगा कि आखिर साहित्य समाज का दर्पण नहीं है, जो मैंने हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलेख में पढ़ा था। मुझे तो साहित्य समाज का दर्पण नहीं लगता क्योंकि दर्पण के सामने खड़े होकर जब मैं अपने बाल सँवारती हूँ तो केवल मेरा चेहरा ही दिखता था। दर्पण के आयतन में जो भी पक्ष आएगा, वो दिखाई देगा। मुझे साहित्य दर्पण भर नहीं, जन का इतिहास लगा जो महाभारत, रामायण और वृंदावन लाल वर्मा की विराटा की पद्मिनी और मृगनैनी, जिसमें मानसिंह पराक्रमी थे, अर्जुन पराक्रमी था, युधिष्ठिर भी पराक्रमी थे, राम कितने पराक्रमी थे, जन तो उन्हें केवट के रूप में मिला। इस तरह मुझे लगा कि जो कथाएँ प्रचलित है, उनमें विष्णु चंद्र शर्मा की छोड़कर बाकी सभी राजा रजवाड़ों की ही हैं। कभी–कभी मैंने ब्राह्मण के बारे में पढ़ा कि एक निर्धन ब्राह्मण था। वो भीख माँगकर अक्सर जीवन बीताता है। मैंने पाया कि भले ही कोई जाति से ब्राह्मण हो या ना हो, पर निर्धनता किसी जात बिरादरी की बपौती नहीं है। इस तरह से मेरे अनुभवों को अनेक आयाम मिले और जिसने मेरे भीतर एक प्रतिरोध को बहुत पुष्ट किया।

प्रतिरोध मतलब चेतना। किसी ने ठीक ही कहा है कि रोशन जो है दीये तेज हवा में, ये हाथ उनके लौ को बचाने में लगे। आपने अपने साहित्य के माध्यम से उन भावनाओं को, उन चेतना को, स्वर देने की चेष्टा की, उनको बचाने की चेष्टा की है। परिवार में आपका जो प्रतिरोध का स्वर था। आपके अपने ही घर से आरंभ हुआ, तो कैसे आपने उन परिस्थितियों को झेला?

बहुत डाँट खाई, झूठ बोलना सीखा, बहाना बनाना सीखा। हमने बचने के लिए अम्मा को झूठ बोलना सीखाया। हमलोग उन लोगों से डायरेक्ट बात नहीं करते थे। अतः अम्मा से कहते थे कि उनसे पूछो। हम लोग जमकर झूठ बोलते थे क्योंकि मालूम है न कि यह तो हमें कहना ही नहीं है। हम इनके सुरैया को सुन रहे हैं, नूरजहाँ को सुन रहे है 'मोरी अटरिया पर कागा बोलें' और वे पैग पी रहे हैं। इनकी जो पूरी दुनिया है, उसमें हमारी तो कोई जगह है ही नहीं। पर हमारी दुनिया में इनकी जगह है, हम इन्हें चाहते हैं, लेकिन ये हम तक आते ही नहीं हैं। यह भी एक बहुत बड़ा द्वंद्व था कि हमें अम्मा को बिचौलिए की तरह

इस्तेमाल करना पड़ता था। हमें इतने पैसे चाहिए, हमारे यहाँ पिकनिक जा रहे है, हम जाना चाहते हैं, हम बड़े हो गए हैं। इस पर अम्मा कहती थी कि बिटिया काहे मरवाई हो तू हमका, खुद झूठ बोलती हो और हमको भी झूठ बोलने को मजबूर करती हो। तो इस तरह मेरी भोली माँ, जो प्रतापगढ़ की बड़े जमींदार खानदान से थी। उनकी भी कोई औकात और हैसियत नहीं थी।

इन द्वंद्वों के बीच से आपकी कहानी ने जन्म लिया। मैं समझता हूँ कि आज के जो रचनाकार हैं, वे इनसे अवश्य प्रेरणा ग्रहण करेंगे कि कैसे समाज को अपने साहित्य से जोड़ा जाता है। एक बहुत अच्छी बात आपने कही कि जीवन जो है बहुआयामी होता है। उसके किसी एक पक्ष को आईना में देखकर, आप उसे संपूर्णता में नहीं समझ सकते। मैं तो कहता हूँ कि साहित्य समाज और जीवन के अंतर्जगत का अन्वेषण है, आपने जिस तरह से उनके अंतर्जगत को देखा। आप बाहर से देखतीं और जीप से चली जातीं, तो आप अंतर्जगत को देख नहीं पाती हैं।

ये दत्ता अंकल का था कि एक विद्यार्थिनी के रूप में आप आओ। मैंने तो केवल ठाकुर का कुआँ पढ़ कर एक कहानी डोमिन काकी लिखी।

दीदी, पंडित जी के साथ आपका जो संबंध हुआ और आगे बढ़ा। आज पंडित जी हमारे बीच नहीं हैं, मैं उनको विनम्रतापूर्वक श्रद्धा से नमन करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। आप हमेशा साहित्य में उनकी विद्वता का और आपके भीतर साहित्य के जो बीज अंकुरित हुए हैं, उसमें उनका किस रूप में, क्या योगदान रहा है, इन बातों की चर्चा किया करती हैं। मैं यह भी जानना चाहूँगा कि आखिर कैसे पंडित जी से आपका परिचय हुआ? कैसे आप उनके साथ जुड़ी और कैसे–कैसे जीवन में आगे बढ़ी?

परिचय की कहानी तो बड़ी दिलचस्प है क्योंकि हम जो अपने कॉलेज के अंतरराज्यीय प्रतियोगिता में भाग लेने जाते थे। उसी में एक दिन पता चला कि एक ज्यूरी, टाइम्स ऑफ इंडिया की पत्रिका 'सारिका' के सब–एडिटर अवध नारायण मुद्गल भी हैं। संत जेवियर में यह प्रतियोगिता हो रही थी। भारतेंदु ट्रॉफी की प्रतियोगिता और भी अन्य प्रतियोगिताएँ थीं। हमने अपने सर से पूछा कि ज्यूरी में कौन–कौन होगा? इसीलिए पूछा क्योंकि हिंदी के ज्यादातर प्रोफेसर्स को हम जानते थे। हमको पता चला कि ये आए हैं। कोई–न–कोई अखबार से कोई होता ही था, धर्मयुग से या कोई होता है। अवध जी उस प्रतियोगिता में वन ऑफ द ज्यूरी बनकर आए थे। 'तटस्थ राष्ट्रों में भारत की भूमिका' यह प्रतियोगिता का विषय था। नेहरू जी, अब्दुल गमाल नार्सी, सुर्कातो, इन सारे लोगों ने एक नेहरू जी की ही पहल से सोचा कि गलत निर्णय के प्रति, गलत दिशा के प्रति विश्व को नियंत्रित कैसे किया जा सकता है? हम पूरी तैयारी से गए थे। उस जमाने में हमारे प्रोफेसर बंशीधर पंडा थे, प्रोफेसर अनंतराम त्रिपाठी थे। ये लोग हमको पहले से तैयारी भी करा देते थे कि देखो, तुम्हारे मन में क्या आ रहा है और उसके साथ तुम इन पक्षों को भी जोड़ सकती

हो। इससे इन पक्षों को ऐसे–ऐसे जोड़ सकती हो। 5 मिनट का समय होगा, साढ़े चार मिनट बाद पहली घंटी बजेगी और आधे घंटे बाद दूसरी घंटी बजेगी...समाप्त। आगे बोलना नहीं, नहीं तो नंबर कट जाएगा। मुझे गढ़ने में मेरे प्रोफेसर अनंत राम त्रिपाठी का बहुत हाथ है। वे कहते कि मैं अच्छा बोल सकती हूँ, आवाज अच्छी है, संप्रेषण अच्छा है लेकिन मैं सतर्क होकर थोड़ी तैयारी कर लूँ तो, और बेहतर बोल सकती हूँ। मैंने लगातार अपने कॉलेज के लिए सम्मान जीतने आरंभ कर दिए। लोग कहते थे कि हिन्दी के किसी भी सम्मान के लिए चित्रा ठाकुर खड़ी हो गई हैं, तो अब यह उनको ही जाएगा, सुमैया कॉलेज को जाएगा। स्पोर्टस में भी जब मैं खड़े होती थी, तो कहते थे कि यहीं ले जाएगी। इस तरह से हमारे प्रोफेसर हमें तैयार करके भेजते थे। लेकिन इस बार जब अवध जी ज्यूरी बनकर आए, तो उसमें तीन ज्यूरी थे। वही संत जेवियर स्कूल में पढ़ाने वाले प्रोफेसर सर जगदंबा प्रसाद दीक्षित जिन्होंने 'मुर्दाघर' लिखा और अवध नारायण मुदगल और डॉक्टर देवेश ठाकुर। डॉक्टर देवेश ठाकुर ने मुझे बहुत अच्छे नंबर दिए, जगदंबा सर तो मुझे बहुत प्यार करते थे। हमेशा कहते थे, चित्रा शाबाश! तुम तो बहुत अच्छा बोलती हो और हम हंड्रेड परसेंट श्योर हैं कि इस बार भी तुम ही ले जाओगी। पता चला कि अवध जी ने तो तमाशा किया। उन्होंने मुझे कम नंबर दिए। मुझे लगा कि इस विषय के इर्द–गिर्द जितनी जानने की जरूरत है, वह तो हमने कोशिश की, हमें थोड़ा पढ़ाया भी गया और इनको क्या कमी लगी भाई! हम अपने प्रोफेसर अनंत राम त्रिपाठी के सामने तो किसी को खड़ा नहीं करते थे। मैं सेकेंड नंबर आई, मुझे तो इतना गुस्सा चढ़ा हुआ था कि हम सेकंड कैसे आए। हमने जगदंबा प्रसाद दीक्षित सर को संत जेवियर्स कॉलेज के हेड ऑफ डिपार्टमेंट शशि शेखर थानी जी के सामने कहा कि हमको इतने कम नंबर किसने दी कि हम पहली पोजीशन पर ना आकर सेकेंड पोजीशन पर आए हैं। यह सुनकर सब चुप हो गए, तो पंडित जी ने कहा, नंबर कम मिले हैं तो उस पर गौर करना चाहिए कि क्यों कम मिले हैं। जरूरी नहीं कि हर बार आप उतने ही नंबर लाए। आप से दो पॉइंट किसी और बच्चे ने अच्छा बोला है। वह थी राजन पिल्लई जो तमिल से आई थी लेकिन वह हिंदी स्कूल से पढ़ी थी।

मुझे बहुत गुस्सा चढ़ा हुआ था। मैंने कहा कि मैं वह पॉइंट जानना चाहूँगी सर। अवध जी ने मुझे यह कहा था कि तुम्हारे अंदर बहुत विनम्रता है, जो उन मजदूरों से तुमने स्वभाव में लिया है। तुम्हारे जो ट्रेड यूनियन के नेता हैं– दत्ता सामंत, उनसे तुमने धैर्य लिया है। लेकिन तुम्हारे भीतर एक अधैर्य भी है वो जातिगत होता है। उन्होंने एक श्लोक सुनाया और बोले अपने बारे में, अपनी कमियों–कमजोरियों के बारे में जानना चाहिए। आखिर ज्यूरी ने आपको जो कम नंबर दिया है, तो कुछ तो सोचा होगा। आप तो अभी विद्यार्थी हैं और ज्यूरी तो जज करने ही बैठता है। वह यह तो देखेगा ही ना। मुझे बहुत गुस्सा चढा, मैंने कहा– बताइए ना, कौन सा ऐसा पक्ष है कि उसमें दिखाई दिया राजन में और मुझमें नहीं दिखाई दिया। तो उन्होंने दो बातें बताई कि अब्दुल गमाल, नार्सी, सुर्कातो यह मुस्लिम बहुल कंट्री के नुमाइंदे हैं। उस समय स्वेज कैनाल को ले करके कुछ चल रहा था। उसके लिए इसकी क्या भूमिका हो सकती है, उसके बारे में ये भी पक्ष सामने आना चाहिए था। मुझे लगा कि हाँ, मैंने

स्वेज कैनाल को ले करके तो कुछ सोचा ही नहीं। मैंने कहा कि हाँ, आपका पक्ष ठीक है लेकिन इस पक्ष के बिना भी कोई ऐसा पक्ष है। यह तो दिन पर दिन बदल रहा पक्ष है। उन्होंने बाद में मुझे बताया कि तुममें यही थोड़ा–सा अधैर्य है। दूसरे को धैर्य से सुनना, जिस दिन सीख लोगी, उस दिन तुम इतनी अलग और दीक्षित हो जाओगी कि सही दृष्टिकोण के प्रति एक सकारात्मक रवैया तुम्हारे भीतर जन्म ले लेगा और यह बहुत काम आएगा। इस तरह हमारी बातचीत हुई और फिर उन्होंने कहा कि आप इस तरफ कभी आती हैं क्या? मैंने कहा कि हाँ, मैं कभी–कभी आती हूँ, तो बोले टाइम्स आइए ना। देखिए, ये जेवियर्स कॉलेज है, इसके बैक साइड में ही वी.टी.स्टेशन है ,उसके सामने ही टाइम्स है। मैंने कहा, हाँ, मैं जानती हूँ। तो बोले कि हम थर्ड फ्लोर पर बैठते हैं। सारिका में सब–एडिटर के रूप में हमारा अपॉइंटमेंट हुआ है। कहानी की पत्रिका है– सारिका, आपको पता है। मैंने कहा, मेरे घर में मेरी माँ, जो स्कूल नहीं गई वह भी सारिका पढ़ती है, धर्मयुग पढ़ती है। उस जमाने में धर्मयुग में 'आपका बंटी', 'झूठा सच' सीरियलाइज हो रहा था। मेरी माँ ने बँटवारे की त्रासदी को झूठा सच पढ़कर ही जाना था, तमस तो बाद में आया। मैंने कहा, मेरी माँ पढ़ती बहुत है। तो बोले ठीक है, कभी आना हो तो इस तरफ जरूर आइएगा। इसी बीच इनके एडिटर विद्या अलंकार जी मेरे कॉलेज में आए और कहानी प्रतियोगिता के प्रमुख ज्यूरी बने, उसकी अध्यक्षता की। और वहाँ पर यह कहा कि जो कहानी प्रथम आएगी, उसको हम सारिका में छापेंगे। नई पीढ़ी के लिए जो कॉलम था, उसमें स्थान देंगे। वो बोल कर चले गए, तो मेरे सर ने कहा कि एक कहानी जो प्रथम आई है, उसको तुम एक बार और देख लो। फिर ऐसा करो कि तुम जब जे. जी. जाती हो, तो वही उतरकर टाइम्स के सामने ही टाइम्स ऑफ इंडिया है, उसी में थर्ड फ्लोर पर जा करके अवध नारायण मुद्गल जी को यह दे आना। मैंने कहा, अच्छा ठीक है मैं मिली हूँ वहाँ पर, हल्की–सी झलक देखी थी, तो मैंने कहा, हाँ, सर दे देंगे। उन्होंने कहा, वो छापेंगे। जब मैं गई, तो लिफ्ट से ऊपर गई। लिफ्ट के अंदर जैसे ग्रिल वाला दरवाजा खोला, तो एक नवयुवक दाखिल हो रहा था। मैंने कहा–जी.... सारिका का दफ्तर.... बोले जी... वो देखिए ये है ना। किससे मिलना है.... मैंने कहा, अवध नारायण मुद्गल जी से मिलना है। मुझे लगा कुछ पहचाना–सा चेहरा है लेकिन उस समय पान खाए हुए थे।

जेवियर्स कॉलेज में आपकी पहली बार जो अवध जी से भेंट हुई थी, क्या ये उसके बाद की घटना है?

हाँ, यह घटना उसके बाद की है। वे बोले कि किससे मिलना है...मैंने कहा कि वो.... मुदगल..जी..से। तो बोले, वो सामने खुला चौखट दिख रहा है ना, उसी के अंदर सारिका है, धर्म युग है, प्रेस वीकली है, वही होंगे मुद्गल जी, जाइए। इतना कहकर वे चले गए। मैंने कहा, कुछ चेहरा जाना–पहचाना सा लग रहा है, लेकिन उस वक्त पान मुँह में होने के कारण गाल–वाल थोड़े फूले हुए रहे होंगे, और ड्रेसअफ होने से भी इतना रजिस्टर नहीं हुआ होगा। वहाँ गई तो सामने आनंद प्रकाश सिंह बैठे हुए थे। मैंने कहा, सारिका..... वे बोले, जी, जी। मैंने कहा, अवध नारायण मुदगल को ये कहानी देनी है। वे बोले, लाइए। मैंने वह लिफाफा

उनको पकड़ा दिया। मैंने सोचा, बस यही होता है और मैं वापस चली गई, हमें क्या पता उस युवक ने मुझे कितना बेवकूफ बनाया। दैट वास द फस्ट मुलाकात, बाद में जब इन्होंने कहानी वापस भेजी, तो बोले, मैं तो आपसे लिफ्ट में मिल लिया था, और विद्यालंकार जी किसी भी कहानी को कह देंगे कि हम छापेंगे, और अगर वह सारिका के स्तर की नहीं है तो हम तो उसे नहीं छापेंगे। आप पहले खुद ही अपनी कहानी को तीन बार पढ़ लीजिए, फिर आपको पता चल जाएगा। आप सारिका भी पढ़ लीजिए, तो आपको पता चलेगा कि सारिका की कहानियाँ किस स्तर की होती है। विद्यालंकार का तो दिमाग ऐसे ही...... जब उन्होंने इस तरह से बोला, तो मुझे बहुत गुस्सा चढ़ा। इन्होंने मेरी कहानी वापस कर दी। मैंने अनंत राम त्रिपाठी जी को बताया, तो बोले, अच्छा वापस कर दिया, अच्छा ठीक है कोई बात नहीं.... परेशान नहीं हो। ऐसा करो तुम तेंदुलकर को नवभारत के फीचर में इन्होंने युवा पीढ़ी के लिए जो कहानी प्रतियोगिता शुरू की है, तुम वहाँ भेज दो। मैंने कहा, पता सर..। उन्होंने बोला, पता इसके नीचे महावीर अधिकारी हैं, उसके एडिटर हैं, वह भी मेरे बहुत अच्छे मित्र हैं उनको भेज दो। पहले गुरु कैसे गुरु हुआ करते थे, कैसे गाइड करते थे, पेंसिल लगा–लगा कर कैसे, किस तरह से चीजों को सँवारते थे। मैंने उनको कहानी भेज दिया और 3 महीने बाद रिजल्ट आया, तो कहानी पुरस्कृत हो गई थी। मुझे पचीस रुपए का पुरस्कार मिला था, तब पचीस रुपए बड़ी चीज हुआ करती थी। जब कहानी छप गई तब मेरे अंदर ही अंदर एक बिलबिलाहट हो रही थी। मैं सारिका बहुत ध्यान से पढ़ती थी, लेकिन ट्रेड यूनियन में जाने के कारण उतना समय नहीं मिलता था।

सात बजे पिताश्री की गाड़ी आने से पहले हमें घर पहुँच जाना होता है, यह बात दत्ता अंकल को भी पता था और यह भी पता था कि ठाकुर साहब का मिजाज कैसा है? उन्होंने बैरियर की तरह दीवार बनानी शुरू कर दी। वे उस रास्ते तक आ गए, जो रास्ता एम. ई.एस. क्वार्टर से होकर, ऑफिसर्स के बंगलों से आगे जाकर नेवल के क्वार्टर तक जाता था। दत्ता सामंत ने फावड़ा, कुदाल और कुछ मजदूर की सहायता से चीन की दीवार जैसी पत्थरों वाली दीवार की टिप को गिरा दिया। फिर पुलिस केस की बात हुई। उन्होंने कहा, पुलिस में जाइए, हम देख लेंगे। यह नागरिकों का अधिकार है, इनको आप रोक नहीं सकते। ऐसा था तो आप पहले ही बैरियर बनाकर रखते, तार लगवा देते। लेकिन आपने पहले नहीं लगाया और अब ये 3–4 किलोमीटर घूम–घूम के कैसे जाएँगे? हम तो लड़ेंगे। आप फिर बनाइए, हम देखते हैं, हम उसे फिर तोड़ देंगे। एक बार मैं भी वहाँ पर थी, तो पिता जी से उसका भी एक चाटा खाया। अम्मा बोली, अरे! जवान बेटी पर हाथ उठाते हो। इसपर उन्होंने कहा, इस लड़की को अक्ल नहीं है, पूरे खानदान की नाक कटा कर रहेगी। पता नहीं, खानदान की नाक कितनी किलोमीटर लंबी है, जिसको हम काटेंगे और वह कट करके गिर जाएगी। इस तरह की धमकियाँ देकर हमें डराया जाता रहा। अम्मा कहती थी कि जितना तुम्हें डराया गया, तुम उतनी ही विद्रोहिणी बनी। इस तरह एक मोर्चा घर में खुल गया। मुझे लगा कि वह मोर्चा मेरे पिताजी और नवल डॉकयार्ड के ऑफिसर्स के बीच में, मजदूरों और उनके बीच में खुल गया है। वह मोर्चा मेरे और पिता के संबंधों में एक संवेदनात्मक रूप में भी खुल गया कि

हर वक्त एक आतंक के रूप में मेरी संवेदना उनसे आतंकित रहती थी, हम उनसे कुछ कह नहीं सकते थे। हम अपने मन की बात उनसे सीधे कह नहीं सकते थे। एक बार तो मैं एम.एल जोला को पढ़ रही थी। हम लोगों के कमरे में पीकर आए। वहाँ केशा और मेरा बिस्तर था। उन्होंने तकिए के पास एम.एल.जोला ट्रांसलेशन को रखे हुए देखा। वे बोले, ये किताबें पढ़ती हो तुम? मैं नींद में थी, हम को उठाकर करके बोले, यह किताबें पढ़ती हो तुम? मैंने कहा, क्यों? यह एक साहित्यकार दस्तावॉस्की की, एमएल जोला की किताब है। बोले, ये अश्लील किताब है, ये बैन हुई थी, तुम कैसे.... यह घर में कैसे आई? मैंने कहा, मुझे पता है डी.एच. लॉरेंस की कौन–सी किताब बैन की गई है और कौन–सी कहानी प्रेमचंद्र की बैन की गई है। वे उस वक्त कुछ नहीं बोले, अपने कमरे में चले गए। फिर दूसरे दिन माँ को कहा, उनकी किताबें भी मुझे ला करके दिखाया करो कि क्या पढ़ रही है, क्या कर रही हैं? अब घर में यह एक और मोर्चा खुल गया। इस तरह मोर्चे के इतने स्तर पर जूझते हुए, टकराते हुए, अपनी पढ़ाई करते हुए मैं कॉलेज में आते ही जागरण संस्था की सचिव भी बन गई। और अवध जी कहते हैं, आप में अधैर्य है, आपमें गुस्सा है, उसको बाहर निकालिए, यह आप के ब्लड में है। जब ब्लड में कहीं क्षत्रिय होने का गुमान होता है, तो उसके पास कभी भी ज्ञान नहीं आता, वह ज्ञान से वंचित रह जाता है। उसको ब्राह्मणों के दिमाग की जरूरत होती है। इस तरह हम लोगों में बातें होती थी। फिर इन्होंने मुझे अच्छा–अच्छा अंग्रेजी साहित्य देना शुरू किया। मुझे याद है, इन्होंने मुझे हेमिंग्वे की किताब लाकर दिया, जिसे 1956 में नोबेल पुरस्कार मिला था। उन्होंने पतली–सी अंग्रेजी की नॉवेल भी लाकर दिया और कहा कि इसका ट्रांसलेशन भी राजपाल एंड सन्स में हिन्द पॉकेट बुक्स में छपा है। आप वह भी पढ़ सकती हैं। मैंने कहा कि इतनी अंग्रेजी तो मुझको समझ में आती है। इसपर वे बोले, नहीं...नहीं आती होगी, मैं यह नहीं बोलता। मुझे इतनी नहीं आती, तो मैं डिक्शनरी से शब्द देख लेता हूँ। 'डिक्शनरी में शब्द देख लेता हूँ, ऐसा कहकर वे मुझे आश्वस्त करते थे कि आपको फिर देखने में क्या है?

हाँ, शब्दकोश में आप भी देख लिया कीजिए, बहुत बड़ी बात है दीदी, क्या अवध जी का व्यक्तित्व आपके अनुभवों को विस्तार देने में सहायक रहा?

अवध जी के अंदर धैर्य और एक गहरापन था। मेरा यह सोचना कि साहित्य जन का इतिहास है। मेरी इस सोच से वे सहमत थे। उन्होंने मेरे भीतर के दबित, दमित मन और क्षद्म को दूर किया, मुझे बहुत संवारा, बहुत समझाया। जब मैं तीन साल की उम्र में अम्मा के साथ मद्रास में आई थी, तो विशाखापट्टनम से गाँव वाली यह देखने आती है कि बाबू की बिटिया कितनी बड़ी हो गई है। मेरी बुआ, दादी, बाबा सब लोग गोरे–चिट्टे और मेरे पिता भी एक देवदूत जैसे खूबसूरत थे। लेकिन अम्मा सांवली, गेहुँआ रंग की थी। इसलिए मैं भी उसी रंग की हो गई या शायद कुछ ज्यादा ही सांवली थी और बाल घुँघराले थे। इससे दादी को लगा कि यहाँ मद्रास में पैदा भई है इसी के मारे करिया हो गई है। उनको क्या पता था कि मद्रास में कितने गोरे लोग हैं, ब्राह्मण हैं। लेकिन दादी को यह था कि मद्रासी लोग काले होते हैं। यह सुन–सुन कर मेरे मन में यह बैठ गया था कि मैं तो सांवली हूँ। अवध जी बोले, अरे!

सांवलापन में इतना लावण्य तो मैंने आज तक किसी लड़की में देखा ही नहीं, मतलब कि बेवकूफी की शुरूआत हो गई। दैट वास द डिपार्चर स्टाईल मुहब्बत। मेरे अंदर एक आकर्षण बौद्धिकता का, सांस्कृतिक साहित्य का उत्पन्न हुआ। और उसके साथ–साथ मेरे अनुभव को नए–नए आयाम मिले। अवध जी से जुड़कर मैंने जाना कि साहित्य विदेशों में कहाँ–कहाँ किन क्रांतियों के बीच में, कैसे–कैसे लिखा गया? अवध जी ने मेरे अनुभवों का परिष्करण किया। मेरी सोच को अनुभव को नहीं, मेरे अनुभवों से निषिद्ध जो मेरी सोच थी, उसको तर्कों के साथ जो परिष्करण किया, इससे मुझे लगा कि भारतीय वांग्मय में कोई ऐसी चीज नहीं है, जो साहित्य को वैश्विक पटल से जोड़े। हमारे यहाँ तो सब कुछ है, तो सब पक्षों को लेकर जोड़ने वाला चाहिए। अवध ने मेरे सामने ज्ञान के पृष्ठ–दर–पृष्ठ खोले एवं मेरे अनुभवों को जिस तरह परिभाषित किया, इसका मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और मैंने निश्चय कर लिया कि मैं तो शादी करूँगी, तो इसी लड़के से करूँगी। लड़का बहुत विद्वान है और साहित्य में भी इसकी गहरी अभिरुचि है।

घर में इस बात की जानकारी कैसे हुई? क्या आपने स्वयं अपने संबंधों की बात को परिवारवालों के सामने रखा?

घर में तो छुपा के रखा... बिल्कुल छुपा के रखा। कॉलेज के पीरियड बंक करके जाते थे और लंच आवर्स के समय जाते थे कि हम लोग बाहर निकलेंगे। अवध जी बताते कि मैं दफ्तर थोड़ा लेट आऊँगा। उनके घंटे भर लेट आने पर रविंद्र कालिया जो बैठते थे, वे समझ जाते थे कि आज तुम लेट क्यों आए हो? अवध जी कहते कि जरा पान खाने....... तो कहते, हाँ, कैसा पान खाएगा मुझे मालूम है। फिर हम ने निश्चय किया कि हमें अपने घर से विद्रोह करना ही पड़ेगा। ब्राह्मण, मेरी दादी के लिए पूज्य हैं। द्विवेदी जी जब धनुवीं खेड़ा से आते हैं, पूजा पाठ करवाते हैं, तो दादी उनको चाँदी की चौकी पर विराजमान करवाती हैं और चाँदी की परात में उनका पाँव धोती हैं, फिर अपने आँचल से उसको पोंछती हैं। लेकिन ब्राह्मण के लड़के से शादी करना उनको गँवारा नहीं था। इसलिए हमको लगा कि यह तो विद्रोह से ही संभव हो सकता है।

दीदी, महान रचनाकार या विख्यात व्यक्तित्व के व्यक्तिगत जीवन को लेकर पाठकों के मन में जिज्ञासा बनी रहती है कि उनका व्यक्तिगत जीवन कैसा है? उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी के बीच में तो एक ऐसा दौर चला था, जब लोग कहते थे कि रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी रचनाओं पर होती है। बाद में शुक्ल जी ने उसको अंतः प्रति की छानबीन कहा। कई रचनाकारों के जीवन–वृत्त को लेकर कई उपन्यास भी लिखे गए हैं। आपके अपने जीवन के भी ऐसे कई अनछुए पक्ष हैं। आपने अपने जीवन के शुरुआती दौर की बातें, बचपन में, स्कूल में, कैसे आपके भीतर आम जनता के लिए संवेदना उत्पन्न हुई और फिर कहानी प्रतियोगिता से लेकर आदरणीय अवध नारायण मुदगल जी के साथ आपका जो विवाह हुआ, कैसे–कैसे आपलोग एक–दूसरे के करीब आए, आपकी शादी को

लेकर घर में कैसा माहौल रहा। यदि आप इन बातों पर थोड़ा–सा प्रकाश डालती, तो पाठकों की जिज्ञासा शांत होती।

हाँ.... मुझे ऐसा लगा कि मुझपर लगातार प्रतिबंध लगाए जा रहे हैं। उनको यह भी शक हो गया कि मैं किसी लड़के से मिलती हूँ। मैंने अम्मा के पूछने पर उन्हें अवध जी के बारे में बता भी दिया। अम्मा ने कहा कि देखो बिटिया, यह तो संभव नहीं है, अपने घर में तो बहुत सारी पाबंदियाँ हैं। मेरे पिताजी जी भी कुछ–कुछ भाँपने लगे थे कि कुछ गड़बड़ जरूर है क्योंकि आजकल यह लड़की नवभारत टाइम्स में प्रेम कविताएँ लिख रही है। वैसे तो जब प्रेम नहीं करते थे, तब भी प्रेम कविताएँ लिखी थी लेकिन उस वक्त उनका ध्यान नहीं गया था। उन्होंने मेरी छोटी बुआ से मिलकर मेरे लिए किसी जिम्मेदार खानदान का कोई लड़का ढूँढ़ना शुरू किया और वह कानपुर में खोज लिया गया। जब मुझे उसके बारे में बताया गया, तब मुझे लगा कि अब यह नौबत आ गई है कि इनको बता देना जरूरी है। मैंने अवध से कहा कि बेहतर होगा, आप आकर पिता जी से मिल लें। सब लोग किसी–न–किसी रूप में मेरे पिता जी के रौब और आतंक से परिचित थे। अवध बोले, अकेले! मैंने कहा, नहीं, तुम अकेले नहीं जाओगे। उस समय माधुरी में काम कर रहे थे विनोद तिवारी जी, उनके साथ अवध हमारे घर आए। उनको बाहर ही एम. एस. क्वार्टर के पास ही ठहरा दिया। उन्होंने घर आकर कहा कि हम शादी करना चाहते हैं चित्रा से। उन्होंने उनके घर के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा कि मैं तो बेहद गरीब घर का ब्राह्मण हूँ, मिट्टी की दीवार हैं, मैं यहाँ तक संघर्ष करके पहुँचा हूँ। तो वे बोले, जितनी तनख्वाह तुमको टाइम्स ऑफ इंडिया में मिलती है उतनी तनख्वाह तो हमारे ड्राइवर को मिलती है, यह तो संभव नहीं है। जाति–बिरादरी का भी मामला है, यह तो संभव ही नहीं है। इस तरह अवध को घर से निराश हो करके लौटना पड़ा। इधर इन्होंने यह मुहिम तेज कर दी। हम अवध को तो सब बताते ही थे, अम्मा को भी सब चीजें बताते थे। मेरी अम्मा तो दोनों तरफ पेंडूलम–सी पीसती थी। मैंने कहा कि हम लोग अपने–अपने काम करते हैं लेकिन अब अच्छा होगा कि हमलोग शादी कर ले। नहीं तो ये लोग मुझे पकड़कर खड़ा कर देंगे, तब बड़ी मुश्किल होगी। हमलोगों ने यह तय किया कि शादी कर ही लें। मैं बी.ए. कर चुकी थी और सोच रही थी कि मुंबई में एम.ए. की रेगुलर क्लासेस होती है, यहाँ कॉरस्पॉन्डंस नहीं है, तो कैसे एम.ए. करें। बाद में मैंने कॉरस्पॉन्डंस के माध्यम एस.एन.डी.टी. महिला कॉलेज से पढ़ाई की। महिला यूनिवर्सिटी होने के कारण महिलाओं को सुविधा दी जाती थी। मुझे मालूम था कि रहने को तो यहाँ घर पर नहीं रह सकते, कहीं अलग रहना पड़ेगा।

इस तरह से शादी की बात आई और क्या विरोध हुआ, क्या तांडव मचा, वो तो पूरा कुरुक्षेत्र बन गया था, इतने अलग–अलग चेहरे..... बहुत भयानक.....था। अवध के लिए बहुत डर था कि कहीं मरवा ना दे और उसके साथ में यह भी था कि टाइम्स में कहीं उत्पात मचाकर इनको नौकरी से ना निकलवा दें। खैर, विद्यालंकार जी से भी बात हो गई थी और उन्होंने पीके रॉय, उस समय जो टाइम्स ऑफ इंडिया के जनरल मैनेजर थे, उनसे भी बात

कर ली थी। अखबारों से जुड़े हुए लोग मॉडन लोग थे। उन्होंने कहा कि इसमें ऐसी क्या बात है, यह सब तो पुरानी बातें हैं। सभी हमारी शादी से सहमत हो गए। सबने तय किया कि शादी के बाद थोड़े दिन के लिए हमलोग कहीं और शिफ्ट हो जाएँगे, जब तक यह शांत ना हो जाए। हमलोग शादी माटुंगा के आर्य समाज मंदिर में पाँच रुपए भरकर किये। उनकी जो हम लॉकेट पहने थे, घड़ी पहने थे, यह सब हमने शांडूक पुलिस स्टेशन में पहले ही जाकर के जमा कर दिया था कि कहीं एडट्री वगैरह का केस न बना दें। अवध ने जो कपड़े खरीदे, तो उनको पता ही नहीं कि साड़ी पेटीकोट के साथ पहनी जाती हैं। खैर जो खरीद लाए सो ठीक था। हमारे जमाने में पैरलल चलते थे, वो बड़े पैजामा टाइप के......थोड़ा बड़ा....वैसी पैंटे भी पुरुषों के चलती थीं। तो उसी पर हमने साड़ी को बाँधा।

माधुरी के सब–एडिटर, विनोद तिवारी, हरीश तिवारी सब के सब शादी में आए। शादी में किसी ने भाई की तो किसी ने बहन की भूमिका निभाई। उसके बाद जिस हॉस्टल में अवध जी रहते थे, उस हॉस्टल में हम लोग आ गए। इनके हॉस्टल का कमरा बदल दिया गया। विनोद तिवारी बोले, तुम मेरे कमरे में रहो– सोओ, मैं तुम्हारे कमरे में सोऊँगा। रात में उन्होंने इनको घेरा भी लेकिन इनको नहीं पा सके। बाद में हम लोगों की पुलिस से बातचीत हो गई, फिर चले गए। उस समय मेरे सगे चाचा मुंबई के डिप्टी पुलिस कमिश्नर थे। ये सब हुआ और उसके 3 दिन बाद दिल्ली का टिकट निकल आया, तो हम लोग दिल्ली चले आए, बोले सर्वेश्वर दादा से बात हो गई है और विनोद तिवारी और हमने भी बात कर ली है। सर्वेश्वर दादा बोले कि तुम आ जाओ। तब वे मॉडल टाउन में रहते थे। इनका सर्वेश्वर दादा के साथ बड़ा लगाव था। फिर हम आए चूँकि कपड़े वगैरह तो हमारे पास उतने नहीं थे। जब सर्वेश्वर दादा के यहाँ पहुँचे, तो जो पहने थे, उसके अलावा 2–3 साड़ियाँ, खटाऊं वॉयलस चलती थी, तो दादा ने खरीद कर दी। वे अच्छे लोग थे और हम वहाँ उनके साथ में रहे। फिर राजेंद्र यादव चूँकि आगरा से संबंध था, रामविलास शर्मा जी भी आगरा से थे, उनके बेटे विजय भी थे, कुमुद नागर, अमृतलाल नागर, अचला दीदी ये सब आगरा में थे। वहाँ से परिचय था, थोड़ी दोस्ती भी थी। अवध को बहुत प्यार भी करते थे राजेंद्र जी। उन्होंने कहा, क्या है......शादी करके आ गया, अच्छा चल ठीक है, चल हमारे पास भी रह लो। तो उनके पास थोड़े दिन रहे। फिर विद्यालंकार जी ने कहलवाया कि अब तुम वापस आ जाओ। नौकरी में इतनी छुट्टी नहीं मिल सकती, तुम्हारी लीव विदाउट पे शुरू हो चुकी है और उसमें नुकसान होगा, आ जाओ, जो है उसका सामना करो। सब कहने लगे, बांगुर नगर में हम भी घर ले ले। विश्वनाथ सचदेवा, उदयन सब लोग गोरेगांव में बांगुर नगर में वन रूम किचन किराए पर लेकर रहते थे। तनख्वाह भी उतनी नहीं थी डेढ़–डेढ़ सौ रुपए के मकान में रहते थे। लेकिन मैंने अवध से कहा कि मैं मकान 20–25 रुपए की खोली, चालियों के बीच ही लूँगी ताकि मैं अपने लोगों के बीच रह सकूँ। उससे ज्यादा सुरक्षा मेरे लिए कहीं नहीं है। मैंने दत्ता अंकल को भी सारी बातें बता दिया था। दत्ता अंकल मिले इनसे, बहुत खुश हुए। दत्ता अंकल से मिलकर ये भी बहुत खुश हुए। और दत्ता अंकल बोले, हम चाहते हैं कि ये हमारे साथ और

भी सक्रिय हो करके रहे और पढ़ाई जो शेष है, उसको एम.ए. करना है वह तो कर लेगी।

मुझे खाना बनाना नहीं आता था, बड़ी मुश्किल होती थी। हम तो किसी के भी घर जाकर रोटी मांग लेते थे। ज्वार की रोटी थी इतनी बड़ी–बड़ी, चार परत करके। चार रोटियाँ दे दो–तीन ब्राह्मण खा लेगा, एक मैं खा लूँगी। ये बोले, तुमको खाना बनाने नहीं आता। मैंने कहा, मेरे यहाँ तो सेवक आते थे। अम्मा कहती भी थी कि रसोई में जाओ, देखो, तो मैं नहीं जाती थी। ये समझाते थे कि इसको इस तरह से करते हैं।

मेरे घर वाले जो हैं उनके अंदर ही अंदर धीरे–धीरे क्या पक रहा है नहीं मालूम। लेकिन अम्मा ये करती थी कि मसाले हल्दी, धनिया, वो बंगले के पिछवाड़े जो कुछ कुटवाती थी, वो सब चुपचाप पहुँचा देती थीं। ड्राइवर आता था, दे जाता था, कि चित्रा को तो आता नहीं है कुछ। मतलब हमारे साथ तो यह समस्या थी। एक बार अवध मेंथी, आलू खरीद कर लाए। बोले, मेंथी–आलू बना लेते हैं। मैंने कहा ठीक है, बना लेते हैं। मेंथी–आलू बनाकर डिब्बे में रख दिया। वहाँ दफ्तर में मालवीय जी थे। उन्होंने कहा मेंथी–आलू किसने बनाया? अवध जी को लगा कि प्रशंसा में पूछ रहे होंगे बोले, चित्रा ने बनाया। मालवीय जी बोले चित्रा को समझा दो कि उसे खोट लेते हैं, डंडा सहित मेंथी नहीं काटते। अवध जी बोले तुमको मेंथी–आलू बनाने नहीं आता। मैंने कहा बनाने क्यों नहीं आता? सुबह बनाकर तो दी तुमको। बोले नहीं उसको खोट लेते हैं। तो मैंने कहा तुमको भी तो नहीं आता। बोले हमको मेंथी–आलू कहाँ बनाने को मिलता था। हम तो खिचड़ी बना लिए, मेंथी–आलू तो कुमुद भाई जी के घर, भाभी जी के घर, अच्छा खाना मिल जाता था। हंगामें से भी, विरोधो से भी, लड़ने की ताकत दो जगह से मिली। एक तो मजदूर यूनियन से कि हम सब आपके साथ हैं और हर स्थिति में साथ हैं, ड्यूटी लगा सकते हैं कि रात के वक्त आपके घर के बाहर दो लोग सो जाएँगे, खटिया डालकर, चाली के बाहर। और दत्ता अंकल जी की जो पुलिस में थोड़ी पैठ थी, उसका भी इस्तेमाल किया क्योंकि इनसे लड़ना बड़ा मुश्किल था। अवध की जान की बड़ी मुश्किल थी। ये तो अपनी बेटी को ले लेंगे और अवध को खत्म कर देंगे। लेकिन ब्राह्मण इतना चाणक्य और मजबूत हो सकता है, ये तो इन्होंने सभी को अनुभव करा दिया, इनसे सभी डरते थे। सबको लगता था कि अवध जी बड़े सॉफ्ट है, लेकिन अवध जी ने स्थितियों का बड़ा डटकर मुकाबला किया। जब बेटा हुआ तो घर में जाने की तो मुझे मनाही थी लेकिन हॉस्पिटल में पहुँचे। आखिर नाती होना, यह बड़ी चीज थी। लड़की के होने पर नहीं कोई पहुँचा लेकिन नाती होने पर नर्सों को सवा रुपए अम्मा ने दिए। तो ये स्थिति थी और अवध ने बड़ी मुश्किल में परिस्थितियों को संभाला। मुझे लगता था कि मैंने उन्हें बड़ी कठिनाई से और चुनौतियों के बीच पाया और अपने लिए चुना और उन्हें भी मेरी वजह से चुनौतियाँ झेलनी पड़ी।

तो आपकी रचनाओं में कभी यह प्रसंग आया कि नहीं।

नहीं, मैंने अपने व्यक्तिगत जीवन पर और अपने ससुराल के जीवन पर और अपने

घर के जीवन पर कभी नहीं लिखा। वंचित वर्ग के आयाम जो मेरे सामने प्रत्यक्ष संघर्ष करते, उनके लिए धरना देते, पुलिस स्टेशन में बंद होकर तीन–चार घंटों बाद फिर छूटते, वो जो मैंने अनुभव किया, उससे मेरा बहुत विस्तार हुआ। साहित्य ने भी मेरे आयाम को विस्तार देने में सहायता दिया कि पात्रों के मनोविज्ञान को कैसे समझना चाहिए? लेकिन मैंने अपने घर को लेकर कभी नहीं लिखा। अब जा करके लिखा। तब एक–दो कहानियाँ जरूर लिखी थी 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं' मेरे ही घर के ऊपर थी। तो उसमें भी नोटिस आ गया धर्मयुग में भारती जी को कि आपने कहानी छापी है और इसके लिए जो परिणाम होंगे उसके लिए भी आप तैयार रहिएगा, माफी माँगे। और जो लेखिका है ना उसको समझा दे कि आइंदा से वो इस तरह की रचनाएँ ना लिखें। तो हर तरह से झेला और झेल इसलिए पाए कि अवध जैसा जो व्यक्ति है वह समझने वाला, उसने हर स्तर पर समझा। अवध जी इससे बहुत दुखी होते थे कि तुम इतने संपन्न घर से और बहुत से सुविधाओं में पली–बढ़ी हो और यहाँ सुविधाविहीन जीवन जीना पड़ रहा है। जब मैं अपने ससुराल गई, तो मिट्टी की दीवाल वाला घर, सांप बिच्छू का भी डर रहता था। लेकिन ये बड़ी हिम्मत देते थे, नहाना है, तो कोई कल्पना नहीं कर सकता कि वह खटोली होता है ना, एक खटोला ऐसे और एक खटोला ऐसे रख करके, उसके ऊपर सब चादरे डाल कर के दो तीन चार बाल्टी पानी रखवा करके, तब मैं गाँव में नहाती थी। केवल एक पत्थर बड़ा–सा होता था और पानी बहता रहता था। वहाँ पुदीने की क्यारी में बकरी की लेड़ियाँ डालते थे। मैंने कहा, हे भगवान! यह लेडी वाला पुदीना कौन खाएगा? उसकी चटनी कभी नहीं खाई मैंने बाप रे.... तो ये बोले कि शहरों में जो पुदीना होता है वह भी तो ऐसा ही होता है, यह तो खाद है। मैंने कहा, होगा...हम नहीं खाते।

साहित्य अकादमी दीदी आपको पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासुपारा के लिए मिला। उस तरफ आपका ध्यान किस प्रकार गया उस प्रसंग को लेकर आप कैसे उधर मुखातिब हुई?

देखो, यह विडंबना है कि हम समाज के इतने अनदेखे पृष्ठों को टटोल सके, देख सके उस आखिरी आदमी तक भी जाने की कोशिश कर सके, उसके माध्यम से यह समझ पाए कि यह आदमी छत्तीसगढ़ से आया है, आदिवासी इलाके से आया है, इसको भी यहाँ खाने–पीने की जरूरत है। उनकी पत्नी जंगल से चिरौंजी बिन के लाती है, लकड़ियाँ इमली बेचती है। तो ये जो जल–जंगल–जमीन का चला था, तो मुझे लगा था कि हम बहस करते थे मरालताई गोडे से, कि गलत है, उन आदिवासियों को वही चीजें क्यों दिलवानी है, उससे आगे की सोचनी चाहिए कि उनके बच्चे बड़े स्कूलों में पढ़े, और वो कहीं अच्छे जगह पर काम करें, उस पर वहाँ तो उसकी सीमाएँ हैं, उस पर निर्भरता.....उनकी सीमा है, अभी तक रहा है सदियों से, और आगे भी वो सीमा रहेगी, तो मेरा थोड़ा विरोध होता था। तो जिस तरह से हमने चीजों को देखा, समझा, सामने वो खुली, प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष उनको नहीं देखा, उसको अनुभव में सृजना के माध्यम से अपने भीतर जिया।

मुंबई का कोई ऐसा कोना न था, जहाँ हम न गए हो, न देखा हो। इन लोगों से तो

हम लोकल ट्रेन गोरेगाँव जाते हुए देखते थे कि ये चढ आते हैं। तो वही घृणा, जैसे औरों को उनसे थी। मुँह फेर लेते थे कि अभी नहीं मांगेंगे, फिर वो नहीं देखेंगे तो वो आपका कंधा छू करके आपको अट्रैक्ट करने की कोशिश करेंगे, कि देखो हम खड़े हैं कब से, कुछ तो हाथ में दे दीजिए। इस तरह हमने उनसे घृणा ही की। बाद में एक बार अवध जी 1979 में सारिका के साथ दिल्ली आ गए थे। उस वक्त मेरे बच्चे ने हायर सेकेंडरी नहीं किया था, इसलिए हम वही रहे। फिर मेरे सोशल काम भी थे, बड़ी संस्थाओं से जुड़े हुए। हम 5 मई, 1983 को दिल्ली आए। उस बीच जब भी हम गर्मी की छुट्टी में, अप्रैल में इनकी रिजल्ट आ जाता था, स्कूल बंद हो जाता था बॉम्बे में, फिर 13 या 14 जून को खुलते थे, तो उन छुट्टियों में टिकट वगैरह बहुत पहले से निकलवा करके भेज देते थे, और हम उन छुट्टियों को दिल्ली में ही बिताते थे। अवध जी ने छोटा–सा लॉरेंस रोड में वन रूम किचन लिया हुआ था। एक पंडित जगदीश चंद्र जी थे। उनका मकान था। वह कादंबिनी वगैरह में लगातार लिखते रहते थे। ऐसे ही जब हम एक बार 80 या 81 के बाद थोड़ी गर्मी की छुट्टियाँ यहाँ बिता के मुंबई के लिए लौट रहे थे कि इन लोगों की स्कूल खुलने वाली है बच्चों के, अर्पणा और राजीव का। पाँच नंबर प्लेटफार्म से डीलक्स ट्रेन जाती थी पश्चिम एक्सप्रेस, दिल्ली स्टेशन से, नई दिल्ली, तो हम पश्चिम एक्सप्रेस में चढ़े, हमारा सीट रिजर्व था। उस समय 6–7 साल तक के बच्चे का तो आधा ही टिकट कटता था। तो अवध अर्पणा का भी टिकट रिजर्व कर बर्थ ले लेते थे। उस समय का एक–भय आज भी मेरे मन में बैठा है कि अर्पणा भैं–भैं करके रो रही है, अवध जी उसको गोद में लिए हुए हैं, हम सब चढ़ गए हैं, तो किसी तरह उनकी गोद से छुड़ाकर के हम उसको अंदर लिये और गाड़ी चल पड़ी। हमने देखा कि गाड़ी प्लेटफार्म को छोड़ चुकी थी या छोड़ रही है, यह दिखना बंद हो चुका था। इतने में कोई हैंडल पकड़कर चढ़ा अंदर की तरफ, तो वह एक सुदर्शन–सा युवक था, चढ़ा, वो एकदम घबराया हांफते हुए वह चढ़ा, तो मैं उसको लेकर अपनी सीट पर आई, मैंने कहा, बैठ जाए आप! पहले दम ले ले, आपकी सांस फूल रही है, तो वह बैठ गया, बैठा रहा और बिट्टू रोती रही पौं–पौं, वह सब चलता रहा, वह भी इसको बनाने लगा कि रो मत बेटे। टीटीआई आया, थोड़ा एक डेढ़ घंटे बाद, चेक करने के लिए, सीट नंबर और यह सब, तो वह आया और इससे पूछा, उसने कहा कि मेरा तो कोई रिजर्वेशन नहीं है। मेरा तो जनरल कंपार्टमेंट में है। मेरी गाड़ी छूट रही थी तो मैंने भागकर के गाड़ी पकड़ी, जो डिब्बा सामने आया उसमें चढ़ गया। इस डिब्बे में चढ़ गया हूँ और गाड़ी जब भरतपुर में रात में रुकेगी 11 बजे, तो मैं भरतपुर में उतर करके अपने जनरल में चला जाऊँगा। अर्पणा के साथ उसका हिलमिल जाने से अर्पणा का रोना बंद हो गया। मैंने सोचा कि एक बर्थ तो यहाँ है, और अर्पणा हमारे साथ सो जाएगी और भैया ऊपर चला जाएगा और एक बर्थ तो है नीचे की जो हमारी थी। हमने उसे कहा कि ठहरो, तुम क्यों उतर कर जाओगे 11 बजे रात में, हमने थोड़ा खाना भी उसको खिला दिया। हमने कहा, हम पूछते हैं टी.टी.आ. ई से, वहाँ बैठा होगा अंदर की तरफ, मैं जरा उसे पूछती हूँ कि बर्थ तो है ही, क्यों उतर कर सीट के लिए जाएगा, यही बैठेगा, और सुबह तो हम लोग पहुँच ही जाएँगे मुंबई, तो वो चुप हो गया। इस बीच बिटिया से थोड़ा लगाव हो गया था। मैंने टी . टी. आई. से पूछा, तो टी. टी.

आई. थोड़ा नानुकुर करने के बाद कहा, देखिए मैं तो बड़ौदा तक ही हूँ, उसके बाद दूसरा चढ़ेगा। टी. टी. आई. उतर कर चला जाएगा और ऐसा करके वो हमारे साथ रहा। बिटिया को मैंने सुला दिया, एक चुन्नी मैंने बांध दी कि रात को वह गिर ना पड़े। फिर उससे बातें होने लगी, मैंने उससे पूछा, तुम्हें कहाँ जाना है, कहाँ उतरेंगे मुंबई में। उसने कहा मैं नालासोपारा जाऊँगा। मैंने कहा, नालासोपारा तो यह गाड़ी रूकती नहीं है, कैसे जाओगे। तो वह बोला, हाँ, मुझे मालूम है रूकती नहीं है, मैं बोरीवली उतरूँगा, बोरीवली उतर करके रात को प्लेटफार्म पर ही सो जाऊँगा, फिर सुबह मैं लोकल ट्रेन पकड़कर नालासोपारा जाऊँगा, नालासोपारा विराज से भी आगे हैं। मैंने पूछा, वहाँ कौन है? वहाँ मेरी माँ है मेरे पिता है मेरा घर है। तो.... माँ... प्लेटफार्म पर 9 बजे आ जाएँगी। वो मंदिर जाने के बहाने घर से निकलेगी और तब तक मेरे पिता दुकान खोलने चले जाएँगे। माँ प्लेटफार्म पर आएगी, मुझसे मुलाकात होगी और उनके साथ बातचीत करके, कुछ समय बिता करके, फिर वो वापस घर चली जाएँगी। मैं वहीं प्लेटफार्म पर रहूँगा फिर उसके बाद बोरीवाली आ जाऊँगा। बोरीवली उसी दिन रात की जो गाड़ी है, कोई भी मुंबई जाने वाली, पश्चिम एक्सप्रेस या पंजाब मेल, उससे मैं दिल्ली वापस चला जाऊँगा। मैंने जो उसकी जिंदगी जानी, जो पृष्ठ खुले, बात करते–करते रात के 3–4 बज गए थे। मैंने पूछा, तुम घर क्यों नहीं जा सकते हो? तो उसने बताया कि यहाँ तो घर नया लिया है। कालवा देवी में रहते थे, 3–3 गाले थे। मैंने वो सब नालासोपारा में इस्तेमाल किया है। वो आत्मकथात्मक ही है, लेकिन जो प्रश्न राजनीतिक प्रश्न है, सामाजिक प्रश्न है, वह मैंने उसमें डाले हैं। यह घटना तो बहुत पहले की है, तभी जब 2011 में यह चला, तो मैंने इसका पहला अंश लिखा, जो वागर्थ में छपा, जिसको रमेशचंद शाह ने पढ़ा, जो एक जज थे। उन्होंने मुझे एक चिट्ठी लिखी कि अंश तो ऐसा है कि आँख में पानी आ जाता है। उन दिनों मैं लिख ही रही थी। मैं अपने ऊपर चकित थी जब मैंने उसको कहा कि तुम घर चलोगे, प्लेटफार्म पर नहीं सोओगे, मेरे घर चलोगे। मैं तो टैक्सी करूँगी ही करूँगी, तुम घर पर सो जाना, सुबह अर्ली इन द मॉर्निंग हम तुमको भेज देंगे या मैं तुम्हारे साथ आऊँगी। बच्चों का स्कूल है तो आशा संभाल लेगी। आशा, मेरे पिता के ड्राइवर की नौकरानी की बच्ची थी। वह मेरे घर पर ही रहती थी। वो बच्चों को देख लेगी, मैं तुम्हारे साथ चली चलूँगी, तुम्हारी माँ से मिलूँगी। वह बोला, नहीं... नहीं.... नहीं। मैंने कहा, नहीं.. नहीं मैं तो आऊँगी। मैं ये सोचती रही, इतने बड़े एक्टिविस्ट दत्ता सामंत जो हिंदुस्तान के हर कोने से आए हुए मजदूर, यहाँ तक आदिवासी इलाकों से, जमशेदपुर वहाँ के किनारे के और संस्थान परगना के उन लोगों तक भी पहुँचे हैं। लेकिन अपने सामने ही डोलते इन लोगों तक कभी नहीं पहुँचे। ये समाज से अलग क्यों है, इनको देखकर हम चिढ़ क्यों जाते हैं? इतना संवेदना का समुंदर हमारे अंदर ठांठे मारता है, बिना चंद्रमा के ज्वार उठता रहता है। इनको देख कर के घृणा क्यों उपजती है, जबकि बाकी लोगों के साथ नहीं होता है। तब मैंने सोचना शुरू किया कि मैं लिखूँगी। उस बच्चे से मैंने दिल्ली आ करके भी संपर्क कायम रखा। 5 मई, 1983 जब मैं दिल्ली आई, तो मैंने उससे संपर्क किया। उसको फिर से पढ़ने की इच्छा थी। वह आठवें दर्जे तक पढ़ा था जब तक माँ उसको छुपा सकती थी, छुपाया। फिर उसके बाद

डर के मारे उसकी दुनिया खत्म हो गई। उसका बड़ा भाई भी था। यह सब कुछ नालासोपारा में आया है अगर तुमने पढ़ा होगा तो इसकी तुम्हें जानकारी होगी।

चूँकि मैं कलकत्ता के सोनागाछी क्षेत्र में बच्चियों को पढ़ाने–लिखाने जैसे सामाजिक कार्यों में बहुत सक्रिय थी तो जैसे ही ये सुगबुग होने लगी और पता चला कि सरकार अनेक नीतियाँ तैयार कर रही है। मैंने सोचा कि जब तक ये बच्चे घर पर नहीं रहेंगे तब तक कोई फायदा नहीं होगा। जब तक भ्रूण हत्या को लेकर बने कानून की तरह सरकार कोई सख्त कानून नहीं बनाता तब तक कुछ नहीं किया जा सकता। इस तरह के प्रश्न मेरे मन को उद्वेलित करने लगे। वो कभी–कभी मेरे घर आता था, मेरी उससे बात होने लगी। मैं उसकी आगे की पढ़ाई के लिए इग्नू में सत्यकाम जी से बात कर रही थी। बच्चा आठवीं तक पढ़ा है तो इग्नू में वह सीधे 10वीं की परीक्षा भी दे सकता है। मैंने कहा कि ये पढ़ना चाहता है, जो खर्च होंगे हम लोग देंगे पर वह तो खुद ही गाड़ियाँ वगैरह धोकर अपना खर्च निकाल लेता था। मेरे मन में प्रश्न उठा कि अब तक मैंने इस मुद्दे पर क्यों नहीं विचार किया। इस बीच मैंने कलकत्ता में स्त्री शक्ति पैरलल फोर्स में भी यह प्रश्न उठाया कि हम समाज के अंधेरे पक्ष से मुख मोड़ रहे हैं, जिस अंधेरे को हमने निर्मित किया है और उन्हें पाताल में धकेल रखा हैं। उनका घर कैसा है, वे कहाँ, कोने में अलग–थलग रहते हैं, उनके खान–पान, भगवान अलग हैं, वे शिक्षा माँगने के लिए मजबूर हैं और हमने यह आडंबर रच रखा है कि शादी–ब्याह या बच्चे के जन्म पर ये नाचने–गाने आएंगे, इनका आशीष पड़ेगा तो बड़ा शुभ होगा। यदि ये अपने लिए शुभ नहीं हैं तो भला हमारे लिए कैसे शुभ हो सकते हैं? इन सारी बातों से मन में एक दर्द उठा और मेरे लिए वह बच्चा उदाहरण था। इस बच्चे को मुझे पढ़ाना है तो मुझे प्रयत्न करना होगा, इसकी माँ तो इसे अपने पास नहीं रख रही है। मैं सत्यकाम जी के सहयोग को कभी भूल नहीं सकती। ऐसे सामाजिक प्रश्नों पर मैं ही कुछ कर सकती थी। सरकार इसमें कुछ नहीं कर सकती। ज्यादा–से–ज्यादा वे इनकी बस्ती में जाएगी, बिलो पॉवर्टी लाइन में इनका राशन कार्ड बना देगी। सरकार के आरक्षण के घेरे में हर व्यक्ति आ गया लेकिन ये लोग नहीं आए। इस तरह से नरोत्तम का पश्चिम एक्सप्रेस में मुझसे मिलना, भाग कर ट्रेन के उस डिब्बे में चढ़ जाना, जिसमें मैं यात्रा कर रही थी, मेरे लिए एक प्रस्थान बिंदु बना कि मैं उनके बारे में सोच सकूँ, उनके बारे में कुछ लिखूँ। मैं जिन–जिन संस्थाओं से जुड़ी हूँ उनसे तो मदद ले ही सकती हूँ, पर ये सबकुछ सरकारी व कानूनी दायरे में होना चाहिए। आप उन्हें आरक्षण देकर उनका भला कैसे कर सकते हैं। उसने मुझे बताया कि जब तक वह आठवे दर्जे में पढता था, कोई ताली बजाकर उनका मजाक नहीं बनाता था। वे इस तरह की ताली बजाने की आदतें देखकर अपनाते हैं, कुछ हारमोंस के कारण होता है कि चलते हुए शरीर में हल्की–सी लचक आ जाती है। अब इसकी वजह से उन्हें समाज से अलग का देना उचित नहीं है।

जी दीदी, आपने बिल्कुल सही कहा कि इसकी वजह से इन्हें समाज से बहिष्कृत करना उचित नहीं है, यह बहुत ही संवेदनशील समस्या है।

हाँ, इसकी वजह से इन्हें इनके छत से, इनके घर के पते से, इनके अभिभावकों से वंचित किया जाना ठीक नहीं है। अभिभावकों से अलग इनके धर्म ने अलग किया है। धर्म ने इतना भयभीत किया है कि ऐसा बच्चा मरने के समय तुम्हें पानी नहीं दे सकता, ये किसी पवित्र अनुष्ठान में शामिल नहीं हो सकता, ये तुम्हारे तीज–त्योहार का हिस्सा नहीं हो सकता, ये यदि घर में रहेगा तो अन्य बच्चों की शादियाँ नहीं होंगी, लड़कियों की शादियाँ तो होंगी ही नहीं। बच्चे यदि नहीं हुए तो कहीं इनकी तरह कुछ गड़बड़ तो नहीं है। कई फिल्मों और उपन्यासों में इनकी बेचारगी को दर्शाया गया है जबकि यह एक सामाजिक मुद्दा है। यह हमारे घर, समाज और बच्चों की जिम्मेदारी का मुद्दा है। अतः मैंने इसे धर्म, समाज, राजनीति और स्वयं मनुष्य (अभिभावक के रूप में) का मुद्दा माना। जो माँ नौ महीने गर्भ में रखती है, बिना सोचे–समझे कि क्या पैदा होगा, किसी हारमोंस के कारण बच्चा कैसा होगा? अंधा, लंगड़ा, काना, लुल्हा को तो घर में रख लिया जाएगा किन्तु इनको नहीं रखा जाएगा। तो मैंने यह तय कर लिया कि मैं सृजनात्मक रूप से इन मुद्दों पर प्रहार करूँगी कि आप के भीतर एक द्वंद्वभर जाए। मैं चाहती हूँ कि आज की नई पीढ़ी इस उपन्यास को पढ़े, इसे पाठ्य क्रम में भी शामिल किया जाए। मैं विश्वास करती हूँ लेखन परिवर्तन की प्रस्थापन भूमि है। अगर कोई लेखन, कोई कहानी, कोई जीवनी, चाहे गाँधी जी के सत्य अहिंसा का प्रयोग हो, प्रसाद और विद्योत्तमा की जीवनी हो या द्रौपदी की जीवनी हो, जिसके विषय में लोहिया जी ने कहा है कि वह स्वतंत्र चिंतन की नारी रही है जिसने पहली बार पितृसत्तात्मक समाज को घेरा। लेकिन हमने स्त्री विमर्श नहीं लिया। सीता का पारिभाषित स्त्री विमर्श नहीं लिया। मीरा का उदाहरण लीजिए, मेरे तो गिरिधर गोपाल, उन्हें जहर का प्याला दिया गया। गिरिधर तो भगवान थे, तब भी वो किसी को हजम नहीं हुआ।

दीदी, आपने स्त्री विमर्श को लेकर बहुत अच्छी बात कही कि कोई तो मूल्य हो, स्त्रीयोचित मनोभाव से ही सही।

हाँ, बिल्कुल। मीरा से हमें यह तो मिला कि कोई व्यक्ति हो या प्रेम हो, हमें उसके लिए अपने को उत्सर्ग कर देना चाहिए। द्रौपदी के संदर्भ में कहे तो द्रौपदी को वस्तु समझकर कहा कि बाँट लो, बिना समझे कहा कि अच्छी चीज लाए हो, पाँचों मिल–बाँटकर खा लो, तो यह कैसे मूल्य बन गया। फिर सतीत्व के निर्वाह की बात करते हैं। आज तो सीता तथा रावण के प्रसंग का बुरा हाल होता जा रहा है। भारतीय संस्कृति और उसकी छवि को बिगाड़ने का प्रयास किया जा रहा है।

दत्ता सामंत और मेरे प्रोफेसर अनंतरात त्रिपाठी ने गुरु की तरह ये सरोकार मेरे भीतर भरे। मेरे प्रोफेसर अनंतराम त्रिपाठी ने मुझे बताया कि साहित्य क्या होता है, इसे कैसे लिखना, पढ़ना तथा बोलना चाहिए। मेरे गुरु ने मुझे दीक्षित किया। दत्ता सामंत तो मजदूरों की समस्याओं को दहाडे मार–मार कर उठाते थे और अखबारों के लिए मुझसे हिन्दी में लिखवाते थे, जिसमें मैं अवधी का भी प्रयोग करती थी लेकिन मैं इन तक नहीं पहुँची थी, मेरे सरोकारों ने भी मुझे इन तक नहीं पहुँचाया। नरोत्तम से मेरी मुलाकात ने एक रात में ही मुझे

इन तक पहुँचाया और मेरी सोच को बदल दिया। बच्चे ने बदला, वह बिलख–बिलख कर रोया कि मैं माँ के लिए तरसता हूँ, माँ कैसे रहती होगी, माँ के पाँव सूज जाते हैं, वह अब थक जाती है। मोटा भाई तो अलग हो गए। माँ और बेटे के बीच अब पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपाड़ा है। माँ मंदिर जाने के बहाने पोस्ट ले लेती थी। घर के पते पर तेरा कुछ नहीं आना है, नहीं तो ठिकरा ये लोग मेरे को भी निकाल देंगे। इसलिए वह छिपाती थी। उसकी चिट्ठी घर में लाती थी और कई–कई बार पढ़ती थी, गद्दे के नीचे कवर में डाल देती थी। तो ये चीजें तब समझा में आई जब मैं उससे मिली और मैं इस सच्चाई से अवगत हुई, समाज के इस पक्ष से अवगत हुई, राजनीति के उस पक्ष से अवगत हुई कि आपने आरक्षण आखिरी आदमी तक पहुँचाया है लेकिन इन लोगों को हाशिए में भी एक कोर तक नहीं मिला है, इनके बारे में सोचा ही नहीं गया है।

इस तरह दीदी, आपका संपूर्ण साहित्य समाज से जन्मा हुआ है। आपका साहित्य अनुभवजनित है।

हाँ, मैंने अपने उन अनुभवों को जो अलग–अलग आयामों से थे, उन्हें एक साथ जोड़कर देखा। जब मैं लिख रही होती हूँ, तो मुझे एकांत चाहिए होता है। मैं अपने एकांत में चाहे मैं शिमला में रहूँ या कहीं और। पंडित जी या मेरी संस्थाएँ मेरे लिए एक–डेढ़ महीने का जुगाड़ कर देते हैं कि वहाँ जाकर लिखो। रफ ड्राफ्ट तो मैं पहले तैयार कर लेती हूँ किन्तु फाइनल ड्राफ्ट के लिए मुझे एकांत चाहिए होता है। मेरे उस कमरे, उसके प्रांगण में और गलियारों में वो गलियाँ आकर बस जाती हैं। वो गलियाँ वो नहीं रह जाती हैं, ये गलियाँ बन जाती हैं और मैं उनके बीच होती हूँ, उनकी तरह ही होती हूँ। ऐसा हो जाना मेरे लिए मुश्किल नहीं है। मैं यह मानती हूँ कि लेखन में स्थानीयता, अंचल, क्षेत्र बोलता प्रतीत होना चाहिए, जिसकी मिट्टी बोलती हो। मिट्टी चाहे ईंटों के रूप में हो, सिमेंटेट के रूप में या फाइव स्टारा होटल की हो, वो जरूरी होता है। उनके जिस अंचल पर लिखते हैं, जिस क्षेत्र से उखड़कर ये आए होते हैं, उसे लेखन के समय आपको सृजित करना होता है तभी आप उनके साथ रच–बस सकेंगे। ये मेरा मानना है। कहाँ तक मैं सफल हूँ, मुझे नहीं मालूम। मुझे इसका दंभ नहीं। मैं तो अपने अनुभवों से लिखती हूँ। मैं अपने देश के मूल्य और सिद्धांत को नहीं छोड़ सकती हूँ। मैं अपने को भारत की स्त्री ही मानकर चलती हूँ। मेरे यहाँ स्त्रियों के उदाहरणों की कमी नहीं है। खुद मेरे घर में कमी नहीं है। मेरी माँ थी, काकी थी, ताई जी थीं और मेरी दादी थीं, मेरी बुआएँ थीं। मेरी परी की तरह सुंदरी छोटी बुआ एक दुहाजू से ब्याही गई थी, जिनका एक ही काम था शिकार खेलना और शाम को आकर अय्याशी करना। ये मैंने अपने घर में देखा। मेरे घर में सब पढ़े–लिखे थे। मेरे खानदान में पढ़ने–लिखने का भी माहौल था। मैं तो यह मान कर चलती हूँ कि मैंने अब तक जो कुछ लिखा है, अपने अनुभवों को ही आत्मसात करके लिख रही हूँ।

अभी नकटौरा उपन्यास जो मैंने पूरा किया है। नकटौरा उत्तरप्रदेश की एक प्रथा है, जिसमें जब ब्याहने के लिए बारात चली जाती है, तो उसके बाद औरतें घर में रह जाती हैं।

घर की रक्षा के लिए रतजग्गा करती हैं, नाटक करती हैं, दरोगा, डॉक्टर बनने का स्वांग करती हैं, एक–दूसरे को फुहड़ गालियाँ देती हैं, मजाक उड़ाती हैं। वे बुरे–से–बुरे पुरुष का नकल उतारती हैं। पुरुष जब बारात से लौटकर आते, तो कहते नकटौरा हुआ। नकटौरा का मतलब हुआ नाक कटा कर नाटक करना, सारी सीमाएँ तोड़ देना।

मैंने अपने घर में सदा अदब देखा है। मेरी दादी के सामने मेरी माँ खाना नहीं खाएँगी। दादी के खाने के बाद खाएँगी। औरत–औरत के सामने घुँघट में रहेंगी। मेरा इन बुराइयों के प्रति विद्रोह रहा है किन्तु मैं अपनी भारतीय सभ्यता–संस्कृति का सम्मान करती हूँ। मैं स्त्री ही हूँ। मैं पुरुषों की नकल नहीं करती। मैं स्त्री होकर ही रहना चाहती हूँ। मैं रूढ़ियों से मुक्त होऊँगी। पंडित जी नहीं रहे। वे कहते थे कि तुम्हारा माथा बहुत चौड़ा है, बड़ी बिन्दी ही अच्छी लगती है चित्रा, बिन्दी को नहीं निकालो। मैंने उनके मरने के बाद भी बिन्दी को नहीं निकाला। मैं जैसे बिन्दी चिपकाती हूँ, शीशे में देखती हूँ, मुझे पंडित जी याद आते हैं।

मैंने तो कहा था कि ये बिन्दी आपका ट्रेड मार्क है दीदी, आप इसे लगाया कीजिए।

हाँ कला, तुमने कहा था और हमने रूढ़ि को भी तो बदला है। रूढ़ियों से हम मुक्त हो रहे हैं और जो सही मूल्य है उनको रख रहे हैं। मेरे अनुभव के क्षेत्र में आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता का बोध भी है। आज के स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, गलियाँ, हिन्दु कॉलेज, रामजस कॉलेज का वातावरण आदि में बहुत एक्सपोजर है। हमारे समय में अलग था, इनके समय में थोड़ा और अलग हो गया है तो वो अब हमारे पास आ रहा है। तब लड़के–लड़कियों के लिए अलग माहौल हुआ करता था। हमारे सर बहुत ध्यान रखा करते थे। कभी लड़कों के साथ देख लिया तो कहते थे कि वहाँ क्या कर रही थी? हम कहते, सर, कुछ नहीं थोड़ा बात कर रहे थे। वो...जरा... लड़के पूछ रहे थे...., तो वे कहते, अच्छा....अच्छा ठीक है, पहले खुद तो समझ लो फिर लड़को को बताना। तो इस तरह गुरु हमें पिता की तरह गाइड करते थे। गुरु में तो सारे रूप हैं। प्रोफेसर अनंतराम त्रिपाठी जब तक राष्ट्रभाषा प्रसार समिति वर्धा में जिन्दा थे तब तक मैं दिल्ली में किसी भी मंच पर बैठी हूँ, मैं मंच से उतर कर सबसे पहले उनके चरण स्पर्श करती, फिर वापस मंच पर जाती। इस तरह हमारे पास सीता–राम, अनसूइया से लेकर न जाने कितने लोगों के मूल्य हैं, संस्कार हैं और हमें उन्हीं लोगों का उदाहरण रूढ़ियों से लड़ने की ताकत भी देते हैं। स्त्री को स्त्री रूप में जन्म लेने में कोई हानि नहीं हैं। स्त्री विमर्श को लेकर हम गलत दिशा में मुड गए हैं और यह चिंता का विषय है, सोचने का विषय है। हमारे सिद्धातों, मूल्यों, संस्कृति और सामाजिकता में उपभोक्तावाद आकर समा गया है। इसने हमारी संवेदना को सूखा दिया है।

आज के जो रचनाकार हैं, जो लिख रहे हैं, वे युवा रचनाकार हैं। वैसे तो जो कुछ आपने कहा है, निश्चित तौर पर उससे वे बहुत प्रेरणा ग्रहण करेंगे। मैं

चाहता हूँ कि 'साहित्य यात्रा' के माध्यम से आपके प्रेरक संदेश उन तक जाएँ, तो मेरे युवा रचनाकारों के लिए आप कुछ कहें।

जिसको साहित्य में रुचि है, वे सिर्फ पाठ्य क्रम में ही साहित्य को न पढ़े, एक दो कहानियों को ही साहित्य न समझ लें। साहित्य लिखना है, तो पहले साहित्य पढ़ना बहुत जरूरी है। साहित्य के माध्यम से अनुभवों का विस्तार करना बहुत जरूरी है, पात्रों के मनोविज्ञान को समझना बहुत जरूरी है। इसे समझाने के लिए कोई मनोवैज्ञानिक नहीं बैठा होता है। आप देखेंगे कि जो सृजक है, वह कैसे अपनी सृजना के माध्यम से पात्रों के मनोविज्ञान को निकालकर लाता है, उसकी जानकारी आपको होगी। उसके साथ–साथ यदि आपको खुद भी लिखना है तो आप अपने अनुभवों को विस्तृत कीजिए। आपके सामने कितने ही आयाम खड़े हो जाए पर आप बिना अनुभवों को आत्मसात किए, उन्हें बिना समझे, सिर्फ कुछ रचनाएँ पढ़कर अपने रुझान को स्वरूप प्रदान नहीं कर सकते हैं। लेखन के लिए मेहनत करना पड़ता है। अनुभव आपका बहुत बड़ा गुण साबित होता है। समाज सापेक्ष दृष्टि को विकसित कीजिए। सही को चुन सके, सही को कसौटी पर कस सके, सही अगर कहीं भी रूढ़ि लगने लगती है तो उस माने हुए को भी आप सही ढंग से सही कर सके। उसको आचरण में ला सकते हैं और अपने बच्चों को भी बता सके। ये बच्चे बराबर मुझसे बहस करते है। कहते हैं कि दादी, ये आपने ठीक नहीं सोचा, ये गलत है। तो मैं सोचती हूँ, क्या गलत है, इस पर विचार करती हूँ। यही आधुनिकता है, इसे ही जोड़ना है।

दीदी, आप 'साहित्य यात्रा' सात वर्षों से पढ़ रही हैं। 'साहित्य यात्रा' में आपकी रचनाएँ छपती रही है। आप इसकी प्रशंसा भी करती रही हैं। मैं चाहूँगा कि 'साहित्य यात्रा' के बारे में आप कुछ कह दें, जो हमारे लिए थाती बने।

मुझे यूँ ही पत्रिका निकालनी है और उसका संपादक बनना है, 'साहित्य यात्रा' उस शौक का पर्याय नहीं है। यह बहुआयामी है, इसमें साहित्य के विविध पक्ष जैसे–कविता, निबंध, आलेख, कहानी सभी समाहित होते हैं। हमारा जो साहित्यिक समाज है, वह अनुभव से पकी हुई है, उसकी सृजनात्मकता जो बुजुर्गियत में ढलकर हमारे सामने खड़ी है। ये सब चीजें मुझे साहित्य यात्रा में मिलती है। इसको टुकड़े–टुकड़े में पढ़ने का सुख है। इसको एक बार में पलट कर पढने का सुख नहीं है। टुकड़े–टुकड़े में पढ़ने की बात जब मैं कहती हूँ तो मैं इसके हर पृष्ठ के शीर्षक और संपादकीय टिप्पणी को थोड़ा–सा देख लेती हूँ। संपादकीय टिप्पणी विषयों को प्रस्तुत करने में किस तरह की दी गई है, क्यों उसे लगा कि ये चीज पाठकों को देनी चाहिए। साहित्य यात्रा के जो नए प्रबुद्ध पाठक हैं, जो लेखक बनने की प्रक्रिया में हैं और जो बनना चाहते हैं, उनको साहित्य के विविध पक्षों का ज्ञान हो, वे इसे गहराई से जाने और ये भी समझे कि अगर अपने घर के आस–पास किसी मिट्टी में कुएँ की जरूरत होती है तो उस मिट्टी की नमी से इसका पता लगाया जाता है। अगर आठ फीट पर पानी नहीं मिलता है या साठ फीट पर भी पानी का स्त्रोत नहीं मिलता है और एक सौ पचपन फीट पर मिलता है तो एक सौ पचपन फीट की खुदाई करनी चाहिए ताकि पानी का स्त्रोत

मिल सके। फिर हम बाल्टियाँ उलीच सकेंगे, पी सकेंगे, फिर वो पानी खेतों में अनाजों के लिए होगा और घर के लिए होगा और सब के लिए होगा। लेखन में गहराई होना बहुत जरूरी है। थोड़ा–मोड़ा लिखकर ये नहीं समझना चाहिए कि वो छप गया। तो ये सिखाती है 'साहित्य यात्रा'।

कला जी, मैं तुम्हें बहुत बधाई देना चाहती हूँ, आशीष देना चाहती हूँ कि ये साहित्यिक एक्टीवीज्म है। एक तो साहित्य ये कि लाइब्रेरी से किताब लेकर उसे पढ़िए और दूसरा अपने अनुभवों को विस्तार दीजिए। अपने भीतर के मनोचिकित्सक को पुष्ट कीजिए, अपने भीतर समाज सापेक्ष एकता को विकसित कीजिए, समाज कैसा चाहते है, उसे पाइए, खोजिए। आप अपने आचरण से समाज की बेहतरी के लिए क्या कर सकते हैं? यह सब सोचने के लिए यह पत्रिका विवश करती है।

मैं बहुत बधाई देती हूँ। यह पत्रिका वर्षों से निकल रही है। यह मुझे अनिवार्य इसलिए लगती है कि कभी–कभी मैं भी इसको पढ़ते हुए सुधरती हूँ। कुछ पक्ष ऐसे हैं, मुझे लगता है छुट गए थे। कुछ पक्ष आज के हैं, वे किस रूप में विकसित हो रहे हैं वे भी मुझसे छुट गए हैं, मैं उन तक नहीं पहुँच पा रही हूँ। 'साहित्य यात्रा' विचारशीलता की एक अंर्तयात्रा है। आपके परिष्करण के, आपके अनुभवों को संपुष्ट करने के, आपके सोचने के तरीके को बदलने की कि आपको अपने जीवन के प्रतिक्षण को, अपने जीवन के प्रत्येक प्रस्थान के साथ आप किस बेहतरी के बारे में सोचते हैं, उसके लिए कहीं–न–कहीं ये पत्रिका बहुत सहायक सिद्ध होती है। इसके बहुत से लेख लोगों के अनुभवों से निशुद्ध होकर आते हैं, जिसे हमारे संपादक जी छापते हैं, तो उससे हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। निश्चित ही साहित्यिक पत्रिकाओं की बहुत कमी है। 'साहित्य यात्रा' एक अच्छे काम और बेहतर समाज के लिए एक अनिवार्य पत्रिका है। मेरी बहुत–बहुत शुभकामनाएँ। तुम्हारे जैसे संस्कृत एवं साहित्य के विद्वान व्यक्ति, जो स्वयं लेखक, कवि और सजग है, से अपेक्षा बढ़ जाती है। आप अपना सर्वस्व दान करके इसे पोषित कर रहे हैं, यह बहुत बड़ा काम कर रहे हैं।

बहुत–बहुत आभार दीदी, आप स्वस्थ हों, दीर्घायु हों, आपका सदैव मार्गदर्शन मिलता रहे। आपसे बातचीत करके बहुत अच्छा लगा। आप पूर्ण स्वस्थ नहीं हैं फिर भी आपने इतने विस्तार से पाठकों की जिज्ञासाओं को तुष्ट किया। वे आपके उत्तर से निश्चय ही संतुष्ट होंगे और उन्हें बहुत कुछ नई दृष्टि प्राप्त होगी। यह बातचीत संपूर्ण साहित्य समाज और आगामी पीढ़ी के रचनाकारों के लिए महत्वपूर्ण साबित होगा। इतने दिनों में एक पीढ़ी के अंतराल को आपने बदलने का प्रयास किया है। आपका जीवन स्वयं एक कथा, उपन्यास की तरह है। आपने उसको जीया है, इसलिए आपके भीतर इतनी सहनशीलता और इतनी संवेदना है, जिससे जीवन के हर पक्ष को आप चित्र रूप में उकेर सकती हैं।

आपका बहुत–बहुत धन्यवाद।

खुद एक लोकगीत बन गए सत्यार्थी जी

प्रकाश मनु

सत्यार्थी जी की धूल भरी यात्राओं ने उन्हें चाहे कितने अभाव और कष्ट दिए हों, पर उनके प्रति वे यह कहकर कृतज्ञता जताए बगैर नहीं रहे कि इन यात्राओं ने ही उन्हें देश के बड़े से बड़े कर्णधारों, राजनेताओं, चिंतकों, लेखकों और कलाकारों से मिलवाया। जीवन के अलग–अलग क्षेत्रों के मूर्धन्यों ने भी उनकी इन लोकयात्राओं के लिए खास आदर प्रकट किया और उत्सुकता से उनके बारे में जानना चाहा।

अमृता प्रीतम ने लिखा है कि लोकगीतों की खोज करते – करते देवेंद्र सत्यार्थी खुद एक लोकगीत बन गए। मैं समझता हूँ कि विलक्षण लोकयात्री सत्यार्थी जी की बीहड़ लोकयात्राओं और उसके पीछे छिपे उनके बेहिसाब दुख–तकलीफों और फकीरी को बयान करने के लिए इससे खूबसरत अल्फाज कुछ और नहीं हो सकते।

सच तो यह है कि लोकगीतों की खोज में सत्यार्थी जी ने इस महादेश का चप्पा–चप्पा छान मारा। गाँव–गाँव, डगर–डगर और दूर तक जाती धूल भरी पगडंडियों पर चलते उनके पैर इस देश का एक नया सांस्कृतिक इतिहास लिख रहे थे। फिर कुछ जगहों पर तो वे बार–बार गए और हर बार एक नया खजाना उन्हें हासिल हुआ। जेब में चार पैसे नहीं, पर उनकी अनवरत यात्राएँ जारी थीं। हर जगह किसी खेत की पगडंडी या पेड़ तले बैठकर किसी राहगीर से लोकगीत सुनकर अपनी कॉपी में तल्लीनता से लिखना, और साथ–साथ उनकी भावगंगा में डुबकी लगाना। फिर उसी राहगीर की मदद से वे उसका अर्थ भी लिख लेते। बाद में किसी सहृदय पाठक या प्रशंसक के घर रुकने का सुयोग मिलता, तो जरा तसल्ली से कॉपी में सँजोए गए उन सुंदर और मर्मस्पर्शी लोकगीतों पर लेख लिखे जाते। ऐसे लेख जो हृदय से निकलते

और सीधे हृदय तक जाते थे। देश के अलग–अलग जनपदों के लोकगीतों पर लिखे गए सत्यार्थी जी के वे भावनात्मक लेख 'माडर्न रिव्यू', 'विशाल भारत' और 'हंस' सरीखे पत्रों में छपते, तो पूरे देश का ध्यान उनकी ओर जाता। यहाँ तक कि महात्मा गाँधी, रवींद्रनाथ ठाकुर, मदनमोहन मालवीय, जवाहरलाल नेहरू, राजगोपालाचार्य, के.एम. मुंशी और राहुल सांकृत्यायन तक उनके मुरीद थे।

सत्यार्थी जी की धूल भरी यात्राओं ने उन्हें चाहे कितने अभाव और कष्ट दिए हों, पर उनके प्रति वे यह कहकर कृतज्ञता जताए बगैर नहीं रहे कि इन यात्राओं ने ही उन्हें देश के बड़े से बड़े कर्णधारों, राजनेताओं, चिंतकों, लेखकों और कलाकारों से मिलवाया। जीवन के अलग–अलग क्षेत्रों के मूर्धन्यों ने भी उनकी इन लोकयात्राओं के लिए खास आदर प्रकट किया और उत्सुकता से उनके बारे में जानना चाहा। बेशक इनमें से बहुत–से दिग्गजों और मनीषियों ने खुद आगे बढ़कर उनकी मदद भी की। इससे सत्यार्थी जी की ये यात्राएँ आनंदपूर्ण और कुछ आसान भी हो गईं।

इस तरह के मूर्धन्यों में एक ओर प्रेमचंद और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे अपने–अपने क्षेत्रों के दिग्गज थे, तो अज्ञेय और जैनेंद्र सरीखी बड़ी साहित्यिक प्रतिभाएँ भी थीं। बलराज साहनी और साहिर जैसे हरदिल अजीज शख्स थे जिन्होंने आगे जाकर फिल्मी दुनिया में बड़ा नाम कमाया तो पाब्लो नेरूदा भी, जो उस समय विश्वविख्यात शख्सियत बन चुके थे। फिर गुरुदेव टैगोर और महात्मा गाँधी का तो सदैव उन्हें आशीर्वाद मिला ही। और सत्यार्थी जी के उनसे जुड़े अनेक प्रसंग अब ऐतिहासिक थाती बन चुके हैं।

इनमें प्रेमचंद से उनकी मुलाकात लखनऊ में हुई थी। सुबह कोई दस बजे का समय। पहले वे लमही गाँव गए थे, पर वहाँ प्रेमचंद नहीं मिले तो लखनऊ में उनके निवास पर जा पहुँचे। प्रेमचंद से उनकी यह मुलाकात बड़ी अनोखी और यादगार थी। हालाँकि शुरू में वे उन्हें पहचान ही नहीं पाए। प्रेमचंद की सादगी और मामूली वेशभूषा ने उन्हें धोखे में डाल दिया। असल में हुआ यह कि सत्यार्थी जी तो अपनी आदत के अनुसार बगैर सूचना दिए ही पहुँच गए थे। उन्होंने किसी बच्चे से कहा कि मुझे प्रेमचंद जी से मिलना है। वह उन्हें उनके घर तक छोड़ गया। सत्यार्थी जी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचे तो देखा, एक व्यक्ति एक डेस्क के आगे बैठा कुछ लिख रहा है। एकदम साधारण–सी धोती, साधारण–सा कुरता...बिल्कुल गँवई रंग–ढंग। सत्यार्थी जी कल्पना ही नहीं कर सके कि यही प्रेमचंद हैं। वे एकदम सीधे–सरल इनसान उन्हें लगे, जिनमें लेखक होने का जरा भी घमंड नहीं था। शायद इसीलिए वे धोखा खा गए। लेकिन इससे वार्तालाप का प्रारंभ बड़ा विनोदपूर्ण हो गया।

जिस समय सत्यार्थी जी पहुँचे, प्रेमचंद अपने उपन्यास पर काम कर रहे थे। बोले, "जरा रुकिए, मैं जरा यह प्रसंग पूरा कर लूँ, फिर जमकर बातें होंगी।"

कुछ देर वे चुपचाप लिखने में लीन रहे, फिर प्रसंग पूरा होने पर पेन बंद करके रखा और सत्यार्थी जी की तरफ मुखातिब हुए। मुक्त अट्टहास के साथ खूब खुलकर बातें हुईं। यों भी प्रेमचंद खूब खुश–खुश और जिंदादिल आदमी थे। बड़ी सजहता से बातें करते थे और सत्यार्थी जी तो इसी के मुरीद थे। उन्होंने पूछा, "उपन्यास लिखते–लिखते जहाँ आप अपना काम खत्म करते हैं, तो अगले दिन वहीं से शुरुआत करने में मुश्किल नहीं आती?"

प्रेमचंद हँसकर बोले, "नहीं, भीतर कहानी रची–बसी रहती है, इसलिए कोई मुश्किल नहीं आती। फिर अब तो आदत पड़ गई है, कलम अपने आप चल पड़ती है।"

इस पर सत्यार्थी जी को पंजाब की चरखा कातने वालियों की याद आई। वे चरखा कातती हैं और साथ–साथ त्रिंजन गीत गाती भी जाती हैं। पूनी से पूनी जोड़ते हुए वे धागे में इतनी बारीकी से गाँठ लगाती है कि कहीं कोई जोड़ नहीं पता चलता। उनके त्रिंजन गीतों के स्वर और सूत की कताई एकदम साथ–साथ चलती रहती है। सत्यार्थी जी ने यह बात प्रेमचंद को बताई तो सुनकर वे खूब खुश हुए। हँसकर बोले, "यह तो आपने बहुत अच्छा उदाहरण दिया। आपकी यह बात मुझे हमेशा याद रहेगी।"

सत्यार्थी जी को राजनेताओं से मिलने में ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। उन्हें आम लोगों, लेखकों, कलाकारों और जनता के बीच काम कर रहे समाजकर्मियों से मिलना कहीं अधिक पसंद था। पर गाँधी जी की तरह सत्यार्थी जी पंडित जवाहरलाल नेहरू के भी प्रशंसक थे और उनसे उनकी कई अंतरंग मुलाकातें हुई थीं। कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में बैलगाड़ी पर नेहरू जी का जुलूस निकला था। सत्यार्थी जी ने उसका वर्णन फैजपुर अधिवेशन पर लिखे गए अपने लेख 'कांग्रेस गोज टु ए विलेज' में किया है, जो न्यूयार्क से निकलने वाली पत्रिका 'एशिया' में छपा था। उस सम्मेलन में गाँधी जी की तरह नेहरू जी और पटेल ने भी उनकी लोकयात्राओं के प्रति उत्सुकता प्रकट की थी। इस सम्मेलन में सत्यार्थी जी को कुछ ऐसे लोकगीत सुनने को भी मिले, जिनमें नए जमाने का भी असर था। कुछ लोकगीतों में इस बात का जिक्र था कि सरदार पटेल की पहले बड़ी–बड़ी मूँछें हुआ करती थीं जो अब गायब हो गईं। कुछ लोकगीतों में बैलगाड़ी पर यात्रा कर रहे नेहरू जी का मजेदार वर्णन था। सत्यार्थी जी ने अपने लेख में इन लोकगीतों का भी वर्णन किया है, जो आम जनता के बीच से पैदा हुए थे, पर आज दिग–दिगंत को गुंजारित कर रहे थे और एक बदले हुए इतिहास के गवाह बन चुके थे। जाहिर है, 'एशिया' सरीखी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका में छपे सत्यार्थी जी के इस लेख की दूर–दूर तक चर्चा हुई और उसने उन्हें रातोंरात प्रसिद्ध कर दिया।

मैं इनसे शांतिनिकेतन में मिल चुकी हूँ

नेहरू जी से सत्यार्थी जी की खासी लंबी और अंतरंग मुलाकात तब हुई, जब वे

अंतरिम सरकार में प्रधानमंत्री थे। तब पं. जवाहरलाल नेहरू के घर पर सत्यार्थी जी की उनसे कोई डेढ़–दो घंटे तक बातचीत चली। उनमें एक फ्रेंच पत्रिका के फ्रेंच संपादक भी शामिल थे। आतिथ्य श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया था। जब वे चाय लेकर आईं, नेहरू जी ने सत्यार्थी जी का परिचय कराया। इस पर इंदिरा जी ने मुसकराते हुए कहा, "मैं इनसे शांतिनिकेतन में मिल चुकी हूँ, गुरुदेव टैगोर के साथ!" और जब नेहरू जी ने इंदिरा को पास बैठकर चाय पीने को कहा, तो उनका विनम्रतापूर्वक साफ इनकार। इंदिरा जी का कहना था, "मैं भला अपने गुरु जी के सामने कुर्सी पर कैसे बैठ सकती हूँ?"

इस घटना की पृष्ठभूमि भी सत्यार्थी जी से ही पता चली। असल में सत्यार्थी जी अकसर शांतिनिकेतन में जाते थे और वहाँ हजारी बाबू से उनकी मुलाकात होती थी। एक बार द्विवेदी जी अस्वस्थ थे, तो उन्होंने सत्यार्थी जी से कहा कि आज मेरी जगह आप जाकर पढ़ा दीजिए।

सत्यार्थी जी हैरान। बोले, "आपकी जगह मैं कैसे पढ़ा सकता हूँ? मैं तो आपके विषय का विद्वान नहीं हूँ।"

इस पर द्विवेदी जी का जवाब था, "आपको इसकी क्या जरूरत है? आप तो जो विषय अच्छा लगे, उसी को लेकर बच्चों से बातें करें। वही विद्यार्थियों के लिए आनंददायक विषय बन जाएगा।"

और सत्यार्थी जी ने जिस कक्षा में पढ़ाया था, उसमें इंदिरा गाँधी छात्र के रूप में मौजूद थीं।

हालाँकि यायावर साहित्यकार का पढ़ाना भी क्या था! उन्होंने लोकगीतों की चर्चा करते हुए, अपनी घुमक्कड़ी के रोमांचक प्रसंगों का जिक्र किया था और बच्चों को यह खासा रुचिकर लगा था। फिर तो ऐसा अकसर होता कि द्विवेदी जी सत्यार्थी जी को अपनी कक्षा में बुला लेते और फिर यायावर को अपनी यात्राओं के दुर्लभ प्रसंग और अनुभव सुनाने के लिए कहते। बच्चे बड़े कौतुक और आदर के साथ सुनते। इस अद्भुत लोकयात्री के लिए उनके मन में सम्मान और श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया था।

यही बरसों बाद इंदिरा गाँधी को भी याद रहा। और सत्यार्थी जी के लिए उनके मन में जीवन भर एक गुरु जैसा ही आदर रहा। नेहरू जी बाद में प्रधानमंत्री हुए, तब भी उनसे सत्यार्थी जी की कई मुलाकातें हुईं। 1956 में पी.ई.एन. सम्मेलन में सोफिया वाडिया ने नेहरू जी का सत्यार्थी जी से परिचय कराया, तो वे हँसकर बोले, "कॉल हिम फोकलोर इंडिया...!"

बांग्ला के महान कथाकार शरतचंद्र से भी सत्यार्थी जी की बड़ी अंतरंग मुलाकात हुई थी। सत्यार्थी जी बर्मा की यात्रा से लौटे थे, उसके कुछ ही अरसे बाद उनका शरत से मिलने का संयोग बना। उस मुलाकात में सत्यार्थी जी देर तक बर्मा–यात्रा के अपने दुर्लभ

अनुभव उनसे शेयर करते रहे थे। उसी में शरत ने दिलीप कुमार राय को लिखे अपने एक पत्र का भी जिक्र किया था कि "तुम लिखना तो जानते हो, 'न लिखना' नहीं जानते।"

सत्यार्थी जी ने अपनी बर्मा–यात्रा पर 'इरावती' शीर्षक से संस्मरण लिखा था। उन्होंने वह शरत को पढ़ने को दिया, तो वे इस बात से प्रसन्न हुए कि इसमें अनावश्यक विस्तार नहीं है। रचना सुनकर प्रसन्न होकर बोले, "सुंदर, अति सुंदर!" इस तरह सत्यार्थी जी को अपनी रचना पर महान कथाशिल्पी शरत का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। '

तुम यह गलती मत करना!

उस दौर की चर्चित हस्तियों में बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ तो उनका लंबा सान्निध्य था। चतुर्वेदी जी द्वारा 'विशाल भारत' में छापे गए लेखों ने ही सत्यार्थी जी को हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित किया। दूर–दूर तक उन लेखों की चर्चा हुई। गाँधी जी और गुरुदेव ने भी उन्हें पढ़ा और अभिभूत होकर बड़े प्यार से उनका उल्लेख किया है। फिर गाँधी जी से सत्यार्थी जी को मिलवाने वाले भी बनारसीदास चतुर्वेदी ही थे, जिन्हें उनके मित्र प्यार से 'चौबे' जी कहकर बुलाते थे। सत्यार्थी जी से उनके संबंध बहुत कुछ घरेलू किस्म के थे।

चौबे जी की शख्सियत और अंतरंग क्षणों के बारे में चर्चा चलने पर सत्यार्थी जी अकसर कहा करते थे, "बनारसीदास चतुर्वेदी कुछ अलग ही कद–काठी के लेखक–पत्रकार थे। मैंने तो उन्हें निःस्वार्थ भाव से लोगों का भला करने वाला ही पाया। बड़े कठिन दिनों में उन्होंने मेरी मदद की।"

चतुर्वेदी जी के मन में इस बात को लेकर बड़ा मलाल था कि उन्होंने अपनी पत्नी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। सत्यार्थी जी के आगे यह कनफेस करते हुए वे अकसर कहा करते थे, "देखो महाराज, मैंने तो अपनी पत्नी के साथ बहुत कठोरता का बर्ताव किया, उनका ज्यादा ध्यान नहीं रखा, पर तुम यह गलती मत करना।"

उन दिनों सत्यार्थी जी की बड़ी इच्छा थी कि हिंदी में प्रकाशित उनके लेखों की एक किताब छप जाए! किताब छपवाने के लिए वे घर से पाँच सौ रुपए लेकर आए थे। जब उन्होंने चतुर्वेदी जी से इसका जिक्र किया और उनसे प्रकाशक ढूँढ़ने में मदद करने के लिए कहा, तो जवाब मिला, "न–न, ऐसी गलती मत करना! पैसे देकर किताब छपाना ठीक नहीं है। जब लेखक के रूप में तुम्हारी प्रसिद्धि हो जाएगी, तो वे खुद–ब–खुद किताब छापेंगे। ये रुपए वापस घर भेज दो।"

सत्यार्थी जी ने कहा, "लेकिन चतुर्वेदी जी, घर से पाँच सौ रुपए लेकर मैं चला था। उनमें से कुछ रुपए तो खाने वगैरह पर खर्च हो गए, तो अब...?" इस पर चतुर्वेदी जी का जवाब था, "जो पैसे खर्च हो गए, उन्हें मैं पूरा कर देता हूँ। तुम कल ही घर पर मनीआर्डर कर दो।"

कुछ समय बाद सत्यार्थी जी ने उन्हें घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। लेकिन चौबे जी ने शर्त रखी, "जब तुम्हारी पत्नी के हाथ में सोने की चूड़ियाँ और गले में सोने का हार होगा, तभी मैं भोजन करने आऊँगा।" बड़ी कड़ी शर्त थी। सत्यार्थी जी की समझ में नहीं आता था कि वे क्या करें? भला सोने की चूड़ियाँ और सोने का गलहार कहाँ से लाएँ? चतुर्वेदी जी ने कहा तो नेकनीयती से ही था कि इसी बहाने शायद घर में कोई चीज जुड़ जाए, पर लोक यायावर की हालत खस्ता थी। सो उनकी शर्त पूरी होने का सवाल ही नहीं था। इधर चौबे जी भी अपनी जिद के पक्के थे। हारकर सत्यार्थी जी ने एक रास्ता निकाला। लोकमाता ने एक दिन के लिए पड़ोस की अपनी एक मुँहबोली बहन मालती से गहने माँग लिए। और तब चौबे जी उनके घर भोजन के लिए आए!

गाँधी जी से सत्यार्थी जी की पहली मुलाकात चौबे जी ने ही करवाई थी। बहुत संक्षिप्त सी मुलाकात थी। पर उसमें गाँधी जी से खूब खुलकर बातें हुई थीं। उसमें 'विशाल भारत' की भी चर्चा हुई जिसके संपादक चतुर्वेदी जी थे। बातों–बातों में चतुर्वेदी जी ने गाँधी जी से कहा, "बापू, मैं 'विशाल भारत' में आपके खिलाफ भी बहुत कुछ लिखता रहता हूँ।" इस पर गाँधी जी हँसकर बोले थे, "कोई सुनता भी है?" सुनकर बनारसीदास चतुर्वेदी झेंपकर रह गए थे।... यह पूरा प्रसंग मुझे सत्यार्थी जी ने खूब रस लेकर सुनाया था। फिर बात को गाँधी जी की ओर मोड़ते हुए उन्होंने कहा, "आपने गौर नहीं किया! चौबे जी की बात सुनकर गाँधी जी ने यह नहीं कहा कि कोई पढ़ता भी है? उन्होंने कहा, कोई सुनता भी है! यह था खुली भाषा का एक्सप्रेशन, जिसे गाँधी जी से सीखा जा सकता था।"

'विशाल भारत' के दफ्तर में ही बृजमोहन वर्मा हुआ करते थे। अपाहिज थे, बैसाखियों के सहारे चलते थे, लेकिन बड़े ही जिंदादिल इनसान थे और सत्यार्थी जी का खूब उत्साह बढ़ाया करते थे। 'विशाल भारत' में सत्यार्थी जी के इतने लेख छपे, इसका श्रेय उनको भी जाता है। "शुरू में मैं सोचता था कि बनारसीदास चतुर्वेदी ये लेख मुझ पर कृपा करने के लिए छापते हैं, ताकि मुझे पारिश्रमिक मिलता रहे और इस तरह मेरी झोली में थोड़ी भीख डाल देते थे। पर बाद में बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' में खुद एक लेख लिखा कि सत्यार्थी जी के लेख छापकर हम उन पर कोई अहसान नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे अपने लेख 'विशाल भारत' में छपने के लिए देते हैं, यह 'विशाल भारत' पर उनका अहसान है। हालाँकि इस प्रशंसा से मेरा कोई सिर कहीं फिर गया। इसलिए कि मैं तो खुद को साहित्य का विद्यार्थी मानता था, आज भी मानता हूँ। और एक छोटे बच्चे से भी सीखने को तैयार हूँ।" सत्यार्थी जी की विनम्र आत्मस्वीकृति!

फिर एक मजेदार प्रसंग उन्होंने और सुनाया। बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक पत्र में सत्यार्थी जी 'डॉ. देवेंद्र सत्यार्थी' कहकर संबोधित किया था। यायावर सत्यार्थी ने सोचा, मजाक में उन्होंने यह लिखा होगा। सो टाल गए। कुछ रोज बाद एक पत्र फिर आया उनका।

उसमें उन्होंने लिखा, "आपने ध्यान दिया, पिछले पत्र में मैंने आपको 'डॉ. देवेंद्र सत्यार्थी' कहकर संबोधित किया था। असल में आपका लोकगीतों पर जो काम है, उस पर आपको कब की डॉक्टरेट मिल जानी चाहिए थी। मुझे उम्मीद है, कोई न कोई यूनिवर्सिटी इसके लिए आगे आएगी और जो भी यूनिवर्सिटी आपको डॉक्टरेट प्रदान करेगी, वह ऐसा करके आपको नहीं, खुद को ही सम्मानित करेगी।"

इससे सत्यार्थी जी के प्रति उनके सम्मान और विश्वास का भी पता चलता है।

बनारसीदास चतुर्वेदी के आमंत्रण पर एक बार सत्यार्थी जी उनसे मिलने कुंडेश्वर गए थे। तब उनके पास किराए के पैसे कम पड़ गए थे और बड़ी अजीब हालत हुई थी। यह प्रसंग बड़े मार्मिक ढंग से उनकी 'इकन्नी' कहानी में आया है। उसमें जिन चौबे जी का जिक्र है, वे असल में बनारसीदास चतुर्वेदी हैं। कुंडेश्वर की सत्यार्थी जी के मन में तमाम यादें थीं जो जब–तब उनसे सुनने को मिलती रहती थीं। बनारसीदास चतुर्वेदी के अलावा कृष्णानंद गुप्त से भी वहाँ उनकी मुलाकात हुई। टीकमगढ़ के महाराज से मुलाकात की भी एक मजेदार कहानी है। सत्यार्थी जी के कहने पर वे एक बंदी स्त्री को छोड़ने पर राजी हो गए थे। 'लोकगीत की विजय' संस्मरण सत्यार्थी जी ने इसी प्रसंग को याद करते हुए लिखा था। बाद में भी यह पूरा प्रसंग याद करके वे बहुत भावुक हो जाते थे।

सत्यार्थी जी की इस घुमक्कड़ी ने ही, जो एक साथ ही तकलीफदेह और शानदार भी थी, उन्हें इस तरह के तमाम कीमती अनुभवों से जोड़ा जिनकी कल्पना ही रोमांचक है। सत्यार्थी जी यों ही कहानियों पर कहानियाँ, किस्सों पर किस्से नहीं सुनाते चलते। उनके पीछे अनुभवों का विशाल खजाना है जिसमें बहुत–से आबदार मोती और सीपियाँ हैं, खुला आकाश और रंगारंग इंद्रधनुष भी!

"लोकगीतों के लिए मैं फकीर बना, पर इस तरह के अनुभवों ने मुझे फकीरी में भी बहुत सुख दिया। ऐसे कष्ट और अभाव मेरी जिंदगी में न होते, तो मैं सच में बहुत दरिद्र होता।" कहते हुए सत्यार्थी जी के चेहरे पर बड़ी गहरी आब महसूस की जा सकती थी। एकदम सच्चे मोतियों की तरह!

ओ री, बाँस के पत्ते पर सोती शबनम!

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य से हुई मुलाकात को भी सत्यार्थी जी अकसर याद करते थे। उन दिनों सत्यार्थी जी लोकगीत–संग्रह करते हुए यहाँ–वहाँ घूमते फिरते थे। उन पर उनके लेख वगैरह भी छपते थे और उनसे उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली थी। उन्हीं दिनों की बात है, चेन्नई (तब मद्रास) में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने उनके सम्मान में एक आयोजन करना चाहा।

इस पर सत्यार्थी जी ने एक ही शर्त रखी, "ठीक है, मैं आ जाऊँगा। लेकिन जो भी

कार्यक्रम आप रखें, मेरी इच्छा है कि उसकी अध्यक्षता राजगोपालाचार्य जी करें।" राजगोपालाचार्य जी ने यह सुना, तो वे खुशी–खुशी मान भी गए। उस कार्यक्रम में सत्यार्थी जी को अपने काम और अनुभवों को लेकर एक लंबा व्याख्यान देना था। तमिल बोलना तो उन्हें आता नहीं था। तब कुछ मित्रों ने सुझाव दिया कि 'मॉडर्न रिव्यू' में छपा अपना लेख 'ग्लिंप्सिज ऑफ इंडियन सोंग्स' ही वे थोड़ा फेर–फार कर परचे के रूप में पढ़ दें। पर उन्हें यह गवारा नहीं था। सत्यार्थी जी ने कहा, "मैं अंग्रेजी में ही बोलूँगा और जो भी मन में आए, बोलूँगा।"

फिर कार्यक्रम हुआ तो सत्यार्थी जी कोई घंटे, डेढ़ घंटे तक अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोले। बाद में राजगोपालाचार्य जी अपना अध्यक्षीय भाषण देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा, "सत्यार्थी स्पोक ऑन इंडियन फोक सॉन्ग्स इन द लैंग्वेज ऑफ फोक सॉन्ग्स–दैट इज डिवोयड ऑफ ग्रामर!" इस पर सभा में खूब तालियाँ बजीं।

फिर राजगोपालाचार्य ने सत्यार्थी जी द्वारा उद्धृत किए गए एक तमिल लोकगीत का जिक्र किया, जिसमें 'ओ री बाँस के पत्ते पर सोती शबनम...!' का जिक्र आता है और 'ओ पत्ते पर सोती शबनम को जगाते सूर्य भगवान' का भी! उन्होंने कहा, "यह सत्यार्थी जी का ही कमाल है कि वह पत्ते पर सोती शबनम के सौंदर्य को देख पाए और उसका बखान भी कर सके, क्योंकि इनके पास बच्चे जैसा दिल है। मुझे भय है, अगर कोई यूनिवर्सिटी का प्राध्यापक यह काम करने निकलता, तो उसके शुष्क हृदय के सामने पत्ते पर सोती शबनम उसी तरह सूख जाती, जैसे सूर्य उसे सुखा डालता है।"

यह प्रसंग सुनाने के बाद थोड़ा भावुक होकर सत्यार्थी जी कहते हैं, "मनु जी, मेरे लोकगीत–संग्रह और लोकयात्राओं को लेकर बहुत कुछ कहा गया। इनमें बहुत–सी बातें तो अब किंवदंतियों जैसी लगती हैं। और कुछ बातें तो ऐसी लगती हैं, जैसे मैं इसी जन्म में पिछले जन्म का हाल सुन रहा हूँ। कुछ बातें याद नहीं भी रहीं, लेकिन राजगोपालाचार्य जी के शब्दों में छिपी हुई जो प्रशंसा थी, उससे मुझे हमेशा ताकत मिलती रही। और आज भी मैं उन शब्दों को ज्यों का त्यों याद कर सकता हूँ।"

निसफ सदी की दोस्ती

सत्यार्थी जी के साथ सबसे लंबी दोस्ती शायद पंजाबी पत्रिका 'आरसी' के संपादक भापा प्रीतमसिंह की थी। भापा प्रीतमसिंह और सत्यार्थी जी का लगभग आधी सदी का संबंध रहा है और वे सत्यार्थी जी के साहित्यिक मित्र होने के साथ–साथ लगभग उनके परिवार के सदस्य ही बन गए। उनके बारे में सत्यार्थी जी ने एक बार बहुत संजीदा होकर कहा था, "जिस प्रकार के संकट मुझ पर आए, उनमें मैं जीवित बच गया, तो उसका बहुत कुछ श्रेय भापा प्रीतमसिंह को जाता है।" और कहते समय सत्यार्थी जी की आँखों में निसफ सदी की

दोस्ती का गहरा विश्वास साफ नजर आता था!

फिर धीरे से कुरेदने पर पता चला कि हिंदी साहित्य में सन् 60 के बाद कोई बीस–पच्चीस साल एक तरह से सत्यार्थी जी के लिए आत्मनिर्वासन का समय रहा है। उस दौर में हिंदी में 'नीलयक्षिणी' के सिवा उनकी कोई और किताब नहीं छपी। वैसे भी उन जैसे फक्कड़ आदमी की कोई और आमदनी तो थी नहीं। रॉयल्टी लगभग सिफर। कहीं से एक पैसा मिलने की कोई सूरत नहीं। 'पद्मश्री' मिली, पर एक गरीब साहित्यकार उसका क्या करे? फोड़े पर घिसकर लगाए? इस दौर में अगर सत्यार्थी जैसा फक्कड़ साहित्यकार जीवित रहा, तो एक कारण तो लोकमाता का आत्मविश्वास था कि उन्होंने बेटियों को पाल–पोसकर बड़ा किया, शादियाँ कीं। और यह सिर्फ अपने बूते और अपनी बूढ़ी सिलाई मशीन के बूते। "इस सिलाई मशीन के बारे में अब ये कभी–कभी हँसकर कहती हैं कि मैं पहले बूढ़ी हुई या सिलाई मशीन, मुझे कुछ पता नहीं!" सत्यार्थी जी हँसकर बताते हैं, "तो एक तो यह कारण था, लोकमाता का आत्मविश्वास और मेहनत! और दूसरा यह कि पंजाबी में लगातार मेरी रचनाएँ छपती रहीं। यह सब भापा प्रीतमसिंह के बूते हुआ।" नया खंड सत्यार्थी जी बातों की रौ में बहते हुए बता रहे थे। भापा प्रीतमसिंह ने 'आरसी' में निरंतर सत्यार्थी जी की रचनाएँ छापीं, किताबें भी छापीं। यहाँ तक कि अपने नवयुग प्रकाशन से 'मीट माई पीपल' का तीसरा संस्करण भी बड़ी धूमधाम से शाया किया। सत्यार्थी जी के निधन से कुछ बरस पहले 'आरसी' की ओर से लखटकिया पुरस्कार भी उनकी दोस्ती का ही इनाम था। इस मौके पर उन्होंने 'आरसी' का विशेषांक निकाला जिसमें हिंदी के तमाम लेखकों के सत्यार्थी जी पर लिखे गए लेख भी शामिल थे, जिन्हें उन्होंने पंजाबी में अनूदित करके छापा।

"यह एक संपादक द्वारा लेखक को जीवित रखने का प्रयत्न ही कहा जाएगा, हालाँकि मैंने तो कभी इस सबकी इच्छा नहीं की थी।" सत्यार्थी जी मद्धिम स्वर में बता रहे थे, तो उनके चेहरे पर 'निसफ सदी की दोस्ती' की छाप और गहरी–गहरी कृतज्ञता साफ पढ़ी जा सकती थी।

तो फिर उठिए आप भी!

हिंदी के मूर्धन्य कवि दिनकर से भी सत्यार्थी जी की खासी प्रागढ़ता थी। हालाँकि उनसे उनकी मुलाकात सत्यार्थी जी की बड़े नाटकीय ढंग से हुई थी– पटना के रेलवे स्टेशन पर। दिनकर तब विद्यार्थी थे, वीर रस की आवेगपूर्ण कविताएँ लिखते थे और उनका कुछ नाम भी हो चुका था। उन्हीं दिनों का बड़ा रोचक प्रसंग है। सत्यार्थी जी पटना के रेलवे प्रतीक्षालय में बैठे थे। उनसे कुछ दूरी पर एक गौर वर्ण का युवक बैठा था जिसके घुंघराले बालों की एक लट उनके माथे पर छूट रही थी।

फिर यों ही कुछ बात चल निकली, जैसे रेलवे स्टेशन पर साथ बैठे दो अजनबियों में

होती हैं। सत्यार्थी जी ने स्वभावतः लोकगीतों की बात छेड़ी। युवक ने कहा, "क्या आप लोक साहित्य को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं?"

यायावर ने कहा, "हाँ।"

इस पर उस युवक ने गुस्से में आकर कहा, "लेकिन मैं तो उसे बिल्कुल महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं।" कहते–कहते उसकी लट माथे पर और नीचे आकर थिरकने लगी। यायावर ने उस युवक के क्रोध को दूर करते हुए कहा, "आप कुछ भी कहिए, इससे मेरे विचार नहीं बदल सकते।"

उस युवक ने और अधिक ललकार के साथ कहा, "तो विचार मेरे भी नहीं बदल सकते। लोक साहित्य में तमाम रद्दी चीजें ठुंसी हुई हैं।" कहते–कहते उसके माथे के दूसरी ओर की लट भी थिरकने लगी।

यायावर ने अपनी उसी विनम्र दृढ़ता के साथ कहा, "आप कुछ भी कहिए, मैंने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा इसमें लगाया है और आगे भी यही करूँगा। यही मेरे जीवन का उद्देश्य है।"

इस पर वह युवक तमतमाता हुआ उठ खड़ा हुआ और सत्यार्थी जी से बोला, "तो फिर उठिए आप भी...!" और जब यायावर सत्यार्थी खड़े हुए, उसने यायावर को दोनों बाँहों में भर लिया और देर तक छाती से लगाए रहा।

"यह सज्जन दिनकर थे!" लोकगीतों के अद्भुत यायावर सत्यार्थी बता रहे थे, "दिनकर से इसके बाद भी तमाम मुलाकातें हुईं, लेकिन उनसे हुई पहली मुलाकात मेरे दिमाग से कभी नहीं उतरी। बाद में दिनकर से दिल्ली में भी कई मिलना हुआ। 'आजकल' के दफ्तर में भी वे आया करते थे। एक बार मैंने उन्हें पटना प्लेटफार्म का वह किस्सा याद दिलाया। सुनकर वे ठहाका मारकर हँसे थे।" कहते–कहते सत्यार्थी जी का चेहरा थोड़ा खिल–सा गया। और मैं उनके खिले–खिले चेहरे में दिनकर का अक्स देख रहा हूँ। दिनकर जिनके माथे की एक लट सामने थिरक रही है...दिनकर जिनकी दूसरी लट थिरक रही है और दिनकर जिनके माथे की दोनों लटें थिरक रही हैं। वाह, क्या खूब!

इसी तरह फणीश्वरनाथ रेणु से सत्यार्थी जी की कई मुलाकातें हुई थीं। रेणु के वे प्रशंसक थे और उन्हें बड़े प्यार से याद करते थे। रेणु भी उनका बहुत सम्मान करते थे। अपनी चर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' उन्होंने बड़े प्यार से सत्यार्थी जी को भेंट किया था। हुआ यह कि नार्थ ब्लॉक में पत्रिकाओं की एक दुकान हुआ करती थी। सत्यार्थी जी वहाँ खड़े–खड़े कोई पत्रिका देख रहे थे। इतने में देखा, पीछे से किसी ने हाथ बढ़ाकर एक किताब मेरे आगे सरकाई है। सत्यार्थी जी ने पीछे मुड़कर देखा, तो रेणु हँस रहे थे। यह किताब थी, 'मैला आँचल'। रेणु ने उस पर उनके लिए जो शब्द लिखे थे, वे तो उन्हें ठीक–ठीक याद नहीं थे,

पर उनका भाव यह था कि सत्यार्थी जी के लिए जिनसे मैंने भाषा सीखी न होती, तो 'मैला आँचल' कभी न लिख पाता!

"तो आप देख लीजिए, जो बड़ा लेखक होता है, सच में बड़ा लेखक वो कैसा होता है! इसीलिए रेणु औरों से इतना अलग है कि यह आदमी 'कैलकुलेटिव' नहीं था! जिंदगी के मुक्त बहाव में बहता था और उसे एक उत्सव की तरह जीता था।" सत्यार्थी जी भावमग्न होकर बता रहे थे।

बलराज साहनी के साथ

सत्यार्थी जी के अजीज मित्रों की बात करें, तो बलराज साहनी का नाम सबसे पहले आता है। उनसे सत्यार्थी जी की इतनी अंतरंगता थी कि बलराज उनकी कई लोकयात्राओं में सहयात्री रहे। इस बारे में भीष्म साहनी ने अपने एक अंतरंग संस्मरण में बड़ी आत्मीयता से लिखा है। असल में सत्यार्थी जी बलराज साहनी के आमंत्रण पर रावलपिंडी में उनके घर गए थे। उन्हीं दिनों की यह बात है कि अकसर वे बलराज को लेकर लंबी–लंबी यात्राओं पर निकल जाते थे। इससे घर पर उन्हें डांट पड़ती थी कि यह भी उस दाढ़ी वाले शख्स के साथ रहकर आवारा हो गया है।

यों बलराज साहनी से सत्यार्थी जी की मुलाकात इत्तफाकन हुई थी। सत्यार्थी जी उन दिनों श्रीनगर गए हुए थे और वहाँ की लाइब्रेरी में बैठे थे। लाइब्रेरियन से साहित्य–चर्चा चल रही थी। सत्यार्थी जी उससे किसी ऐसे शख्स के बारे में पूछ रहे थे जो कश्मीरी भाषा, साहित्य और लोक परंपराओं की अच्छी जानकारी रखता हो। ताकि उन्हें इस क्षेत्र में लोकगीत साहित्य तथा कश्मीरी परिवेश को समझने में थोड़ी आसानी हो। इतने में गरम सूट पहने हुए एक लंबा–सा, शरीफ नौजवान उनके पास खिसक आया जो बड़ी देर से उनकी चर्चा सुन रहा था। उसने सत्यार्थी जी से परिचय की इच्छा प्रकट की। सत्यार्थी जी उसके साथ चल पड़े। रास्ते में उसने अपने बारे में काफी कुछ बताया। नाम–बलराज साहनी। वह एक संपन्न परिवार का बेटा था। माता–पिता के साथ वह श्रीनगर घूमने आया हुआ था। पिता उसे अपनी तरह बिजनेसमैन बनाना चाहते थे, पर वह कुछ अलग मिजाज का था और लेखक होना चाहता था। अंग्रेजी में एम.ए. कर चुका था और अब अंग्रेजी में कविताएँ लिखता था। वह सत्यार्थी जी को बड़े आदर से अपने माता–पिता से मिलवाने ले गया।

जल्दी ही सत्यार्थी जी और बलराज साहनी के मन मिल गए। और कुछ अरसा बाद ही दोनों श्रीनगर में साथ–साथ घूमने और फिर मिलकर कश्मीर के सुंदर लोकगीत एकत्र करने के लिए गाँवों की ओर चल पड़े। फिर तो तीन महीने तक उन्होंने श्रीनगर की खूब खाक छान डाली। वहाँ के जंगल, दरिया, झील, घाटियाँ कुछ भी न छोड़ा। सत्यार्थी जी के पास उनका रॉलीफ्लैक्स कैमरा था और बलराज को भी फोटोग्राफी का खासा शौक था।

दोनों साथ–साथ फोटो खींचते, पर अपने साथ–साथ सत्यार्थी जी के फोटो डेवलप कराने का खर्चा भी बलराज साहनी की जेब से ही जाता। और वे खुशी–खुशी यह खर्च वहन करते थे।

वहाँ से फिर वे पेशावर गए, पश्तो लोकगीतों की तलाश में। फिर बलराज साहनी ने सत्यार्थी जी को अपने घर रावलपिंडी आने की दावत दी, जहाँ सत्यार्थी जी कई दिनों तक उसके मेहमान रहे।

बाद में बलराज साहनी की शादी हुई, तो लाहौर से खासकर सत्यार्थी जी, बी.पी. एल. बेदी, फ्रीडा बेदी, मिसेज स्वाइन तथा जगप्रवेश चंद्र गए थे। बलराज जी ने अपनी पत्नी दमयंती से यायावर का परिचय कराया, तो अपना मशहूर फिकरा कहा था कि, "दम्मो, इस आदमी की दाढ़ी में जादू है!"

'उन्हीं दिनों की बात है, बलराज साहनी ने कहानियाँ लिखनी शुरू की थीं और काफी अच्छा लिखने लगे थे। पर साहित्य की दुनिया में अभी उनकी पहचान नहीं बन सकी थी। उन्होंने अपनी एक कहानी 'शहजादों का ड्रिंक' 'विशाल भारत' में छपने के लिए भेजी, पर वहाँ से लौटकर आ गई। जाहिर है, इससे बलराज कुछ निराश थे। उन्होंने वह कहानी सत्यार्थी जी को पढ़ने को दी। सत्यार्थी जी को कहानी अच्छी लगी, तो उन्होंने 'एक बार फिर से देख जाने के आग्रह' के साथ उसे फिर से चौबे जी के पास भेजा। सत्यार्थी जी ने लिखा, "सुबह का एक प्याला चाय पीकर कृपया इसे एक बार फिर से पढ़ जाइए। इसके बाद भी अगर यह कहानी आपको लौटाने लायक लगे, तो बाखुशी लौटा दें।" इस तरह वह कहानी 'विशाल भारत' में छपी और पाठकों ने उसकी खूब प्रशंसा की। बाद में बलराज साहनी फिल्मों में गए। उन्हें एक इंटेलेक्चुअल अभिनेता के तौर पर जाना जाता था। सत्यार्थी जी जब–जब मुंबई में गए, उनसे मिलना होता था। सत्यार्थी जी के एक कहानी–संग्रह का समर्पण भी बलराज साहनी के नाम है और उन्होंने शुरू में एक लंबी कविता लिखकर बड़े प्यार से उन्हें याद किया है! फिल्म जगत में बलराज साहनी देखते ही देखते प्रसिद्धि के शिखर पर जा पहुँचे और बड़े अभिनेताओं में उनकी गिनती होने लगी। पर सत्यार्थी जी से उनके वैसे ही आत्मीय संबंध बने रहे। एक बार की बात, सत्यार्थी जी आर्य समाज रोड पर कहीं जा रहे थे। अचानक किसी ने उन्हें बताया कि बलराज साहनी आए हुए हैं और आर्य समाज रोड पर किसी कैफे में चाय पी रहे हैं। सत्यार्थी जी वहाँ गए तो बलराज साहनी दूर से उन्हें देखते ही तुरंत उठकर लपकते हुए आ गए। उनसे कहा, "चलिए घर!" सत्यार्थी जी ने हँसकर कहा, "तुम्हारा घर तो मुंबई में है, हमारे घर चलो।" बलराज सत्यार्थी जी के साथ घर आए तो उन्हें दरवाजे पर कविता दिखाई दी। वही कविता जब छोटी थी तो उनकी गोद में खेली थी। पर तब वह दो साल की थी। सालों गुजर चुके थे और अब वह बड़ी हो चुकी थी। बलराज साहनी ने जेब से उसे दस रुपए निकालकर दिए। फिर कहा, "हक तो तुम्हारा एक

सौ एक रुपए का बनता है, पर मैं इस समय सफर में हूँ।"

बाद में बलराज साहनी सत्यार्थी जी को अपने ईस्ट पटेल नगर वाले घर में ले गए। तब उनके पिता जीवित थे, पर वे एक्टिंग को कुछ खास पसंद नहीं करते थे। लिहाजा उन्होंने कुछ व्यंग्य से पूछा था, "बलराज, तू फिल्माँ विच एक्टिंग करदा एँ, ताँ कुड़ियाँ दा पार्ट वी करदा ही होएँगा।"

इस पर बलराज साहनी ने हँसकर जवाब दिया, "नहीं पिता जी, आजकल लड़कियाँ अपना पार्ट खुद कर लेती हैं!"

यह प्रसंग सुनाते हुए सत्यार्थी जी बड़ी देर तक हँसते रहे थे। बोले, "अब आप देखिए, सवाल कितना तीखा था और जवाब—नायाब! एकदम कमाल का! लड़कियाँ अपना पार्ट अब खुद कर लेती हैं! जैसे नया जमाना पिछले जमाने को यह समझा रहा हो!"

इसके अलावा उस दौर में पंजाब की पृष्ठभूमि से जुड़े लेखकों में कर्तारसिंह दुग्गल से भी सत्यार्थी जी की अंतरंगता थी। दुग्गल सत्यार्थी जी की बाद की पीढ़ी के लेखक हैं और सत्यार्थी जी के मन में उनके लिए बहुत प्यार नजर आया। दुग्गल ने ही लाहौर में ऑल इंडिया रेडियो के लिए सत्यार्थी जी की किताब 'मैं हूँ खानाबदोश' का सुंदर नाट्य—रूपांतरण किया था।

आजकल आप की ही किताब पढ़ रहा हूँ!

इसी तरह लोक साहित्य की जानी—मानी हस्तियों में डब्ल्यू.जी. आर्चर से उनका बड़ा प्रेम था। डब्ल्यू.जी. आर्चर से उनका पत्र—व्यवहार तो बहुत पहले से चल रहा था। उन्होंने अपने किसी लेख में सत्यार्थी जी की बहुत तारीफ भी की थी, पर उनसे मिलने का कोई मौका लंबे समय तक नहीं आया था। फिर एक दफा 'आजकल' के दफ्तर में सत्यार्थी जी के पास डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का फोन आया, "आप आइए...वो आने वाले हैं जिनसे आपको मिलना है।" सत्यार्थी जी को बड़ी खुशी हुई कि डब्ल्यू.जी. आर्चर से मिलना होगा। वे उनकी किताब 'द ब्लू ग्रोव' पढ़ चुके थे और उस पर उन्होंने लिखा भी था। खैर, सत्यार्थी जी वासुदेवशरण अग्रवाल के पास जाकर बैठ गए। और फिर दूर से आता दिखाई दिया उन्हें वह शख्स जिसका नाम तो उन्होंने सुना था, पत्र—व्यवहार भी हुआ पर कभी मिलना नहीं हुआ था। जब आर्चर आकर सत्यार्थी जी से गले मिले, तो उन्होंने जैसे खुशी से झूमकर कहा, "इट्स इंडिया एंड इंग्लैंड एंब्रैसिंग!" आर्चर से हुई इस मुलाकात से कई बरस पहले सत्यार्थी जी ने अंग्रेजी अखबार 'द हिंदू' के लिए बड़े मन से 'द ब्लू ग्रोव' की समीक्षा लिखी थी। हुआ यह कि जब सत्यार्थी जी 1940 में कोलंबो में थे, तो 'हिंदू' अखबार की ओर से 'द ब्लू ग्रोव' पर लिखने के लिए किताब भेजी गई। साथ ही शर्त थी कि रिव्यू के बाद किताब जरूर वापस कर दी जाए। हाँ, साथ में यह भी जोड़ दिया गया, 'बट वी बिल पे यू फॉर द राइट—अप।' पर

किताब वापस करने की बात सत्यार्थी जी को बड़ी अटपटी लग रही थी। वे उस अखबार के दफ्तर में जा पहुँचे थे। संपादक से बात हुई, तो उसने फिर से किताब वापस करने की शर्त रखी, पर कहा, "आप चाहें तो बहुत संक्षेप में रिव्यू लिख सकते हैं और चाहें तो लंबा रिव्यू लिख सकते हैं। यह आपकी इच्छा पर है।"

साढ़े तीन सौ पन्ने की किताब थी जो इंग्लैंड में छपी थी। सत्यार्थी जी के पास आर्चर की चिट्ठी आई, तो उन्होंने आर्चर को लिखा, "आजकल आप की ही किताब पढ़ रहा हूँ। लेकिन यह सिर्फ दस दिन मेरे पास रहेगी और जैसे ही मैं इसका रिव्यू लिख लूँगा, यह मुझसे बिछुड़ जाएगी। तो यह ऐसा ही है जैसे कोई लड़की एक बार ससुराल जाकर फिर हमेशा के लिए मायके रह जाए और फिर लौटना चाहती हुई भी कभी न लौट पाए।"

सत्यार्थी जी तो चिट्ठी लिखकर भूल गए, पर जिसे चिट्ठी भेजी गई, बात उसके दिल में उतर गई थी। "आपको हैरानी होगी और एक लेखक का हृदय कैसा होता है, यह भी आपकी समझ में आएगा। मेरी चिट्ठी पहुँचने के कुछ ही दिन बाद डब्ल्यू.जी. आर्चर की किताब फिर से मेरे हाथ में थी। उन्होंने यह लिखकर मुझे किताब भेजी थी, 'दिस मैरिड गर्ल शुड लिव विद यू आलवेज?'..." सत्यार्थी जी प्रसन्न लहजे में बता रहे थे।

अलबत्ता आर्चर से हुई इस मुलाकात के बरसों बाद सत्यार्थी जी की आत्मकथा का दूसरा खंड 'नीलयक्षिणी' आया, तो उसके नामकरण के पीछे कहीं न कहीं आर्चर और उनकी पुस्तक 'द ब्लू ग्रोव' का प्रभाव मौजूद है। जैसे सत्यार्थी जी बड़ी प्रसन्न स्मिति के साथ पूछ रहे हों कि नील यक्ष हो सकता है, तो नील यक्षिणी क्यों नहीं? आज जब सत्यार्थी जी नहीं है तो उनकी अनथक लोकयात्राएँ और निराला लोक–अध्ययन ही नहीं, वे हमसफर भी याद आते हैं जिन्होंने सचमुच इस देश की देसी पहचान यानी लोक–संग्रह और लोक–अध्ययन का एक बड़ा कारवाँ बनाया और देखते ही देखते समूचे देश में लोक साहित्य का एक बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया। सत्यार्थी जी की स्थिति उसमें ऐसे नायक की थी जिसने अपने खून–पसीने से उसे सींचा और गरीब किसान और स्त्रियों के दर्द से सीझे लोकगीतों को दूर–दूर तक हवाओं में गुँजा दिया। कहना न होगा कि जब भी हमें आजादी की लड़ाई के सामाजिक और लोक–पक्ष की याद आएगी और उसका सही–सही पुनर्मूल्यांकन होगा, तो बरसोंबरस फकीरी बाना पहने गाँव–गाँव, ठाँव–ठाँव घूमने वाले विलक्षण लोकयात्री सत्यार्थी जी के व्यक्तित्व और काम का महत्त्व हमें कहीं अधिक समझ में आएगा।

प्रकाश मनु, 545 सेक्टर–29, फरीदाबाद (हरियाणा), पिन–121008
मो. : 09810602327, ई–मेल : prakashmanu333@gmail.com

✧ ✧ ✧

सीता की प्रतीति

डॉ. मंगलमूर्त्ति

'मैं जनक–नंदिनी' के लेखक श्रीमती आशा प्रभात ने मुझको अपनी पुस्तक की एक प्रति प्रकाशक से भिजवाई। एक अद्‌भुत कृति–सीता का एक नया रूप, सीता की अस्मिता, उनके अभिज्ञान की एक सर्वथा नयी प्रतीति। आधुनिक कथा–गद्य में एक नया 'सीतायन', एक ऐसी विलक्षण कथा–भाषा जो इस कथा–विशेष के लिए सृजित हुई है, और जिसने इस लौकिक, मनोवैज्ञानिक–यथार्थ धर्मी कथा–वितान में इसका अनन्य स्वरूप सृजित किया है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक एफ.आर. लीबिस के अनुसार ''कवि या लेखक को ऐसी भाषा का पुनर्सृजन करना चाहिए जो उससे अपने भावों को परिभाषित कर सके।

सी [illegible]कनंदिनी और दशरथपुत्र राम की [illegible] पत्नी के रूप के सब जानते हैं। उनके व्यक्तिगत मानवीय जीवन के सभी प्रसंगो को राजा जनक और राम से जोड़कर ही देखा जाता है। राम और सीता, दोनों हमारे आदि पौराणिक ग्रन्थ वाल्मीकि–कृत 'रामायण' की लोककथा के नायक–नायिका के रूप में लोकप्रिय हैं। हम उन्हें भारतीय आदर्श दम्पति की मूलाकृति के रूप में देखते हैं–जिसे हम प्रथमतः शिव–पार्वती अथवा विष्णु–लक्ष्मी के रूप में कल्पित नहीं करते, क्योंकि ये दोनों युगल हमें सांसारिक नहीं प्रतीत होते–जैसा हम राम–सीता को देखते हैं। मंदिरों में भी उन्हें हम अन्य तीनों भाइयों और हनुमान के साथ एक मानवीय पारिवारिक समूह में देखते हैं, जिसे हम 'राम दरबार' कहते हैं, और जिसमें राजा और प्रजा का भाव निहित होता है। तीन भाइयों की पत्नियाँ उनमें नहीं होतीं क्योंकि वह एक मार्यादित 'दरबार' का दृश्य है। लोक–जगत में भी राम–सीता को ही लौकिक दाम्पत्य का प्रतीक माना जाता है। संक्षेप में कहें तो लौकिक सामाजिक जीवन में आदर्श दाम्पत्य जीवन के प्रतीक के रूप में हम सदा केवल राम–सीता को देखते हैं। भारतीय समाज में वे दोनों मानव जीवन के आदर्श दम्पति के रूप में ही देखे जाते हैं।

यह एक प्रकार से मानव में ही देवत्त्व को कल्पित करने का प्रयास है। राम और सीता में देवत्त्व के गुण देखे जाते हैं।

और सीता में देवत्त्व के गुण देखे जाते हैं। यह देवत्त्व के गुणों का मानव–रूपांतरण है। वाल्मीकि और तुलसीदास में अथवा राम–सीता की अनेक कथाओं में भी (यद्यपि वेद या उपनिषद् में नहीं) यह कथा–रूप में बताने का प्रयास है कि देवत्त्व की धारणा मूलतः मानव रूपांतरण में ही संभव है। और प्रकारांतर से यह बताने का प्रयास है कि देवत्त्व के उच्चतम आदर्शों तक पहुँचने में मानव क्यों और कैसे पूरी तरह सफल नहीं हो पाता। कथाएँ इसी के लिए पौराणिक ताने–बाने में बुनी गयी हैं, ताकि हम देवत्त्व और पुरुषार्थ (जिसमें नारी–अस्मिता निहित है) की विभाजक रेखा को स्पष्ट देख सकें। निषाद राम के चरण धोकर उनके मानवीय रूप को रेखांकित करता है। इस तरह के अनेक उदाहरण सभी 'रामायण' काव्य–ग्रंथों में हैं, जो प्रतीकात्मक हैं, और मनुष्य की अलौकिक संभावनाओं को इंगित करते है। वे देवता और मनुष्य के इस एकात्मीकरण की संभावनाओं की सुनहली झलक दिखाते हैं। काव्य में दोनों भिन्न होते हुए भी अभिन्न लगते हैं।

'मैं जनक–नंदिनी' के लेखक श्रीमती आशा प्रभात ने मुझको अपनी पुस्तक की एक प्रति प्रकाशक से भिजवाई। एक अद्भुत कृति–सीता का एक नया रूप, सीता की अस्मिता, उनके अभिज्ञान की एक सर्वथा नयी प्रतीति। आधुनिक कथा–गद्य में एक नया 'सीतायन', एक ऐसी विलक्षण कथा–भाषा जो इस कथा–विशेष के लिए सृजित हुई है, और जिसने इस लौकिक, मनोवैज्ञानिक–यथार्थ धर्मी कथा–वितान में इसका अनन्य स्वरूप सृजित किया है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक एफ.आर. लीबिस के अनुसार ''कवि या लेखक को ऐसी भाषा का पुनर्सृजन करना चाहिए जो उससे अपने भावों को परिभाषित कर सके। आशाजी के उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है उसकी कलात्मक भाषा जो उसके कथा–विन्यास को उपलब्ध कराती है। कथावस्तु और विन्यास के शिल्प का सबसे प्रमुख तत्व है कथा–भाषा, और आशाजी के इस उपन्यास की सफलता का सबसे बड़ा कारक है उसकी कथा–भाषा जिससे ही उसका कथा–शिल्प निर्मित होता है।

पौराणिक चरित्रों पर विशेष कर नारी–चरित्रों (सीता, द्रौपदी, कैकेयी, अहल्या, आदि)–हिंदी के अलावा कई भारतीय तथा अनेक विदेशी भाषाओं में भी–आज के इस नारी उन्नयन–नारी विमर्श के समय में बहुसंख्यक उपन्यास लिखे गए हैं। अंग्रेजी में चित्रा देवकरुनी के दो उपन्यास हाल में प्रकाशित हुए हैं–सीता पर 'द फारेस्ट ऑफ एनचांटमेंट्स' और द्रौपदी पर 'द पैलेस ऑफ इल्यूजन्स'। ये अनुवाद नहीं हैं, मूल भारतीय लेखिका के–अंग्रेजी सोच के अंतर्गत, अंग्रेजी पढ़ने की मेज पर उन पाठकों को परोसने के लिए, जिनके बाप दादे भारत को एक संपेरों का देश मानते थे, उनके लिए–नारी विमर्श के इस काल में आज की अंग्रेजी भाषा और अधुनातन औपन्यासिक शिल्प में (ऐटकिंस के 'रामचरित मानस' के अनुवाद वाली अंग्रेजी पद्य–भाषा में नहीं) ऐसे कई अंग्रेजी गद्य में लिखे उपन्यास हैं, जो कई बातों की ओर एक साथ संकेत करते हैं। एक तो इनका सांस्कृतिक 'दिगविन्यास' (ओरिएंटेशन) बिलकुल पश्चिमी है, जो भारतीय पौराणिक संस्कृति से जुड़ी चेतना को प्रस्तुत करने में बराबर असफल रह जाता है। दूसरा, भारतीय पौराणिक कथानक के कथा–प्रसंगों

और चरि़त्रों को अंग्रेजी भाषा स्वाभाविक रूप से चित्रित नहीं कर पाती। भारतीय पाठक को उनमें एक कृत्रिमता, एक असंतोष का बोध बराबर बना रहता है। तीसरा, पौराणिक आख्यानों के नारी–चरित्रों को पश्चिमी नारीवाद ('फेमिनिज्म') के चौकोर ('फ्रेम') में जड़ कर उनका मनोविज्ञान विश्लेषित किया जाता है। यह अपने आप में एक विडम्बनात्मक स्थिति उत्पन्न करता है, जो भारतीय पाठक को उलझन में डाल देता है, अथवा उसको अपनी ही संस्कृति के विकृत प्रस्तुति से रू–ब–रू कराके उसको एक प्रकार के उलझन में डाल देता है।

लेकिन मेरा उद्देश्य यहाँ पौराणिक नारी–आख्यान के एक ऐसे पुनर्पाठ की चर्चा करना है जो कई अर्थों में विशिष्ट है, समकानीन लोकप्रिय साहित्य–लेखन में जिसकी पर्याप्त चर्चा में हुई है। पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों–विशेषतः नारी–चरित्रों पर हाल के वर्षो में, और नारी–विमर्श के प्रसंग में स्त्री–लेखन में प्रकाशित हो रहे ऐसे उपन्यासों को हम

इन सभी उपन्यासों में विधागत कई बातें तो समान हैं ही–जैसे, नारी–लेखकों द्वारा रचित ये सभी उपन्यास किसी हद तक आधुनिक नारी–विमर्श से सीधे जुड़े है, जिसमें पौराणिक अथवा ऐतिहासिक किसी विशेष नारी के चरित्र के प्रच्छन्न मनोवैज्ञानिक परतों को एक–एक कर कलात्मक ढंग से उजागर किया गया है। इन उपन्यासों में भाषा–शैली–गत कुछ नया आस्वाद यदि मिलता भी हो (जो कथा–भाषा के सामान्य विकास की दृष्टि से स्वाभाविक ही है), पर इनका रचना–शिल्प परम्परागत कथा–संरचना जैसा ही दिखाई देता है। चरित्र–चित्रण, घटना–संयोजन, संवाद, कथा–प्रवाह की एक–रेखीयता, आदि सब परंपरागत औपन्यासिक शिल्प जैसे ही मिलते हैं। प्राथमिकता यह है कि पाठक का ध्यान अधिक–से–अधिक नारी–चिंतन पक्ष पर की केन्द्रित रह सके, कथा–विन्यास में किसी तरह के शैल्पिक प्रयोग की ओर ध्यान नहीं बंटे।

कथा–साहित्य की एक विशेष विद्या अथवा उप–विद्या के रूप में ही देख सकते हैं, जिसके अपने निर्धारित रचना तत्व भी अपनी पहचान बना रहे हैं–उनकी कथा–भाषा, उनके कथानक का संयोजन और उसका विषय, कथानक में आद्यंत नारी–संवेदना का प्राधान्य, औपन्यासिक शिल्प में आधुनिकता का आग्रह, आदि तत्त्व इस तरह के उपन्यासों को एक विशेष वर्गीयता दे रहे हैं, ऐसा स्पष्ट लगता है। नारी–विमर्श और नारी–चरित्र को केंद्र में रखकर कथानक का संयोजन, और नारी–संवेदना से सिक्त एक नए स्वर की कथा–भाषा–जिनकी रचना भी प्रायः स्त्री लेखन के क्षेत्र से ही आ रही है। यह निश्चय ही उपन्यास साहित्य में एक नयी धारा का प्रवाह जैसा प्रतीत होता है।

इतिहास का पौराणिक आख्यानों से ही ऐसे कथानक अथवा चरित्र लिए जा रहे है, यह भी एक सूक्ष्म दिशा–संकेत जैसा लगता है। ऐसा लगता है उपन्यास की एक विशिष्ट विद्या भारतीय नारी–दर्शन का एक नवीन अधुनातन स्वरूप निर्मित करने में लगी है। आशा प्रभात का उपन्यास 'मैं जनक–नंदिनी' (राजकमल, 2021) इस विधा में हाल में लिखे गए उपन्यासों में पर्याप्त चर्चित हुआ है, और उस पर विचार करते हुए हम पौराणिक/ऐतिहासिक नारी–चरित्रों पर नारी–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में रचित कलात्मक उपन्यासों की इस सर्वथा अधुनातन विद्या के संघटक तत्त्वों का विवेचन कर सकते है।

इन सभी उपन्यासों में विधागत कई बातें तो समान हैं ही–जैसे, नारी–लेखकों द्वारा रचित ये सभी उपन्यास किसी हद तक आधुनिक नारी–विमर्श से सीधे जुड़े है, जिसमें पौराणिक अथवा ऐतिहासिक किसी विशेष नारी के चरित्र के प्रच्छन्न मनोवैज्ञानिक परतों को एक–एक कर कलात्मक ढंग से उजागर किया गया है। इन उपन्यासों में भाषा–शैली–गत कुछ नया आस्वाद यदि मिलता भी हो (जो कथा–भाषा के सामान्य विकास की दृष्टि से स्वाभाविक ही है), पर इनका रचना–शिल्प परम्परागत कथा–संरचना जैसा ही दिखाई देता है। चरित्र–चित्रण, घटना–संयोजन, संवाद, कथा–प्रवाह की एक–रेखीयता, आदि सब परंपरागत औपन्यासिक शिल्प जैसे ही मिलते हैं। प्राथमिकता यह है कि पाठक का ध्यान अधिक–से–अधिक नारी–चिंतन पक्ष पर की केन्द्रित रह सके, कथा–विन्यास में किसी तरह के शैल्पिक प्रयोग की ओर ध्यान नहीं बंटे।

पौराणिक कथानक अथवा चरित्र–चित्रण में, ऐसा प्रतीत होता है कि नारी–केन्द्रीयता की प्रधानता को पूरे उपन्यास में एक विशिष्ट कौशल से बनाए रखना इस विधा के उपन्यासों की विशेषता है। इस कारण उपन्यास के अन्य तत्वों में लेखक अनिवार्य रूप से यथावश्यक समायोजन करता है। परन्तु, मुख्य रूप से पौराणिक कथानक और चरित्रांकन–इनमें ही नवीन दृष्टि से हेर–फेर किया गया देखने में आता है।

वाल्मीकि रामायण में राम और सीता का जो प्रधान कथानक है उसमें भी विशेषतः उत्तरकाण्ड के क्षेपकों में ऐसे ही प्रसंग–परिवर्तन मिलते हैं। लंका–विजय के बाद अयोध्या लौटने पर सीता का निष्कासन और वाल्मीकि के आश्रम में लव–कुश का पालन–पोषण, आदि विद्वानों द्वारा वैसे ही क्षेपक–प्रसंग माने जाते हैं। लेकिन लोकाभिरुचि के कारण और अन्य कारणों से भी ऐसे प्रसंगों को विशेष प्रमुखता प्राप्त हो जाती है, यद्यपि तुलसीदास ने रामचरित मानस' में इसे कथानक के स्वाभाविक प्रसंग–विस्तार के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने अपने 'मानस' में, लोकापवाद के प्रसंग में एक सुन्दर, वैकल्पिक प्रतीकात्मक प्रसंग की रचना की है, जो कलात्मकता की दृष्टि से एक अत्युच्च युक्ति के रूप में कथानक में पिरोयी गयी है।

अरण्यकाण्ड में पंचवटी के शूर्पणखा–प्रसंग में कपट–स्वर्ण–मृग का प्रकरण आता है। यहाँ शिव पार्वती से कहते हैं (जहाँ तुलसी कथा में सायास एक दैवी अंतराक्षेपण की युक्ति

अपनाते हैं, जो इस प्रसंग की अलौकिकता के तत्त्व को रेखांकित करता है)। राम यहाँ 'ललित नरलीला' के व्याज से एक अलौकिक युक्ति प्रदर्शित करते है।

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई, सुनहु उमा सो कथा सुहाई।।
लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
सुनहु प्रिया ब्रत रूचिर सुसीला। मैं कुछ करबि ललित नरलीला।।
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा। जो लगि करौं निसाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।

एक अद्भुत प्रकरण है, जिसकी अलौकिकता और रहस्यमयता की ओर कम ध्यान दिया जाता है। राम युक्ति से सीता का यहाँ अग्रि–प्रवेश, और अपने स्थान पर कुटिया में अपना प्रतिबिम्ब रख छोड़ना (जिस छद्म–सीता का बलपूर्वक हरण रावण छलपूर्वक करता है, और उसे लेकर लंका को भागता है), लंका–विजय के बाद की उस छाया–सीता की अग्नि–परीक्षा की भूमिका तैयार करता है। यहाँ इस युक्ति से सीता के अलौकिक और लौकिक दोनों रूप अलग हो जाते है, जैसे अग्नि–प्रवेश के बाद अलौकित सीता कथानक में तब तब लुप्त हो जाती हैं जब तक वे पुनः लंका में अग्नि–परीक्षा के पश्चात राम से आकर नहीं मिलतीं। अग्नि–प्रवेश के पूर्व के राम–सीता की छवि में जैसे अग्नि–परीक्षा के बाद के राम–सीता की छवि को अलौकिक शुचिता पूर्णतः अक्षुण रह जाती है।

श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोललेस महेस बंदित चरण रति अति निर्मली।।

यह एक विलक्षण दीर्घीकृत प्रतीक–योजना है, जिसका प्रयोग तुलसी ने अत्यंत मौलिक एंव संश्लिष्ट रूप में किया है, और जिसमें राम–सीता के निर्मल, अकलुष, अलौकिक प्रेम की भावना सन्निहित है। भारतीय नारी–मनीषा का यह एक अत्यंत धवल, जटिल एवं पावन प्रसंग है, जो भारतीय संस्कृति और जातीय अस्मिता को एक सर्वथा अनन्य और अद्वितीय अभिज्ञान है। पौराणिक आख्यानों में कालक्रम में क्षेपक प्रसंगो का समावेश एक स्वीकृत लोक–सृजन–तत्त्व है, जिनमें विभिन्न समयों और रचनाकारों में कथानक के अलग–अलग आयाम विस्तारित होते हैं। वाल्मीकि की 'रामायण' के उत्तर–काण्ड में स्वयं रचनाकार वाल्मीकि के आश्रम–प्रसंग की उपस्थिति और क्षेपक होने की संभावना की ओर संकेत करती है, और कई कठिन प्रश्न उत्पन्न करती है, जिनमें लव–कुश युद्ध और सीता के राम–दरबार में उपस्थित होने के प्रसंग भी आते हैं। लेकिन प्रायः सभी विद्वान् एकमत है कि मूल वाल्मीकि 'रामायण' का अंत 'युद्ध काण्ड' के साथ ही होता है, जिसमें लंका–विजय के बाद सीता की अग्नि–परीक्षा का प्रसंग आता है और विमान से राम–सीता के अयोध्या–वापसी के बाद उनका विधिवत राज्याभिषेक होता है। 'उत्तरकाण्ड' की रचना का

संपूरक–क्षेपक के रूप में कालान्तर में ही हुई जिसके पीछे कालक्रम में विकसित नारी–केन्द्रित दूषित सामाजिक सोच का कारक रहा हो सकता है।

निश्चय ही ऐसे विवादित पौराणिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय मनीषा में पूज्य माने जाने वाले दम्पति 'राम–सीता' की देवी–तुल्य अर्द्धागिनी सीता की आत्मकथा 'मैं जनक–नंदनी' को औपन्यासिक रूप में लिखना–जिसमें सीता के चरित्र को नारी–विमर्श, नारी–उत्पीडन और मुक्ति के सन्दर्भ में एक कलात्मक आख्यान के रूप में विकसित किया गया हो–इसकी लेखिका आशा प्रभात के लिए अपने आप में एक महान चुनौतीपूर्ण कार्य है। लेकिन सुखकर यह है कि लेखिका ने अपने इस चुनौतीपूर्ण कलात्मक सृजन–कार्य में विस्मयकारी सफलता प्राप्त की है।

लेखिका ने आत्मकथा–रूप में लिखे इस उपन्यास 'मैं जनक–नंदिनी' के उप–शीर्षक में ही स्पष्ट कर दिया है–'अलौकिक सीता की लौकिक प्रस्तुति'। और इस लौकिक प्रस्तुति के लिए ही लेखिका ने सीता के चरित्र पर लोकोपवाद के लांछन को केंद्र में रख कर अपनी कथा–संरचना की है। उपन्यास के 'आमुख' में ही वह कठिन प्रश्न रेखांकित किया गया है–''सीता को वनवास देने का राजा राम का निर्णय तर्क संगत, न्याय संगत एवं अंतिम और पूर्ण है क्या?'' अर्थात, कहानी का उत्स ही इस यक्ष–प्रश्न में गर्भित है।

इससे एक स्वाभाविक प्रति–प्रश्न उठता है कि भारतीय मनीषा में सर्वाधिक लोक–प्रचलित मूल वाल्मीकि 'रामायण और तुलसी–कृत 'रामचरित मानस' में जो प्रसंग सर्व–मान्य ही नहीं है, उसको आधार मान कर एक अत्यंत पूजित और आदर्श चरित्र की औपन्यासिक आत्मकथा को, जिसमें लोक–पूजित राम और सीता के कितना विश्वसनीय और स्वीकारोचित माना जा सकता है? निश्चय ही पाठक–वर्ग में ऐसी सहज विश्वसनीयता अर्जित कर लेना ही इस औपन्यासिक कृति के सामने सबसे कठिन चुनौती रही है। तुलसीदास का स्मरण करते हुए पहले तो लेखिका ने सीता के सन्दर्भ में यह चौपाई उद्धृत की है–

आदि शक्ति छवि निधि जगमूला। वाम भाग सोहति अनुकूला।।
भृकृटी विलास जासु लय होई। राम वाम दिसि सीता सोई।।

यह भारतीय 'बाम दिसि' दाम्पत्य की आदर्श नारी का चित्र है, जो 'आदि शक्ति छवि निधि जगमूला' नारी का चित्र है। वह नारी अपने स्वाभाविक दाम्पत्य–प्रेम में ही पूर्ण और निष्कलंक है। उसका 'आदि शक्ति' का देवी–भाव उसमें निहित है, जो किसी कलुष की संभावना से पूर्णतः मुक्त है। अपने मानवीय रूप में भी उसका यह 'देवी–भाव,' उसकी वह निष्कलुषता उसमें निहित है, जैसा कि एक–पत्नीव्रत राम में भी है, उनके देव–रूप में, और मानव रूप में भी। शूर्पनखा प्रसंग भी हल्के से इसी और संकेत करता है। लेकिन जब हम पाश्चात्य नारी–दर्शन (जिसमें उच्छृंखलता और मर्यादा–भंग का भाव निहित है) के परिपेक्ष्य में एक भारतीय पौराणिक लोकमान्य, लोक–पूजित नारी–चरित्र के मनोविज्ञान को समझने

की चेष्टा करते हैं, तब एक विडंबनात्मक स्थिति उत्पन्न होती है जो कहीं एक विषमता का बोध जगाने लगता है।

हमारे सभी पौराणिक आख्यान, सामान्यतः, एक आदर्श जीवन और जगत की कल्पना पर आधारित है, जिनके पीछे 'ऐसा है या था' नहीं, वरन 'ऐसा रहे या होता' का भाव रहता है। अपने सभी पौराणिक आख्यानों में हम अपूर्ण और दूषित से पूर्ण और दोष–रहित की ओर उर्ध्वगामी होते हैं, जबकि मानवीकरण की प्रक्रिया इसके विपरीत अधोगमन की प्रक्रिया होती है। ईसाई धर्म में आदम और हौवा के स्वर्ग से निष्कासन का प्रसंग इसी विचार को अभिव्यक्त करता है। यह 'देवत्वारोपन' (एपोथियोसिस) की विपरीत की प्रक्रिया इसके विपरीत प्रक्रिया जिसे 'प्रति–देवत्वारोपन' कह सकते हैं। एक ऐसी विरोधी प्रतिक्रिया जिसमें जिन मानव–स्वरूपी चरित्रों में देवत्त्व के गुण देखे जा चुके हों, उनमें पुनः मानवीय दूषणों के दर्शन की संभावना जगती हो। वाल्मीकि 'रामायण के उत्तरकाण्ड के क्षेपक–प्रसंग कुछ ऐसी ही प्रतिरोधी प्रक्रिया का निर्माण करते प्रतीत होते हैं। तुलसी के 'मानस' में भी अयोध्या–पुनरागमन के पश्चात् लव–कुश का संक्षिप्त प्रसंग है–

दुइ सुत सुन्दर सीतां जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए।।
दुह दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे।।

लेकिन 'मानस' में यहाँ एक स्वाभाविक कथा समापन का भाव है, जो कला की दृष्टि से अधिक उचित और प्रभावशाली प्रतीत होता है।

इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर आशा प्रभात का उपन्यास, 'मैं जनक–नंदिनी' जहाँ एक ओर अपनी कथानक–संरचना को लेकर विवादग्रस्त है, क्योंकि प्रायः सभी टिप्पणीकारों ने–चक्रवर्ती राजागोपालचारी ने भी वाल्मीकि 'रामायण' के अपने अंग्रेजी अनुवाद में, या अन्य कई विद्वानों ने भी–लंका से अयोध्या लौटने और राज्याभिषेक होने के बाद–राम द्वारा लोकापवाद के ब्याज से सीता के वन–निष्कासन को अमान्य किया है और उसे एक प्रकार का अ–कलात्मक अपकर्ष (ऐंटी–क्लाइमेक्स) माना है। वहीं दूसरी ओर यह सुगठित, सुरचित उपन्यास एक विशिष्ट समकालीन विधा–विशेष की कलात्मक कृति के रूप में–कथानक की इस विवादग्रस्तता के बावजूद–आश्चर्यजनक रूप से एक सफल कृति है, जिससे सीता की एक सर्वथा नयी प्रतीति उभरती है, और जो आधुनिक नारी–विमर्श के आसंग में सीता का एक नया चरित्र–विश्लेषण उपस्थित करती है।

डॉ. मंगलमूर्त्ति, एच–701, सेलेब्रिटी गार्डन्स, सुशांत गोल्फ सिटी, अंसल एपीआइ, लखनऊ–30
ई–मेल : bsmmurty@gmail.com

✧ ✧ ✧

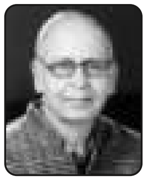

राजी सेठ : मनुष्य की अप्रतिहत जिजीविषा

डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ

'गलियारे' में कभी पीठ पर ढ़ाई मन की बोरी उठा लेने वाला देवा एक दुर्घटना के फलस्वरूप असहाय और अपंग हो जाता है। उसकी पीड़ा केवल शारीरिक नहीं है, बाहर के भागते–दौड़ते संसार से आती सूचनाएँ–घटनाएँ उसकी शिराओं में झनझनाती रहती हैं। लेकिन शरीर और मन में कोई सामंजस्य न होने की विडम्बना उसकी त्रासदी बन जाती है। सदियों से नारी पुरुष शासित समाज के आतंक से आक्रांत रही है और एक तरह की भावनात्मक अपंगता उसे हमेशा दबोचे रही है।

'यह कहानी नहीं' शीर्षक कहानी में राजी सेठ का सवाल है कि क्या किसी के आदेश, मनुहार, माँग पर कहानी लिखी जा सकती है? सवाल का जबाव 'नहीं' है। इसका एक कारण यह है कि 'रचना की क्या बिसात कि जीने के दर्द को समेट पाये समूचा'। रचना में दूसरों के दर्द की भूमिका है, तभी तो शोक – विह्वल आंटी और अंकल की तकलीफ पर 'यह कहानी नहीं' जैसी सशक्त कहानी लिख गयी है। देख–सुनी परायी वेदना जब रचनाकार की संवेदना बन जाती है तब 'जीवन पर रची गयी अक्षरों की एक इबारत' अस्तित्व में आती है। 'नैरेटर' इस कहानी में अंततः जिस नतीजे पर पहुँची है, वह राजी सेठ का अपना अर्जित सत्य लगता है– 'रचना क्या है मुख विहीन लाचारी। अँधेरे में इंतजार। शब्द टटोलते गूँगे दर्द के हाथ। रोशनी की कतरन के लिए असफल तप। हर बार नई लड़ाई के लिए धीरज की माँग।' यह मंतव्य 'अंधे मोड़ से आगे', 'तीसरी हथेली', 'यात्रा–मुक्त', 'दूसरे देशकाल में', 'यह कहानी नहीं', 'किसका इतिहास' आदि संग्रहों की कहानियों को पढ़ते समय प्रासंगिक लगता है। अधिकतर कहानियाँ 'तप' और 'धीरज' की रचना – साधना से निथरी हैं, इस संशोधन के साथ कि उनका तप असफल नहीं है।

मृत्यु और विकलांगता राजी सेठ की कहानियों में बराबर ध्यान आकर्षित करती हैं। 'गलियारे' कहानी का एक विकलांग चरित्र अपने अनुभवों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा है– ''यहाँ सुखी होने और हँसने में संबंध नहीं। शरीर और मन में कोई संबंध नहीं। दुख में और दुखी होने में संबंध नहीं।'' यह सच केवल अपंग–गृह का सच नहीं है। 'सदियों से', 'विकल्प', 'स्त्री', 'अभी तो', 'कब तक', 'घोड़े से गधे', 'दूसरे देशकाल में' आदि को पढ़ते समय महसूस होता है कि चाहे दाम्पत्य की धवलता के लिए सूली चढ़ी पत्नियाँ हों, घर बैठने के क्षोभ से उफनते पति हों, अपने मुखौटा लगे न्याय के लिए ग्लानि से भरी गृहिणी हो या अपने भविष्य की आशा में पालतू हो चला बच्चा हो, सबके सब सोच और कर्म के द्वैत से ग्रस्त हैं। वे जो करना चाहते हैं कर नहीं पाते। यहाँ तक कि जो सोचते हैं, कह भी नहीं पाते। यह भी एक तरह की विकलांगता है– मानसिक–वाचिक विकलांगता। राजी सेठ की ये कहानियाँ इस अपंगता को वगैर किसी उत्तेजना के, मन को मथ देने को प्रतिश्रुत ठंडेपन के साथ प्रस्तुत करती हैं।

'गलियारे' में कभी पीठ पर ढ़ाई मन की बोरी उठा लेने वाला देवा एक दुर्घटना के फलस्वरूप असहाय और अपंग हो जाता है। उसकी पीड़ा केवल शारीरिक नहीं है, बाहर के भागते–दौड़ते संसार से आती सूचनाएँ–घटनाएँ उसकी शिराओं में झनझनाती रहती हैं। लेकिन शरीर और मन में कोई सामंजस्य न होने की विडम्बना उसकी त्रासदी बन जाती है। सदियों से नारी पुरुष शासित समाज के आतंक से आक्रांत रही है और एक तरह की भावनात्मक अपंगता उसे हमेशा दबोचे रही है। 'सदियों से' कहानी में स्त्री 'इतिहास की गठरी लादे' लहूलुहान होती रहती है, कभी पति के संयत से दिखते चेहरे से और कभी खुद के उघड़ने के डर से। पूर्व प्रेमी के पत्रों को जला कर वह अतीत से, रोज–रोज की यातना से मुक्त होना चाहती है, लेकिन जो अतीत है वह तो चेतना की दीवारों पर दर्ज है। राजी सेठ ने उसकी तनावपूर्ण मानसिकता को नारी मात्र की नियति के संदर्भ में देखा है– 'स्त्री होने की क्या यही परिणति है? अपने से लड़ना। जूझना..........तो फिर वह कौन है जो सतत इस जवाबदेही की सूली पर टँगी है? सदियों से इसी तरह, इन्हीं अदालतों के बीच उघड़ी खड़ी है? सभी प्रश्नों के जबाव उसे ही क्यों देने हैं?'' 'दूसरे देश काल में' कहानी भी ये सवाल अपने ढंग से उठाती है। इस कहानी में दो बातें विशेषतः उल्लेखनीय हैं। गर्भपात के संदर्भ में एक बात तो यह कि स्त्री–पुरुष के साझे अपराध की सजा स्त्री ही क्यों भुगते ''हम लोग कब तक उन बातों के लिए कलंकित होते रहेंगे, जिन्हें हमने अकेले नहीं किया। निषिद्ध कमरों में घुसने का दुस्साहस दोनों करेंगे, पर काठ की चौखटों पर सिर हमारे ठुकेंगे''। दूसरी बात यह कि गायब से लगते समाज की परवाह युवा पीढ़ी को नहीं करनी चाहिए। ''तुम चाहो तो तुम भी अपनी स्थितियों को बिल्कुल नये नाम दे सकती हो और वह सब कभी न कभी सच हो जायेंगे। तुम चाहो तो लोगों की लिखी हुई इबारत को नकार सकती हो।''

समाज की कथित इबारत को नकारने का निश्चिय 'अकारण तो नहीं' कहानी में ध्यान आकर्षित करता है। खोट पति में है लेकिन बाँझ होने के ताने दीपाली के हिस्से में आते हैं। 'मर्द हूँ मैं घर का' और 'औरत की शोभा कोख से है, कपड़ों से नहीं'– पुरुष प्रधान व्यवस्था की सोच है, लेकिन आज का पति किसी सामंत या पूँजीवादी की तरह स्पष्ट और परिभाषित नहीं है। उसमें एक शातिर काइयाँपन है, जिससे लड़ने में दीपाली को मुश्किल होती है। इस कहानी में पति और घर को त्यागने में नारी–मुक्ति की चेतना अपनी स्वाभाविक परिणति को प्राप्त करती है– 'एकदम जान रही है दीपाली कि जाने की तरह, लौट कर न आने का इरादा उसके भीतर कितनी तेजी से बन रहा है।' स्त्री–प्रतिवाद का एक अलग रूप 'बुत' कहानी में है। कहानी की 'वह' मनुष्य नहीं बुत है। उसके बुत बन जाने में पति का योगदान है– 'उनके इस तरह घर से पलायन किये रहने से लगा, यह बुत इनके ही गढ़े हुए हैं। धीरे–धीरे मिट्टी का मलीदा बना कर उस पर पानी डाल–डाल कर उसे पक्का भी कर दिया गया है' इस कहानी में पति गलियारे, रसोई, कमरे की बत्तियाँ जलाता है और पत्नी उन्हें बुझाती हुई चलती है। यह क्रिया व्यवहारगत यांत्रिकता के साथ–साथ मौन–प्रतिवाद की व्यंजक भी है।

'यह कहानी नहीं' की 'सोचते हुए' शीर्षक 'भूमिका' में राजी सेठ का कथन है' '..मेरी आन्तरिकता में मृत्यु एक ऐसा ही मुद्दा है, जो मेरी रचनाओं में बार–बार उजागर होता है। जीवन की बहुत–सी बातें उसी संदर्भ से लग कर कहने का दबाब बनता है। कभी स्थिति की तरह, कभी प्रसंग, कभी अनुभव, कभी मानसिकता के प्रसार की तरह मृत्यु सदा उपस्थित रहती है'..। 'पुल', 'यह कहानी नहीं', 'उतनी दूर','तदुपरान्त', 'पुनः', 'तुम भी', 'बाहरी लोग', 'रुको इंतजार हुसैन' आदि में मृत्यु अलग–अलग संदर्भों में विद्यमान हैं। प्रायः कहानियों में मौत का आघात मात्र नहीं है, मौत के बाद इस मौत को बार–बार जीना है। 'यह कहानी नहीं' में बेटा–बहू और बच्चे दुर्घटना में कालकवलित हो गये हैं। 'तदुपरान्त में पति का असामयिक निधन है तो 'उतनी दूर' में सीमा पर बेटे की शहादत है। 'पुनः नहीं' में पिता की मृत्यु के बाद का ठंडापन है और 'तुम भी' में माँ की मृत्यु की स्मृति है। 'यह कहानी नहीं' में मृत्यु के अनुभव को लिखते हुए पीड़ा के कई स्तर और संदर्भ खुलते और उघड़ते हैंः '...मृत्यु की गंध इतनी परिव्याप्त, इतनी टिकाऊ, आतंककारी। अनुपस्थिति की स्थूलता–इतनी महीन, विप्लवकारी। अंदर जितने भी बाँध थे, सब खुल गये थे। वहाँ मेरे बैठे रहने का अर्थ था घायल होना। अपने को भीतर तक दे देना। उतना दिए बिना तो किसी के घाव पर फाहा तक नहीं लगता' 'यह कहानी नहीं' और 'पुत्र' में एक साम्य है कि दिवंगतों की माँ दुख को बहुत समय तक महसूसती और जीती है। पिताओं का हाहाकार उतना प्रत्यक्ष नहीं है, लेकिन उनकी मर्मवेदना कम मारक या वेधक नहीं है। शायद पुरुष होने का अहंकार आड़े आता है या जीवन–साथी को सँभालने के लिए वे अपनी टूटन और व्यथा को सार्वजनिक नहीं होने देते हैं। इन कहानियों में यह संकेत छन कर आया है कि दुख के बोझ को मिलजुल कर उठाया जाये, तो

हिस्से में आयी यातना और व्यथा असहनीय नहीं रह जाती। पीड़ा किसी मकसद से जुड़ जाती है तब भी उसका विरेचन हो जाता है।

इन्दिरा गोस्वामी की आत्मकथा 'जिन्दगी कोई सौदा नहीं' के संबंध में राजी सेठ ने एक जगह लिखा है 'भय से निर्भयता, लाचारी से आत्मसत्ता, दिशाहीनता से दिशावानता की ओर प्रस्थान का साक्ष्य है। यदि मृत्युबोध सारी पुस्तक में आया है तो उतना ही अचूक जिजीविषा का स्थान है''। स्वयं राजी सेठ की मृत्यु–केन्द्रित कहानियों में यह अचूक जिजीविषा विद्यमान है। 'इन दिनों' में पुस्तक के एक पृष्ठ की इबारत पलायन की जगह निर्भयता का मंत्र देती हैः 'हम सब भयभीत और डरे हुए लोग हैं। जीवन को जो रूप हम देते हैं, मृत्यु के भय के कारण देते हैं जब कि मृत्यु से न हम मुक्त हो सकते हैं न उसे जीत सकते हैं, तब तक हम मृत्यु से भागते रहेंगे, डरते रहेंगे, हारते रहेंगे। जिस दिन निडर हो कर खड़े हो जायेंगे, वह विदा हो जायेगी।' कई कहानियों में मृत्यु के सर्वग्रासी दुष्प्रभाव से उबर कर नयी शुरुआत की जरूरत व्यक्त है। 'पुल' के कर्तार सिंह को जीने की हिम्मत वाहे गुरु की इस सीख से मिली है कि हर इनसान के अंदर एक और इनसान बैठा है, इस बड़े इनसान को जगाये रखना चाहिए। 'यह कहानी नहीं' के अंकल का स्कूल बनवाने का संकल्प इसी बड़े इनसान को जगाये रखना है, ''मैं ही क्यों अपनी मुट्ठी में इतना कुछ भर कर जीने के लालच में पड़ा रहूँ। मुक्त क्यों न हो लूँ! क्यों न ले लेने दूँ सबको सब कुछ''। देश–विभाजन से संबंधित 'मुलाकात', 'बाहरी लोग', 'किसका इतिहास', 'रुको इंतजार हुसैन' आदि में मृत्यु की छाया अपरिहार्य थी ।

ये कहानियाँ प्रमाण हैं कि आज भी उस देशव्यापी हादसे पर लिखने को बहुत कुछ बचा हुआ है। 'बाहरी लोग' में इतिहास की अँधेरी सुरंग में फँसे हुए भुक्तभोगियों की विडम्बना है। इस कहानी की माँ विक्षिप्त हो चुकी है, लेकिन मातृत्व के बहाने मनुष्यता बची हुई है, जिजीविषा बची हुई है : ''नहीं तो ऐसा कैसे हो जाता कि इतिहास के दर्द को अपने होशोहवास पर झेलती यह स्त्री एक निचाट नये नगर के परायेपन में एक उद्दंड पुत्र को अपना आँचल देकर सहेजती''। इन सभी कहानियों की व्यंजना न्यूनाधिक यही हैं कि किसी एक हादसे के चलते जिन्दगी खत्म नहीं होती। 'मुलाकात' कहानी में कई तीखे सवाल है, जिनमें एक है– 'इतिहास कूटपीट पर क्या किसी आदमी को दूसरा आदमी बना देता है'? यह कहानी ऊपरी तौर पर दुख, हताशा, अवसाद से भरी हुई है, विशेषतः जब विस्थापित व्यक्ति अफसर के सामने फूट पड़ता हैः 'उन फसादों में सबके बच्चे मर गये... मेरे क्यों नहीं मरे क्यों जिन्दा रह गये?' लेकिन उसका भीख की जगह काम माँगना जताता है कि जूझने का कब्जा बचा हुआ है। 'रुको, इंतजार हुसैन' अद्भुत कहानी है, जिसका समापन 'वक्त के सीने पर खून की जमी चीख' के पिघलने से हुआ है। सोच, संवेदना, भाषा, कहन–सभी दृष्टियों से यह उल्लेखनीय कहानी है। विभाजनजन्य उदासी, दहशत और अँधेरे की जो कहानी इंतजार हुसैन ने 'बस्ती' उपन्याय में कही है, नैरेटर उसका भुक्तभोगी है। उस जैसे

विस्थापितों ने उखड़ने के बाद पैर जमाने की जी तोड़ कोशिश की है। यही संघर्ष इस सवाल का जबाव है कि विभाजन जैसी विभीषिका पर कुल जमा दस किताबें क्यों लिखी गयीं? जबाब है– ''..लिखने वाले और होते हैं, उखड़ने वाले और। उखड़ने वालों को इबारतों में उलझने की फुरसत ही नहीं। पैरों तले पड़े अंगारों को हथेली पर रख कर देखने की भी हिम्मत नहीं।'

राजी सेठ के एक कथन (हंस, जनवरी 1999) को आधार बना कर डॉ0 निर्मला जैन को लगा है कि वे रचे हुए यथार्थ पर अधिक बल देकर 'रचना के लिए वस्तुगत यथार्थ की अनिवार्यता' का निषेध करना चाहती हैं। कई कहानियाँ इस धारणा का समर्थन नहीं करती हैं। 'उतनी दूर' में कारगिल की लड़ाई वास्तविकता है लेकिन एक लड़ाई अपने छोटे बेटे दास आहत–अपमानित वृद्धा माँ के भीतर भी चल रही है। वह रक्षाकोश में अपने बचे–खुचे गहने देना चाहती है, लेकिन बेटे को यह भावुकता स्वीकार नहीं है। माँ का अपने निश्चय पर अडिग रहना'– 'अडिग अडोल अपने स्वामित्व का अधिकार वापस माँगती हुई', वस्तुगत यथार्थ का विलोम नहीं है। यह अवश्य है कि राजी सेठ की कहानियों में घटनाओं की उत्तेजना उतनी प्रत्यक्ष नहीं है, जितनी अन्तर्मन की जटिलताएँ। 'तदुपरान्त' में छोटी–छोटी सामान्य सी वस्तुएँ और क्रियाएँ दुर्घटना के अँधेरे को और सघन कर गयी हैं। कैलेण्डर, गोल आलुओं पर हरियायी चिपकन, भार्गव का रिकार्ड छाँटना आदि न केवल अमृत की विधवा को आहत करते हैं अपितु मध्यवर्गीय क्षुद्रताओं को भी अनावृत करते हैं। एक तरीका यह भी है किसी की पहचान मिटाने का' यह नहीं कि जाने वाले की आदतों को स्मृति की सुनहरी मंजूषा में सहेज कर रखा जाए बल्कि यह कि उसका जम–जम कर इस्तेमाल किया जाए''। 'यात्रा–मुक्त' में अपमान की किरचें किशना के वजूद को छीलती रहती है, यह किसी भी घरेलू नौकर का जीवन–यथार्थ है। लेकिन यह कहानी किशना से अधिक उसके बापू की है, जिनके पास अपनी संतान को देने के लिए 'एक अपना आप है, दूसरा पसीने की गंध से लिखा हुआ गुलामी का इतिहास'। वे खुद को खत्म करके बेटे को गुलामी से मुक्त करना चाहते हैं। कटु अनुभवों से निथरी मुक्ति–चेतना इस कहानी को अविस्मरणीय बना देती है। 'उसी जंगल में' अपनी सौत के लिए करुणा से भर उठना, 'गधों से घोड़े' में घरेलू नौकर का न पढ़ने का फैसला, 'किसका इतिहास' के बाबूजी की अनचाहे विवाह को स्वीकृति– यह सब कठोर वास्तविकता से टकराकर अस्तित्व में आये हैं। इन सबमें वस्तुगत यथार्थ अनिवार्य है, उसकी अभिव्यक्ति कथा लेखिका ने अपने ढंग से अवश्य की है।

कहानी के लिए वांछित 'इंतजार', 'धीरज' और 'तप' के प्रमाण कहानियों की बुनावट में प्रत्यक्ष हैं। शारीरिक से ज्यादा मानसिक अपंगता को जी रहे चरित्रों के द्वन्द्व और वेदना को संप्रेषित करने के लिए राजी सेठ ने जिस भाषा का चयन किया है, वह सार्थक पदों, संवेदन–सक्षम बिम्बों और दूरगामी संकेतों से सम्पन्न हैं। चूँकि द्रष्टा प्रायः एक शिक्षित महिला है अतः भाषा के चुनाव और कहन की मुद्राओं में एक किस्म का आभिजात्य है। 'बाहरी

लोग' में भाषा इस रूप में है– ''अभी तक वे दोनों थे। पुरुष था, हिंसा थी, क्रोध था, आक्षेप और आलोचना। अब कुछ नहीं है। चुप्पी है। मैं हूँ और चिपचिप आत्मग्लानि। मेरे आपे को झकझोरती, दूषित करती एक अस्वच्छ सी अनुभूति''। आशंका, डर, रुदन से बुना हुआ सहमापन किस भाषा में भलीभाँति व्यक्त हो सकेगा, इसके प्रति कथाकार सजग है। बिम्ब और संकेत उसमें स्वतः समाहित होते जाते हैं। 'उतना सा देश' में व्यक्त अन्तर्व्यथा इस रूप में है, 'एक विलाप सा चलता रहता है.... छीलता रहता है..... दर्द के आरे से जैसे लकड़ी की टेढ़ी–मेढ़ी गाँठें चिरती हों'। इसी तरह 'शिद्दत का कोई क्षण होता है तो वह अपने आपको खुद मनवा लेता है', 'उसके सुख देख भी उसी की तरह उसके पैरों के पास दुबके रहते हैं', 'मन ऐसा जैसे कबूतर के अभी–अभी जन्मे बच्चे को किसी ने पत्थर से कूच दिया हो', 'जैसे किसी बहशी हाथों ने चाकू की नोक से उसे आर–पार चीर दिया हो' आदि अवतरणों में अनुभवों को बिम्ब बनाने में सफलता मिली है। जहाँ अप्रस्तुतों और बिम्बों पर निर्भरता कम है, वहाँ भी भाषा की संप्रेषण–शक्ति भरपूर है। 'खाली लिफाफा' में कई तरह के संकटों के माध्यम से मनुष्य की जिजीविषा भली–भाँति संकेतित हुई हैः 'संकट अधबीच थक जाने, ढह जाने, जीते जी अंदर से रीत जाने के भी होते हैं। जिन्दगी की लाँघती–फलाँगती रफ्तार के सामने अपने घिसटने को न सह पाने के भी होते हैं। संकट जीते जी जीने के हौसले को खो देने के भी होते हैं। संकट जीना चाहने और जीने की मोहलत खत्म हो जाने के भी होते हैं।'' इस तरह का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अधिकतर कहानियों में ध्यान आकर्षित करता है। इनसे कहानियों के संप्रेषण–कौशल को बाधा नहीं पहुँची है। 'सुरंग' का रूपक कई कहानियों में हैः 'क्योंकि हम खुद इतिहास की उस सुरंग में फँस जाने से बच गये थे', 'लगा अतीत ने सुरंग बिछा कर किसी जर्जर पोटली में बँधे उसके प्राण..', 'काली अँधेरी सुरंग के अंत में एक आलोकवृत्त मुँह बाये खड़ा होता है..', 'क्या वह काली सुरंग में से गुजर चुकी है' आदि अवतरण स्थिति और मनःस्थिति के विश्लेषण में सहायक हैं। ये जहाँ डराते हैं, वहीं मनुष्य की अप्रहित जिजीविषा के प्रति आश्वस्त भी करते हैं।

'किसका इतिहास' के 'फ्लैप' पर रमेश दवे ने राजी सेठ को निर्मल वर्मा सरीखा कथाकार माना है, जिन्हें बगैर किसी वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ पढ़ा जाता है। वस्तुतः राजी सेठ निर्मल वर्मा की तरह एकांत अन्तर्मुखी और लगभग कलावादी नहीं हैं। वे वैयक्तिक पीड़ा की व्याख्याता मात्र न होकर सार्वजनिक त्रासदी की द्रष्टा और विश्लेषक हैं। उनका अपना एक विजन है जो 'जिन्दगी को हथेलियों से भरे रहने के ओज' से समृद्ध है।

डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, डी–131, रमेश विहार, अलीगढ़–202001
मो. : 9837004113

✧ ✧ ✧

लीलाधर मंडलोई की कविता चुनौती भरे समय में एक सार्थक वक्तव्य

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

अगर धरती पर प्रेम बचा रहे तो संभव है—बची रहे मनुष्यता और उसके आलोक में सृष्टि का विधान भी। यही कारण है कि मंडलोई की कविताओं में रागात्मकता की अभिव्यक्ति कुछ अधिक ही है और इसकी परिधि का विस्तार मानव—लोक तक ही नहीं बल्कि मानवेतर प्राणी लोक तक है। यहाँ तक कि कवि को प्रकृति भी मदहोश कर देने वाली राग में डूबी नजर आती है जिसकी गिरफ्त में वह स्वयं को भी पाता है—''डूबा हूँ मैं मदकाल के निनादों में/ कि मुझ तक आ रही है गंध/मुझमें जाग रहा है राग।''

कविता में सृष्टि का विश्वबोध उभारना न तो सहज है और न ही सभी के लिए संभव। लीलाधर मंडलोई सृष्टि का विश्वबोध उभारने के इसलिए सफल हो सके हैं कि उनके अनुभव की परिधि व्यापक और संवेदन—तंतु की ग्राह्यता अधिक है। उन्होंने सतपुड़ा से लेकर अण्डमान—निकोबार द्वीपसमूह सहित तमाम भूलोकों में जाने तथा रहने—बसने के क्षणों को कविता का हिस्सा बनाकर न केवल सृष्टि के साथ अपने साहचर्य का आरेखन किया है बल्कि उनकी पीड़ाओं, यातनाओं तथा आगत त्रासदियों से जुड़ी अपनी चिंताएँ भी प्रकट की हैं। उनकी कविताएँ सृष्टि के सर्वथा अछूते प्रसंगो, घटनाओं और प्राणियों के अन्तर्जगत की साक्षी भर नहीं हैं बल्कि वे बेहतर विकल्प की संभावनाएँ भी है। इसका कारण यह कि समय की भयावहता का बोध जितना इस कवि को है उतना संभवतः अन्य किसी को नहीं। यों तो कविता में मनुष्य और प्रकृति की आवाजाही रहती ही है लेकिन उनके बीच के संबंधों और रहस्यों को जानकर उनको बचाने की कोशिश कितने कवियों के यहाँ है? मंडलोई की कविताएँ प्रकृति के रहस्यों को जानने के साथ—साथ उन्हें बचाने की कोशिश भी करती हैं। हालांकि विस्मृति और विलोप के इस भयावह समय में उन्हें बचा पाने में कवि को सन्देह है ''वे बची रहेंगी आगे भी सन्देह बहोत/विलुप्ति के

इस मारक समय में।'' (पचास कवितायें—नयी सदी के लिए चयन, पृष्ठ सं. 22)

जब लगातार विलोपीकरण की प्रवृति बढ़ रही हो— गायब हो रही हो गौरेया, बाजरे की खेती गायब हो रही हो, चिकक के बोल नहीं सुन पड़ रहे हों, अरण्डी का वृक्ष गायब हो रहा हो और तो और वे वन नहीं दिख रहे हों— 'जिनमें फल ही फल होते थे/शहद के छत्ते भरपूर/चीटियों की कतारें/कन्द मूल और/अमलतास की पकी फलियाँ होती थी/आम और उनकी गुठलियाँ/महुए के फूल/और ताड़ के पोड़ से उतरती नीरा।'' (वही, पृष्ठ सं0 30) तब उन्हें बचा पाना कितना कठिन है इसका अनुमान किया जा सकता है। ऐसे में एक संवेदनशील और भावुक हृदय सिर्फ अपना दुःख प्रकट कर सकता है— ''मेरी आँखे ढूंढती हैं अब उन्हें /और भर जाती है अव्यक्त दुख से।'' (वही पृष्ठ सं0 31) यह कोई सामान्य दुःख नहीं है बल्कि मानव अस्मिता से जुड़ा दुःख है। पर्यावरण के खतरे से भरा दुःख है। घोड़ानक्कास का मरना, पीतल की नक्काशी वाली दुकानों का उठना, पहियों को रंगरोगन करने वाले लोगों का जाना, गुलियादाई की गली तथा मटरगश्तियों और फब्तियों का गायब होना भी कवि को अखरता है। वह इसे एक सांस्कृतिक संकट के रूप में देखता है। उसे लगता है कि 'आखिरी साँसे हैं ये कल्चर कीं, इसके बावजूद कवि को उम्मीद है कि अभी भी शेष है बहुत और बहुत कुछ जो बच सकता है उसी तरह जैसे कि—

''समुद्र की अतल गहराइयों
या कि सुदूर इलाकों में
जहाँ उगता है कुछ न कुछ
और बचा रहता है पौधा
पौधे पर उगता फूल
कोई न कोई अन्न
और कोई जीव
मस्ती में डोलता—नाचता।'' (वहीं, पृष्ठ सं. 76)

अगर धरती पर प्रेम बचा रहे तो संभव है— बची रहे मनुष्यता और उसके आलोक में सृष्टि का विधान भी। यही कारण है कि मंडलोई की कविताओं में रागात्मकता की अभिव्यक्ति कुछ अधिक ही है और इसकी परिधि का विस्तार मानव—लोक तक ही नहीं बल्कि मानवेतर प्राणी लोक तक है। यहाँ तक कि कवि को प्रकृति भी मदहोश कर देने वाली राग में डूबी नजर आती है जिसकी गिरफ्त में वह स्वयं को भी पाता है— ''डूबा हूँ मैं मदकाल के निनादों में/ कि मुझ तक आ रही है गंध/मुझमें जाग रहा है राग।'' (वही, पृष्ठ सं. 35)। मंडलोई जी राग के साथ 'अनोखा' और 'अनूठा' विशेषण लगाकर संभवतः घनानन्द के 'औरे कछु' वाला प्रभाव व्यंजित करना चाहते हैं। उनके यहाँ राग में डूबे पशु—पक्षियों की एक लम्बी सूची है जिन्हें देखना और कभी—कभी छिप कर देखना उन्हें अच्छा लगता है। वे मोरों की नृत्यलीन मुद्राओं को पेड़ की ओट से देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाते—'' मैं एक चोर की तरह पेड़ की

ओट में हूँ/उनकी समूची देह अनूठे राग में विन्यस्त।'' (वही पृष्ठ सं. 16)। जीवन–जगत में रागात्मकता की प्रतिष्ठा के प्रति गहरी आकांक्षा ही है जो कवि के सौन्दर्य–बोध को भी बदल देती है। मंडलोई जी के मन में बचपन से जिन रंगों के प्रति जुगुप्सा का भाव था अब वे ही उन्हें सृष्टि के जरूरी रंग लगने लगे है। इससे सौन्दर्य की अवधारणा बदली है और उसे एक नया आकार मिला है। यही कारण है कि मटमैले पत्थरों में केकेड़े के खेल में व्यस्त गोह की देह कवि को पहली बार आकर्षक लगी है– ''वह बस डूबी थी अनोखे राग में/उसकी देह के पीछे नहीं बल्कि पर्वत पर आरूढ़ होता सूर्य देखता है और ठीक उसी क्षण मिथुन युगल एक नर चीता एक मादा पर तब उसका ऐन्द्र जालिक बिम्ब विधान अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करता है। काम के उतप्त आवेग में मनुहार का यह दृश्य मानवीय मनुहार के प्रसंगों से कही अधिक मुखर और अनुपम है तभी तो कवि को अनुराग के इस पावन आलोक में मानव समाज का अन्धकार दिखता है–

''मादा अपना मनुहार भरा पंजा उठा रही थी
देखा मैंने उसने चूमा उसकी पीठ
और जैसे ही सूरज की तरह पहाड़ी की पीठ पे हुआ आरूढ़
हवायें बहने लगीं नये रंग–रूप और सज–धज में
रोशनी के उतरने झरने में
मैंने उस रोज अपना अंधकार देखा।'' (कला बाँका–तिरछा, पृष्ठ सं.–28)

मंडलोई की काव्य–चेतना में प्रेम के परम्परित प्रतीकों और मिथकों के लोक से सर्वथा भिन्न लोक की उपस्थिति देखी जा सकती है। बर्र उसकी आक्रामता के कारण बर्र के छत्ते में हाथ डालने की कहावत मशहूर हुई थी वही बर्र उनके यहाँ प्रेम का उदाहरण है– 'मैंने देखा उनका वह प्रेम/जो अपने बच्चों के लिए था/जिसमें वे डूबे थे।'' (पचास कवितायें–नयी सदी के लिए चयन, पृष्ठ सं. 15)। साहित्य में दीमकों का वर्णन हुआ है लेकिन उनके उद्दाम प्रेम का जो वर्णन मंडलोई की कविता में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम में चिर लीन दीमकों के पंख उद्दाम आवेग में कब टूट गए इसका उन्हें पता नहीं लेकिन उनके जुड़े होने का विश्वास इतना अधिक है कि उड़ने के स्वप्न में भी जीवन की सिहरन महसूस होती है। कवि इस बोध को मृत्यु के ऐन सम्मुख जीवन का ज्ञान कहता है। 'पहली बारिश के बाद' शीर्षक कविता में भी पंख त्यागने का उल्लेख है लेकिन सिहरन और आलिंगन के मनोहारी दृश्य तथा समागम की सुखद समाधि की कल्पना अद्भुत है और उसी के साथ जुड़ा यह आशा भाव भी– ''अब खड़ा होगा/संतति के स्वागत में/मनोरम दमीक घर।'' जाहिर है संतति संबंधि यह प्रेम भले ही साहित्य के लिए कोई बड़ी घटना न हो लेकिन एक बाधिन जिसके डुकरने से जंगल का मौन टूटता हो अगर वह बकरी के बच्चे को चुमकारे तथा उसे जीवन दान दे– ''अकस्मात लपकती जीभ बाहर उभरी/बाघिन के कुछ और संभावित किया की जगह/बच्चे को चुमकारा और झमकाती अपनी आँखें/एक छलांग में हुई दृश्य से

बाहर।'' (वही, पृष्ठ सं. 43)। तब उस प्रेम का आकलन किस रूप में होगा? कहीं ऐसा तो नहीं कि मंडलोई तुलसी की 'रहहिं एक संग गज पंचानन' वाला रामराज्यवादी दृष्टि से प्रेरित और प्रभावित है। यदि इसमें यत्किचित सत्यता हो तो अजा के बर्बर, नृशंस और असहिष्णु समाज के लिए यह एक बड़ा संदेश होगा। जाहिर है प्रेम की तरंगे हिंसक को अहिंसक, कठोर को कोमल और निर्दय को सदय बनाती है। जब संसार क्रूरता और नृशंसता के दौर से गुजर रहा हो, तब मानवेतर प्राणियों का यह प्रेम सृष्टि में सामंजस्य के साथ बहुत कुछ के बचे रहने के प्रति आश्वस्ति का भाव जगा सकता है। 'सिर्फ गिलहरी' कविता में मानव की निर्दयता का प्रमाण घोड़े की पीठ पर उमचतीं बेतों के खिलाफ चुप्पी के क्षणों में गिलहरी की सहानुभूति तथा प्रेम का बिम्बर अपने आप में एक बड़ा वक्तव्य है– ''सिर्फ गिलहरी थी जो घोड़े के घावों के आस–पास घूम रही थी।'' (वही, पृष्ठ सं. 50)। जिसे पढ़ना–समझना आज के मनुष्य के लिए बहुत जरूरी है।

पंडित माखन लाल चतुर्वेदी, भवानी प्रसाद मिश्र से लेकर लीलाधर मंडलोई तक और उसके पहले भी अनेक रचनाकारों की प्रेरणाभूमि सतपुड़ा है। मंडलोई के लिए यह अनुभव की पहली पाठशाला है– ''मेरा जीवन सतपुड़ा का ऋणी है। कविताओं में उससे बाहर भी। सतपुड़ा मेरे अनुभव की पहली पाठशाला है। इसमें जब भी लौटता हूँ कविता में नया हो उठता हूँ। मेरी ऐन्द्रिकता, रोमान और अध्यात्म सतपुड़ा के ही कारण है। सतपुड़ा के बाहर भी, वह बहुत हद तक सतपुड़ा है जब प्रकृति बोलती है तो सतपुड़ा ही दुःख सुख में बोलता है।'' इससे यह समझना कठिन नहीं है कि मंडलोई के काव्य संसार में प्रकृति और प्राकृतिकता की इतनी उपस्थिति क्यों है? तथा सहज रागात्मक संबंधों के उन्मेष की जमीन कहाँ है? और चिड़िया की देह की झुरझुरी तक को महसूस कर लेने की संवेदनीयता का स्रोत कहाँ है? वैसे तो मंडलोई के यहाँ भवानी भाई की 'सतपुड़ा के जंगल' सदृश कोई कविता नहीं है और न ही उसमें धँसने के लिए उस तरह का कोई आग्रह आह्वान फिर भी सतपुड़ा की बहुवर्णी आभा वाली कविताओं की कमी नहीं है। कई कविताओं में सतपुड़ा का वैभव विपुलता के साथ प्रकट हुआ है। आकाश में जब बादल उमड़ते–घुमड़ते है, हवाएँ जंगल में नाच करती हैं, पेड़–पौधे मस्ती में डोलते हैं और पक्षियों की आवाज का महारास चलता है तब कवि मन सतपुड़ा की घाटी की दिशा में उतरने के लिए उत्प्रेरित हो उठता है। उस समय बारिश की आमद उसे अप्सरा का बोध कराती है। झन–झन करती पेड़ों से उतरती वर्षा मल्हार गाती सी लगती है और इस तरह वह दिन कवि के लिए उत्सवता का प्रतीक बन जाता हैं– ''डूबा है उत्सव में यह दिन मेरा।' इतना ही नहीं उसका हृदय पुकार उठता है– 'पिउ–पिउ–पिउ। स्वाद के अनन्तिम शिखर पर' कविता में भी कवि सतपुड़ा के जंगल में है और आनंद के वे ही साजो–सामान–नृत्यांगना सी नृत्यलीन बारिश, पक्षियों का मृदुल गान और हवा की लतीफ संगत लेकिन इनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है इसमें। जैसे आकाश से संवादरत बाँस के अनेक प्रकार जिनका लचीलापन प्रेमिका की तरह बाहों में झूलने की आतुरता से होड़ लगता

हुआ, सफेद स्फटिक सा वंशलोचन और बाँस के कोमल कल्ले का माधुर्य। रेस्ट हाउस में कवि महुए का फूलरस और बाँस के कल्ले का आदिम स्वीट डिश खाता हुआ स्वाद के अनन्तिम शिखर पर पहुँचता है और उस समय उसे रस में भीगा माँ का आँचल याद हो आता है– ''रस के फूटते धरों से / भींग उठी थी आत्मा की अतल गहराई / मुझे याद आ रहा था माँ का रस में भींगता आँचल / (पचास कवितायें, नयी सदी के लिए चयन पृसं.64)।

इधर माँ पर कुछ बहुत अच्छी कवितायें प्रकाश में आयी है लेकिन उनके सरोकरों की दुनिया सीमित है। उनमें पारम्परिक ममत्व अधिक है जबकि मंडलोई की कविता में माँ के विभिन्न रूप है। कहीं अभाव–गरीबी से जूझती टकराती माँ का चित्र है तो कहीं बच्चों के पालन–पोषण की चिन्ता में हँसिया, कुदाल लिए संघर्ष करती माँ। कहीं विपन्नता की चोटी पर सम्मान के साथ खड़ी अपने बच्चों के लिए संभावनाओं के सपने देखने वाली माँ है तो कहीं जीवन के अंतिम क्षणों में गंगाजली पर आँखे टिकाये धर्म परायण माँ है। निराला के यहाँ पत्थर तोड़ने वाली युवती है तो मंडलोई के यहाँ अन्धेरी खानों में कोयला तोड़ने वाली माँ है– 'वे बचे खुचे दिनों में / रखे रहीं उस कुदाल को / जिससे तोड़ा उन्होंने कोयला / पच्चीस बरस तक काली अन्धेरी खानों में।'' (वही पृष्ठ 105)। गरीबी का आलम यह कि बच्चे मकान में जब बारिश उतरती है तब–''परिवार इस प्रार्थना में जुटा / कि मूसलाधार न हो रात में / अगर इतनी ही बनी रहे / कि टपटप...टन...झन...झन्ना। तो शुक्र ईश्वर का / अगर न हो रात में वह / टप...टपा....ठन्न....ठन...ठनाक....झन्न...झनाक / तो सो लेंगी बीमार माँ सुकून भरी नींद आज।''(वही, पृष्ठ 106)। इस कविता की खूबसूरती उसकी ध्वन्यात्मकता में है। छत से टपकती बूँदों की विभिन्न ध्वनियों की अनुकरण कला अनुपम है। इस कौशल के माध्यम से कवि यह अनुभव कराने में सफल है कि बूँदे किस बर्तन में टपक रही हैं– पीतल की परात, अधकटा कनस्तर, बाल्टी, दालचीनी का मग, जर्मन की डेगची, अथवा प्लास्टिक के डिब्बे में। इस तरह की ध्वन्यात्मकता छायावादी कवियों के यहाँ मिलती है।

मंडलोई की कविता में माँ का एक रूप शिक्षिका का है जो ''अक्सर बताती / कि पेड़ पौधों से प्रेम करो / उनमें मनुष्य सरीखा जीवन है।'' (वही, पृष्ठ 99)। लेकिन मौज में रहने वाली बाल–बुद्धि को सहज विश्वास नहीं होता तब उनका प्रैक्टिकल कराने का तरीका भी अजीबों गरीब– ''अचानक काट ली एक चुटी गाल पे / मैं जैसे चिहुँक उठा / प्यार से गाल को थपथपाकर फिर कहा / देखा जरा सी चुटकी से तुम्हें दर्द हुआ / ऐसा ही होता है पौधों के साथ / लेकिन वे तुम्हारी तरह बोल बता नहीं सकते / आओ और छुओ इस पौधे के पत्तियों को / मैंने डरते हुए छुआ पत्तियों को / और वे जैसे घबराकर बन्द हो गई तुरन्त / माँ की तरफ देखा मैंने अचम्भे से / कहा उसने 'यह छुई मुई है'। (वही पृष्ठ 100)। इसीलिए कवि की यह स्वीकारोक्ति निराधार नहीं है–''जंगल हमारी पाठशाला थी / जहाँ हम माँ के साथ होते / और प्रकृति को जानते / (वही) परम्परा और पीढ़ियों से आजमाये नुस्खों को सहेजने तथा प्रयोग करने वाली माँ का चित्र भी मंडलोई की कविता में है अरण्डी के छोटे से वृक्ष की

उपयोगिता आज की पीढ़ी को कहाँ मालूम है? वो तो माँ थी जो चिकित्सा से लेकर अन्धेरे के विरूद्ध प्रकाश रचाने तक उसका सैकड़ो उपयोग जानती थी– ''माँ कहती कि वह मनुष्य सेवा में निमग्न/एक दुर्लभ उदाहरण है दुनिया में/वह अब याद करती थी उसे/बिछड़े भाई की तरह/और ढूँढ़ती फिरती थी हर उस शहर में/जहाँ जहाँ मेरा तबादला हुआ। (वही पृष्ठ 102)। गूलर भी एक औषधीय पेड़ है। चोट लगने और खून बहने के स्थिति में गूलर की छाल कूट–पीस कर लगाने से खून बहना बंद हो जाता है, इसके बहाने कवि ने पिता को याद किया है–

''घाव पे लेप करते ही हुआ कोई चमत्कार
कि दौड़ पड़ी देह में एक ठंडक सी
और खून का बहना एकदम बंद
मैंने धन्यवाद में अपनी आँखें नत
और टिका के पीठ बैठ गया
याद आए पिता।'' काल बाँका–तिरछा, पृष्ठ 25)

मंडलोई की काव्य–प्रतिभा नवोन्मेषशालिनी है। लीक से अलग हटकर चलने में कवि को विश्वास है। इसीलिए पहली बार गौरेया, घरेलू मक्खी, बर्र, मोर, तीतर, तितली, गिरगिटान, चींटी, गिलहरी, कीट, परिन्दा तथा छुईमुई, अरण्डी, गूलर आदि किसी काव्य–चेतना के विषय बने है। राष्ट्रीय उद्यान कान्हा भी 'एक बूढ़े की पीठ' और झपकी मेरी भी आँखें आदि कविताओं में अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। इसमें यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि मंडलोई का प्रकृति और प्राकृतिक जीवन से कितना घनिष्ठ संबंध है? तथा उनके भीतर सृष्टि का विश्वबोध कितना गहरा है? उन्होंने स्वयं कहा है– ''प्रकृति के रहस्यों को जनना, उसे बचाने की कोशिश भी है जो कदाचित मेरी कविताएँ करती होंगी....गहरे प्रेम और वेदना से उपजी इन कविताओं में कवि के मन को अगर आप पढ़ सकें तो प्रकृति की सिम्त लौटने का विचार जरूर बनेगा। अगर ऐसा कुछ हो पाया तो इनकी कोई भूमिका होगी, अन्यथा ये भी खो जायेंगी जैसे सृष्टि से बहुत कुछ धीरे–धीरे खत्म होता जा रहा है।'' इसीलिए धरती से खत्म हो रहे पेड़ कवि की चिन्ता के विषय है– किशनगढ़ या पन्ना के अभयारण्य हों या अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूह को कोई भूभाग–'लपलपाती कुल्हड़ियाँ हैं हर तरफ। यह एक गंभीर समस्या है। इसका संबंध पशु–पक्षी और मानव सभी से है। पेड़ चाहते है कि वे बचे रहें ताकि बची रहे यह धरती किन्तु ''दिल्ली की बन्द आँखों में/नहीं होती कोई भी हरकत जब/पेड़ों से टकपते हैं हर आँसू/पहुँचते सीधे समुद्र की आत्मा तक।'' (पचास कवितायें–नयी सदी के लिए चयन, पृ.सं. 69)। समुद्र से उठकर वे आसमान में जाते हैं। बादल बनकर बरसते हैं ठूँठों पर ताकि कोई फुनगी फूटें और वह एक बार फिर कुल्हाड़ियों के खिलाफ खड़ी हो सकें, बर्बर मानव सभ्यता के विरूद्ध यह एक नवीन कल्पना और उत्कट आशावाद है।

पेड़–पौधे एवं वनस्पतियों की रक्षा के लिए कवि पाठकों को आदिवासियों की आस्था और विश्वास की दुनिया में ले जाता है। जहाँ डोंगी बनाने के लिए पेड़ काटने से पहले दुख प्रकट किया जाता है– ''दुःख में हैं हम सब और कचोट मन में/कि पेड़ तुम्हें काटना पड़ा/करते हुए कोमल पत्तों को जुदा।'' बात यही नहीं खत्म हुई। डोंगी बनकर तैयार हो जाने पर भी प्रसन्नता का कोई भाव नहीं– ''व्यथित के सबके सब तब भी।'' फिर उसके बाद समुद्र का विराट सीना चीरते हुए जब वे मछली और कछुओं का शिकार कर वापस लौटते हैं तो उसका पहला हिस्सा उस कटे बचे पेड़ को अर्पित करते हुए माफी माँगते है कि हमने तुम्हारा जीवन नष्ट किया। उनमें अपराध बोध इतना कि वे 'रखेंगे सदैव ध्यान कि रखें डोंगी/बचे पेड़ की उसी कटे हिस्से के पास/कि वह महसूस कर सके/जुदा अंग का अपने पास होना।'' (वही पृष्ठ सं. 72)। अद्‌भुत है– आदिवासी संसार/एक हम हैं कि अपने ही हाथों अपनी दुनिया उजाड़ने में लगे हैं। 'समुद्र की प्रार्थना' कविता में उन्हीं आदिवासियों की प्रार्थना है जिसमें वे समुद्र से नाव, झोपड़ी, आग जलाने तथा तीर–धनुष बनाने की लकड़ी की सलामती की कामना करते हैं। 'गूलर का नया अनुवाद' कविता में कवि को लगता है कि चिड़िया की बोली की मिठास का कारण गूलर का मीठा होना है–

''वह एक नीले पंखों वाली सुन्दरी
उसकी चोंचे गूलर के फल पे
शायद उसकी अद्‌भुत मिठास से मिलते ही
वह बोली इतनी मीठी बानी।'' (काल बाँका तिरछा पृ.23)

अण्डमान की दुर्लभ जनजाति ओंगी का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार समारोह है– तानागिरू। यह ओंगी के जवान सिद्ध होने पर आयोजित होता है। मंडलोई ने इसी शीर्षक से एक कविता लिखी है– ''और संस्कारों से एकदम अलग है तानागिरू/डुगांगक्रीक की सबसे बड़ी खबर है आज/कि अभी–अभी एक लड़का हुआ है जवान।'' (पचास कवितायें–नयी सदी के लिए चयन, पृ.सं. 57)। अपनी जवानी सिद्ध करने के लिए युवक को बीस दिनों तक रोज अकेले जंगल जाना होता है और वहाँ से नुकीले दाँतों वाला खतरनाक सुअर मारकर लाना होता है– ''उसके जीवन का अद्‌भुत समय है/कि होगा आरूढ़ शिकार के सीने पर/निकालता रक्त, जमाएगा खून के थक्के/और खाएगा आनन्द विभोर हो पहले–पहले।'' (वही पृ.56)। इससे ओंगी समुदाय प्रसन्न हो विश्वास कर लेता है कि उसका एक और रक्षक मिल गया।

अपने समय और समाज की अपेक्षा कर कोई भी रचनाकार महान नहीं हो सकता। उसे अपने कालखण्ड को कविता में जीना ही होता है। मंडलोई की कविताओं में उनका वर्तमान अनेक रूपों में उभरा है। वह यथार्थ का अंकन भर नहीं है बल्कि मानवता के लिए संदेश भी है। यह कार्य समकाल की इबारत पढ़े बिना संभव नहीं है। कवि दावे के साथ कहता है कि काले हरफों में लिखी इबारत या तो वह पढ़ सकता था या भारत सरकार। दूसरे

लोग पढ़ने में अक्षम क्यों है? इसलिए कि उनके पास प्रतिक्रिया का साहस नहीं है। यथास्थितिवादियों को सब कुछ यथावत दीखता है। परिवर्तन की कोई आकांक्षा नहीं, कोई संघर्ष नहीं। कविता क्रांति नहीं करती लेकिन उसकी भूमिका तैयार कर सकती है लेकिन यह तब होगा जब वह अपने वर्त्तमान को ओढ़े–बिछाये। मंडलोई की कविता में प्रकति और प्राकृतिकता है तो मनुष्य और उसकी समस्याएँ भी है। उसकी कविता में आदिम समाज का यह चित्र अपने आप बहुत कुछ कहता है– ''वहाँ सूरज का ताप था लेकिन बुझा / चिड़ियाँ थी परत और बेदम। पेड़ थे अपनी जगह और पहचान खोते / पूर्वजों के अक्स जंगलों में जगह–जगह लेकिन निर्जीव / तीर कमान थे अन्दर की अलगनी पर दम तोड़ते / दूर–दूर तक करिन्दों की गस्त थी / हाँफते–भागते आदिम जन / महुआ, ताड़ यहाँ तक औरतें कब्जे से बाहर।'' (वही पृष्ठ 85)। इस दशा के कारणों की पड़ताल कवि ने की है और पाया है कि ''मची है लूट चौतरफ / जंगल ही नहीं / समूची धरती इस दायरे में।'' इसे लूट कौन रहा है– बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, ठेकेदार और माफिया। इस भयावह, काले घुस्स समय में एक आम आदमी कैसा महसूस करता है इसे कवि के अनुभव से जोड़कर देखना बेमानी नहीं होगा– 'बकरी के जिबह होने से पहले की करूण चीख सा मैं।'' (वही पृष्ठ 80)। एक अनजान – अज्ञात छाया का भय बहुत कुछ मुक्ति बोध की कविता 'अन्धेरे में' की तरह। लगभग वही संशय और सन्नाटा। भाषा का स्थान संकेतों ने ले लिया है– ''भाषा में नहीं संकेतों में पुकारते हैं लोग की पुकारना मुश्किल।'' (वही पृष्ठ 80)। अचीन्हें दृश्य के इस अबूझ संसार में अलग–थलग पड़े कवि को लगता है– ''अब इस अन्धेरी सुरंग में हूँ अन्धकार बूझता।'' (वही पृष्ठ 81)। इसी अन्धेरे समय में अनन्त इच्छाएँ हैं जो अपनी जगह खोजती फिरती है।

बाजारवाद की काली छाया के असम्पृक्त नहीं हैं–मंडलोई की कविताएँ। बाजार का भीषण आक्रमण 'घर' पर हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ कि ''पहुँच से दूर हुआ घर की पकड़ से बाहर सब।'' (वही पृष्ठ 80)। जाहिर है–बाजार मात्र विनिमय की भाषा जानता है। उसके लिए संवेदनाओं का कोई महत्व नहीं होता। स्नेह, दया, सहानुभूति, नैतिकता आदि उसकी उपयोगिता की सूची में शामिल नहीं है। अर्थ बस अर्थ ही उसका ध्येय है और इसके लिए कोई भी मार्ग अनुचित नहीं है। धरती को धूसर, जंगल को वीरान तथा आकाश को लहूलुहान करने में भी कोई संकोच नहीं है। यहाँ तक कि गाय–भैंस भी उसकी संवेदनहीनता के शिकार है। 'आपको क्यूँ नहीं दीखता कविता इसका एक उदारहण है– ''कम दूध उतरने की स्थिति में ये क्रूर मालिक / घुसेड़ देते है छड़ी गर्भाशय में और / घुमाते है इस हद तक कि घनघोर पीड़ा हो / विश्वास है इनका कि इस मर्मान्तक क्रिया से / उतर आता है दूध थनों में मनवांछित।'' काल बाँका–तिरछा, पृ. 92)। इतना ही नहीं हारमोन के हमले और आक्जीटोसिन के निर्मम प्रयोग देख कवि श्वेत क्रांति के जनक डॉ. पी.जी. कूरियन से पूछता है कि क्या यह सब आपको दीखता है, और नहीं, तो क्यों नहीं?

''मुझे इन सबके पीछे हो रही बर्बरतायें
दीख पड़ती है एकदम साफ
समाने हो रही क्रूरताएँ,
हारमोन के हमले
आक्जीटोसीन के निर्मम प्रयोग
मैं पूछना चाहता हूँ डॉ. कूरियन
क्या आपको दीखता है यह सब
मुझे जो दीखता है, आपको क्यूँ नहीं दीखता डॉ. कूरियन?

(काल बाँका तिरछा, पृष्ठ 93)

आज यह युद्ध केवल हथियारों से नहीं लड़ा जा रहा है। शत्रु को परास्त करने के लिए उनकी भाषा, उसकी संस्कृति को नष्ट करने की साजिशें भी रची जा रही है। मंडलोई की कविताएँ इसका न केवल प्रतिकार करती है बल्कि इससे निपटने का उपाय भी सुझाती है। 'चीटियाँ' शीर्षक कविता में कवि अमेरिका के घुसे चले आने के प्रतिरोध के लिए चीटियों जैसी एकजुटता, परिश्रम और तत्परता का आह्वान करता है—''अनधिकार घुसने नहीं देती/किसी को अपने इलाकों में/कर सकती है चीटियाँ जैसा/कर सकते हैं हम भी/देखो अमरीका घुसा आ रहा है जबरन।'' (पचास कविताएँ—नयी सदी के लिए चयन, पृ. 28) 'मंत्र' कविता में कवि को इस बात का अफसोस है कि ''घिरे हुए हैं हम अनेक दुश्मनों से/और रक्षा नहीं कर पाते।'' इसका कारण यह है कि ''हमने मधुमक्खियों से सीखा नहीं मंत्र''। मंत्र क्या है—अभेद्य रक्षा कवच और डंक का सही तालमेल।

मानव—स्वभाव पर व्यंग्य की दृष्टि से दो कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं— 'कीट' और 'गिरगिटान'। भीख माँगने वाला मनुष्य कवि की नजर में कीड़े—मकोड़ों से भी गया गुजरा है। रंग बदलने वाले गिरगिट को भी शर्म आती है और वह इस बात का शुक्र मनाता है कि उसे मानव योनि नहीं मिली।

यद्यपि इस धरती पर बहुत कुछ अप्रत्याशित हो रहा है, बहुत कुछ मिट और सिमट रहा है फिर भी बहुत कुछ शेष है जिसे बचाया जाना चाहिए। मंडलोई कविताएँ सहज और सधी हुई भाषा में बचाव की प्रयत्नशीलता की उपज है। चुनौती भरी सदी के लिए ये एक सार्थक वक्तव्य है।

डॉ0 व्यास मणि त्रिपाठी, एन.जी. 22, टाइप—5, नयागाँव, चक्करगाँव, पोर्ट ब्लेयर, अण्डमान—744112
मो0 : 9434286189, ई—मेल : tripathivyasmani@gmail.com

✧ ✧ ✧

डॉ० राजेन्द्र मोहन भटनागर के साथ डॉ० गायत्री देवी की बातचीत

डॉ. राजेंद्र मोहन भटनागर हिन्दी के ख्यातिलब्ध साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को अपनी अद्‌भुत लेखनी से समृद्ध किया है। भटनागर जी के साहित्य में उपेक्षित और पीड़ित वर्ग के लिए संवेदनाओं का सागर उमड़ता है, जो जन–मन को उद्वेलित करता है। डॉ. अम्बेदकर के जीवन पर आधृत जीवनपरक इनकी उपन्यास 'युगपुरूष अम्बेदकर' ने हिन्दी साहित्य में अपरिमित ख्याति अर्जित की है।

डॉ. भटनागर जी को मीरा पुरस्कार, राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च पुरस्कार, विशिष्ट साहित्य पुरस्कार आदि कई प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित किया गया है। इनकी अनेक कृतियों का अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, उड़िया आदि भाषाओं में अनुवाद भी किया गया है, जो साहित्य प्रेमियों के लिए एक अमूल्य निधि है।

डॉ. गायत्री ने भटनागर जी से आत्मीय और सहज बातचीत की है। प्रस्तुत है वरिष्ठ साहित्यकार भटनागर जी का साक्षात्कार।

प्रश्न – 'दलित साहित्य' दलित और गैरदलित साहित्यकारों के बीच बंट–सा गया है। कई लेखक, समीक्षक दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को 'दलित साहित्य' मानते हैं, कई दलित और गैरदलित दोनों के द्वारा लिखे गये साहित्य को 'दलित साहित्य' मानते हैं। इस विषय पर आपका क्या कहना है?

भटनागर जी – साहित्य न दलित होता है न अदलित। लिखनेवाला दलित है या नहीं है इसका कोई अर्थ नहीं है। न जाति से दलित का कोई अर्थ निकलता है। रैदास, कबीर आदि बहुत सारे कवि हुए जो अपनी जाति के बल पर उपेक्षित नहीं हुए बल्कि अपने साहित्य के आधार पर पहचाने गए। उनका आज तक निरंतर सम्मान हो रहा है। यह कहना गैरजरूरी है कि दलित या स्त्री ही अपने बारे में बहुत गहराई से अपनी पीड़ा को व्यक्त कर सकते हैं। अगर स्त्री अपने को व्यक्त करती होती तो पुरूष उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार इत्यादि स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण लिख ही नहीं पाते, पीड़ा के बारे में जिन साहित्यकारों ने लिखा है उनमें स्त्रियाँ कम है, पुरुष अधिक है। साहित्य के लेखन में इस प्रकार का वर्गीकरण अनुचित है। क्योंकि संवेदना, उपेक्षित स्थिति, पीड़ा, अवरोध, कठिनाइयाँ इत्यादि भोक्ता से अधिक लिखते समय उन लोगों को जीनी पड़ती है जो इन संदर्भो को शब्दबद्ध कर रहे हैं। पुरुष ने कभी यह प्रश्न नहीं किया या उठाया कि पुरुष अपने बारे में ही केवल लिख सकता है। यह सब विभाजन भ्रान्तिदायक है, मायावी है। जो समाज को विकृत दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

डॉ. अम्बेडकर और उनकी पत्नी रमाजी पर जिस ढंग से मैंने लिखा है' युगपुरुष अम्बेडकर' में उसके संबंध में यह अवधारणा बनी है कि ''अम्बेडकर स्वयं भी अपने बारे में लिखते या दलित जाति के लोगों ने अम्बेडकर के बारे में जो कुछ लिखा वह साहित्यिक दृष्टिकोण से उतना सशक्त नहीं है जितना मेरा'' (धर्मयुग पत्रिका), मेरे उपन्यास 'कुली बैरिस्टर' को अनेक कारणों से गाँधी की आत्मकथा में जो गाँधी नहीं कह सके वो मैंने कहा है। इसीलिए मुझे जनसत्ता पत्रिका में काया प्रवेश करने में समीक्षकों ने दक्ष सिद्ध किया है। मेरे उपन्यास 'रूठी जिन्ना' और 'महाबानो', 'सन्नो', 'परिधि' इत्यादि स्त्री विषयक उपन्यासों को आलोचकों ने स्त्री के मर्म तक पहुँचने वाला सिद्ध किया है।

आजकल साहित्य को भी राजनैतिक दृष्टि से देखा जाने लगा है जबकि साहित्य वर्तमान और अनागत् दोनों का दृष्टा और चेता है। अंत में इस संबंध में मेरी धारणा यह है कि इस प्रकार का विभाजन साहित्य को लेकर करना साहित्य की गरिमा को क्षति पहुँचाता है।

प्रश्न – दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर प्रश्न चिन्ह क्यों लगाए जा रहे हैं?

भटनागर जी – दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर जिन लोगों ने लिखा है, उन लोगों को यह एहसास हुआ है कि मूर्धन्य लेखक उनके लिखे साहित्य को वह स्थान नहीं देते जो उनको मिलना चाहिए। गायत्री जी यहाँ तक कि वह उनके उन ग्रंथों का उल्लेख करना भी उचित नहीं समझते। मेरी मान्यता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिंबाले ने

वास्तव में इस उपेक्षा का सटीक उत्तर दिया है। जो सवर्ण जाति की राजनीति की ओर संकेत करते हैं। ऐसा नहीं है कि दलित व्यक्ति साहित्य का सर्जन उच्चकोटि का नहीं कर सकता हो, वाल्मीकि जी इसके उदाहरण है। कवि रैदास भी इसका उदाहरण है। उनका नामोल्लेख भी उन ग्रंथों (भक्तमाल) में श्रद्धाभाव से लिया गया है और ससम्मान उनके साहित्य को प्रतिष्ठा प्रदान की है। कवि किस जाति का था यह विवादास्पद है परन्तु इसमें कोई दो राहें नहीं है कि कबीर ने सीना तानकर बनारस जैसे धर्मस्थल पर, जो कम से कम सवर्ण जाति का केन्द्र है यह कहा कि जन्म तो सबका एक ही स्थान से हुआ है यह जाति कहाँ से आ गई– कौन छोटा, कौन बड़ा, कौन साधु, कौन असाधु के प्रश्न उठाये और उन लोगों का मुँह बन्द कर दिया जो धर्म–जाति के नाम पर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध कर रहे थे। यह कहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है कि दलित वर्ग के साहित्यकारों ने अपनी पीड़ा को व्यक्त करने में और उन कारणों का विश्लेषण करने में कोई कोताई नहीं बर्ती है। वह सर्वमान्य साहित्य है। उसका भी आदर यदि मूर्धन्य आलोचक करते, तो यह प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न – क्या दलित साहित्यकारों द्वारा यथार्थ की अभिव्यक्ति हो रही है या फिर दूध में पानी मिला हुआ है? इस विषय में आपका क्या कहना है?

भटनागर जी – मैं यह कहना चाहूँगा कि दूध में पानी तो होता ही है, उसमें मिलावट की कोई आवश्यकता नहीं है। मिलावटी दूध तो वह होता है जो अन्य तरीकों (कैमीकल) से निर्मित होता है। यह प्रश्न भी उसी प्रकार से दुविधाजनक है। क्योंकि दलित भी साहित्यकार ही है। जब कोई व्यक्ति साहित्यकार बन जाता है तब दलित, अदलित का प्रश्न ही नहीं रहता क्योंकि अंर्तवेदना ही उनकी प्रेरणा का केन्द्र बिन्दु होता है। साहित्य संवेदनाओं का संग्रह है। महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, निराला आदि श्रेष्ठ साहित्यकारों का जन्म पीड़ा से ही माना जाता है। साहित्यकार अपने में स्त्री–पुरुष दोनों को नारीश्वर के रूप में स्थापित करता है। जब कोई साहित्यकार लिखता है, मैं अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि जब मैं स्त्री–पक्ष को सामने लाने का प्रयत्न करता हूँ तब मैं उन्हीं उपेक्षाओं, विषमताओं, कष्टों से अपने आप को गुजरता अनुभव करता हूँ।

प्रश्न – सर, वर्तमान में दलितों की दशा–दिशा क्या है?

भटनागर जी – वर्तमान में दलितों के प्रति यदि सत्तर वर्ष के भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास को सामने रखकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते हो तो वह निष्कर्ष ये है कि, दलितों ने भी सरकार या अन्य साधन–सुविधाओं से जिस उच्च स्थान को प्राप्त किया है वहाँ से अपने ही वर्ग को, अपने से दूर रखा है। गायत्री जी ऐसे अनुभवों से मैं गुजरा हूँ जिसमें दलित ने दलित को स्वीकार नहीं किया है। छोटा–सा उदाहरण यह है कि– दलितवर्ग के स्वनामधन्य साहित्यकार या अन्य ने आगे आकर दलितों की कोई सेवा नहीं की है। इसका स्पष्ट उदाहरण–मायावती हैं जिन्होंने अपार माया इकट्ठी करने के बाद भी जब उन पर आरोप लगाए जा रहे हैं कि ये माया कहाँ से आई तो उनका उत्तर अपने बचाव के लिए यह होता

है– कि उच्च जाति वाले उसके दलित होने के कारण इस प्रकार की आपतियाँ उठाकर उनके व्यक्तित्व को क्षति पहुँचाना चाहते है। ऐसे अनेक उदाहरण है जिनका नामोल्लेख ना करते हुए यह कहना ही पर्याप्त है– दलित, दलित से दूर रहना चाहता है और अधिकांश उच्च जाति को अपना जीवनसंगिनी बनाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

प्रश्न – सर, सदियों से वर्तमान तक दलितों की दयनीय स्थिति के लिए कौन जवाबदार है? क्या इसके पीछे भी कोई राजनीति की जा रही है?

भटनागर जी – सदियों से वे सब दलित हैं जो उच्च वर्ग के लिए उपयुक्त नहीं है। जितने भी चर्मकार है वो सब बौद्ध थे। जब ब्राह्मणों का बहुत्व स्थापित हुआ तब जिन के पास हर प्रकार की सुविधाएँ थी और धन था वे भारत छोड़कर दूसरे देशों में चले गए और जो बौद्ध आर्थिक रूप से कमजोर थे, वे भारत वर्ष में रह गए, उनकों उच्चवर्ग ने अपने से दूर खदेड़ दिया और उस वर्ग को सुविधाओं से वंचित कर दिया जो कि, आम व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। आर्थिक रूप से जो विपन्न है, वह उच्च जाति में भी दलित की पीड़ा भोग रहें हैं। आज का युग धन और बुद्धि केन्द्रित है। वे ही लोग लाभ प्राप्ति के हकदार सिद्ध हो रहे हैं। इस प्रकार से हम हड़प्पा मोहनजोदड़ो और मौर्यवंश, नंदवंश इत्यादि को लेकर आज–तक की इस वर्ग की स्थिति पर विचार करे, तो स्पष्ट हो जायेगा कि नंदवंश का संस्थापक महापद्–मनंद दलितवर्ग से था और उसका बलशाली साम्राज्य इतना समृद्ध और फैला हुआ था कि उसके वंश के अंतिम सम्राट धनानंद की तरफ सिकन्दर जैसा महासम्राट भी नहीं देख सका। मैंने 'चुनौती' पुस्तक लोकतांत्रिक मूल्य और आपातकाल को लेकर लिखी थी। उप प्रधानमंत्री जगजीवनराम ने उसकी भूमिका लिखी थी। उसके संबंध में मैंने उन्हें पुनः लिख दिया था कि रेखांकित स्थल एस. टी. और एस.सी. को पुर्नविचार करने के लिए अनिवार्य है। मेरा सुझाव था यदि एस. सी., एस.टी. और अन्य पिछड़ा वह वर्ग जो साधन–सम्पन्न होता जा रहा है, वह उन सुविधाओं को लेने से इनकार कर दे। प्रश्न आत्मसम्मान का भी है कि वह ये सभी सुविधाएँ प्राप्त करते हुए अपने को गौरवान्वित समझ रहा है और उच्चवर्ग के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त कर रहा है। वह समय कब आएगा जब एस.टी., एस.सी. और अन्य पिछड़ा वर्ग सभी सामान्य स्थिति में पहुँच जायेंगें। कभी तो यह समाज समान स्तर को अनुभव करने के प्रति जागरूक होगा। सरकार ने ही नहीं कुछ वर्ग ने भी इन लोगों का आदर किया है और सुविधाएँ भी पहुँचायी है। अम्बेडकर इसके उदाहरण हैं। महाराजा बड़ौदा ने उनको बहुत सम्मान दिया उनके पढ़ने के आर्थिक बोझ को वहन किया। आज आरक्षण पाने के लिए गुर्जर जैसी जातियाँ भी इस अभियान को पुरजोर छेड़े हुए है कि उनको भी आरक्षण मिलना चाहिए। मैंने एक भिन्न लेख में यह कहा था कि बेहतर हो सारे देश को ही आरक्षण सीमा के अंर्तगत ले लिया जाय इसके बिना कोई उपाय दूर–दूर तक दिखाई नहीं देता। उपेक्षा झेलते हुए उन लोगों को मुक्ति मिल सकेगी जिनको आरक्षण के अंर्तगत रेखांकित किया है।

प्रश्न – संवैधानिक संरक्षण के बावजूद भी आज दलितों पर अत्याचार जारी है। इस पर आपकी क्या राय है, आपके विचार से इसे कैसे रोका जा सकता है?

भटनागर जी – संविधान में दी गई व्यवस्था के उपरान्त भी आज ढ़ाई वर्ष की बच्ची से लेकर नब्बे वर्ष की वृद्ध वृद्धा तक बलात्कार की पीड़ा भोग रही है। क्या वह पीड़ा दलितों से कमतर है? क्या उस पीड़ा में हरेक वर्ग और जाति की बच्चियाँ, महिलाएँ सम्मिलित नहीं हैं? उनकी अस्मिता पर आक्रमण किया जा रहा है और सरेआम सामूहिक बलात्कार हो रहे हैं यह चिंता गहरी है कि दलितवर्ग को लेकर संविधान में जो व्यवस्था की गई उसके बावजूद भी वह वर्ग उसका लाभ नहीं उठा सका। कम से कम दलित वर्ग के नुमाइन्दों को इस ओर ध्यान देना क्या आवश्यक नहीं था? क्या इनके पिछड़ेपन, अशिक्षित होने और गरीब होने के कारण दूर करने के लिए, इस वर्ग को उन सब लाभों से युक्तकर बलशाली नहीं बनाया जा सकता था? क्या इस वर्ग के मनीषियों और कुछ सामाजिकों का यह दायित्व नहीं था? आज भी ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जिनको आज तक नहीं पहचाना जा सका क्योंकि किसी एक प्रांत में दलित है, दूसरे प्रांत में अदलित। इस प्रकार का वर्गीकरण जो किया गया था, इस पर भी कई प्रश्न चिन्ह अनेक बार लगाए गए थे। आवश्यकता इस बात की है कि एक प्रभुत्व समाज का उदय हो जो लगभग जीने की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम हो और अपने को हीन भावनाओं से मुक्त रख सके।

प्रश्न – सर, मैंने हिन्दी में प्रकाशित दलित लेखकों की आत्मकथाओं का अध्ययन किया है। यह मेरे शोध का भी विषय रहा हैं। आप दलित लेखकों के आत्मकथाओं को कहाँ तक सार्थक मानते हैं?

भटनागर जी – वे आत्मकथाएँ विधा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं परंतु विधा से आगे उनका आत्मप्रकाश कहाँ तक विचारणीय है, इस पर समालोचकों की राय अलग–अलग है। दलित लेखकों को आलोचकों से यह शिकायत रही है कि उन्होंने उनके प्रति यथोचित ध्यान नहीं दिया है। अनेक समालोचकों ने उनकी आत्मकथाओं का नामोल्लेख भी नहीं किया है। यदि किया भी है तो, नकारात्मक ढंग से परंतु मैं इसे इतना महत्व नहीं देता। वर्तमान में अनेक पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से भी आत्मकथाओं की चर्चा हो रही है। सोचना यह है कि उन्हें आत्मकथा लिखने की जरूरत क्यों पड़ी? क्या वास्तव में उनका जीवन अन्य के लिए इतना प्रेरक है कि दूसरे उनके पथानुरागी बन सके। कई पत्रिकाओं ने भी उनकी रचनाओं को विशेष स्थान दिया है। मेरा विनम्र आग्रह है कि उन्हें सब्र से काम लेना चाहिए। श्रेष्ठ साहित्य स्वतः सामने आ जाता है।

डॉ. अम्बेडकर जी दलितों के मसीहा रहे हैं। आपने डॉ. अम्बेडकर जी को केन्द्र में रखकर 'युगपुरुष अम्बेडकर', 'डॉ. अम्बेडकर चिन्तन और विचार', 'डॉ. अम्बेडकर जीवन मर्म' आदि पुस्तकें लिखी है। इस विषय पर आपके क्या विचार हैं?

मैं डॉ. अम्बेडकर को माध्यम बनाकर जो कुछ संवाद करना चाहता था या करने की स्थितियाँ पैदा करना चाहता था उसके पीछे मेरा मन तब भी यही था, क्या वास्तव में अपने आप को अम्बेडकरवादी कहने वाले, अपने आपको किसी सीमा या किसी स्तर तक, यह सिद्ध

कर सके है कि अम्बेडकर उनकी पहचान के नजदीक भी थे? मैंने अम्बेडकर को जीया है और अनेक मंचों से यह बात दोहराई है कि अम्बेडकरवादी नहीं बनों क्योंकि अनुकरण अपनी अस्मिता के व्यवहार को मुक्त होने से रोकता है और बनो तो ऐसे बनों कि तुम्हें और तुम्हारे कार्यो को देखकर अम्बेडकर का अनुभव होने लगे। जैसे गाँधीवादियों ने गाँधी को बहिष्कृत कर दिया। ठीक उसी तरह से अम्बेडकरवादियों ने अम्बेडकर को नारों से अधिक सम्मान नहीं दिया। अम्बेडकर ने स्वयं अकेले व्यक्ति होकर दुनिया की आँखें खोल दी और इस विश्वास को जन्म दिया कि, व्यक्ति अपने को ऊँचाइयों तक ले जाना चाहे और अपनी प्रतिभा के सूर्योदय से संसार को आलोकित करना चाहे तो यह जरूरी है कि अपने पिछड़ेपन और उपेक्षाओं के लिए कोई भी हिमालय बाधक नहीं बन सकता है, ना समुन्द्र रास्ता रोक सकता है। यदि उसने अपने मन में यह ठान लिया हो कि वह मानवसमुदाय का रक्षक बनकर ऐसी दृष्टि प्रदान करेगा जिससे आलोक भी उसे श्रद्धा अनवत् होकर प्रणाम करने में गौरवांवित हो सकेगा। कष्ट तब होता है जब अम्बेडकर को जाति के घेरे में लाया जाता है और अपनी आत्मकथाओं के द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि उनका संघर्ष किसी से कम नहीं, आश्चर्य तो यह है कि अम्बेडकर ने ये संकल्प लिया था कि वह पैदा तो हिन्दू धर्म में हुए है वहाँ उनका कोई बस नहीं था, लेकिन मरेंगे उस धर्म में नहीं। इसीलिए उन्होंने उपेक्षितों को आमंत्रित किया था कि तुम चुटकी बजाते ही विषमताओं के अंधकार, काल–कोठरियों से मुक्त होकर उस समान स्तर को अनुभव करने लगोगे जिसमें रहकर व्यक्ति अपने आपको गौरवान्वित समझ रहा है। मैं अंत में यही कहना चाहूँगा कि जिस प्रकार से अम्बेडकर दलित वर्ग से बौद्ध होकर अपने को अलग कर सके उसी तरह से मितव्ययता और निष्ठा को चरित्र का उदाहरण बनाकर अपने को दलित पहचान से मुक्त करे और नए समाज की स्थापना में सहयोगी बने। मैं उन्हें बौद्ध बनने के लिए नहीं कह रहा, मैं उनको दलित संन्यास से मुक्त होने की दिशा प्रदान करने के लिए प्रेरणा देना चाहता हूँ। मुझे बड़ी खुशी होगी यदि दलित उच्च भावनाओं से अनुप्रेरित होकर नये समाज को बनाने की दिशा में अग्रगणी हो और सारे मानव समाज का नेतृत्व कर सके, यह तभी संभव है जब वह अपने आपको संकीर्णताओं के घेरे से बिना किसी सहायता के आत्मबल और चरित्रबल से अपने प्रभामंडल को दूसरों के आलोक का कारण बना सके।

डॉ. गायत्री देवी जे. लालवानी, सम्प्रति :– अध्यापक सहायक, हिन्दी विभाग
श्री कृष्ण प्रणामी आट्र्स कालेज, दाहोद, सम्पर्क : सी–3 पशुपतिनाथनगर, सेन्ट मेरी स्कूल के पास, गोदीरोड, दाहोद– 389151, गुजरात, चलभाष : 7984498390

✧ ✧ ✧

हिन्दी साहित्य में महिलाएँ

सुधा गोयल

भाषा और शिल्प का संबंध नाभि नाल वाला है। बिम्ब और शब्द चयन, टोन और डीक्शन, सबकी अलग ठसक और ठाठ। कहाँ–कहाँ से शब्द और संदर्भ ले आती हैं निकाल कर–देवदार की पेटी जैसे पुराने बर्तन, अजब गजब लोकोक्तियाँ, लोरियां और लोकगीत। भाषा की दीवार पर हाथों की मटियारी थपकन से सपनों और जातीय स्मृतियों का अहिवात लिखती है स्त्रियों की भाषा। स्त्रियाँ न हों तो भाषा की अनुगूंजें ही गायब हो जाएँ।

आजकल औरतें लिख रही हैं अपने अनकहे दर्द की कथाएँ। जिसे अकेले ही झेलती रहीं। ओंठों ही ओंठो में सिसकती रहीं। आँसू पलकों में ठहरा लिये। जख्म अपने सहला लिये। बेखौफ सी वे अब उन दर्दों को उघाड़ रही हैं। अपनी यातना की कहानी सुना रही है। देह के अत्याचार। मानसिक बलात्कार। घर के नाम पर यातना गृह। पूरी जिंदगी झेलती नफरत। कुछ पल भर सुकून के चुरा नहीं पायीं। सदा गरियाती और लतियाती रहीं। चरित्रवान कभी नहीं रहीं। शक के दायरों में रहीं। उनकी देह को कोई भी अपनी निगाहों से निरावरण करता रहा। देह–देह नहीं माटी की पुतली रही। कुछ औरतें ढ़ाल रहीं हैं दर्द भरे शब्द। अब वे आँसू पीकर जीना नहीं चाहती। औरतें सब जानती है। गाँव या शहर की। सुना रहीं हैं अपनी अनकही कथाएँ।

अपनी बात सामने रखने के लिए ये चंद शब्द ही काफी नहीं हैं। कथाओं की बड़ी दीदी या मंझली दीदी हो या हिंदी उपन्यासों की भोली भाली, अल्हड़ छुटकी बहन – भाइयों को जैसे अपना आँचल उढाए रखती है– स्त्री साहित्य में एक झीने से दुकुल कवच को स्त्रियों की भाषा शैली उढ़ाए रखती है।

विषय तो वहीं आठ दस हैं। मातृत्व, बहनापा, विस्थापन, घर, बच्चे, प्रेम और मृत्यु। ब्रीदिंग स्पेस और पर्यावरणगत तादात्म्य, वर्ण, वर्ग लिंग–नस्लगत शोषण से मुक्त एक समतावादी समाज वगैरह पर बात कहने की शैली निराली है। पदानुक्रम मुक्त जिस प्रजातांत्रिक मॉडल का सपना स्त्री साहित्य जगाता है, स्त्री भाषा वही मॉडल प्रतिबिंबित करती है। उस भाषा में फटकार नहीं है, समंजन है, संवाद की प्यास है, संवाद अपने से अपनों को।

स्त्री देह और स्त्री मन की विविध परतें जो भुजपत्रों की तरह एक–दूसरे से चिपकी पड़ी है– धीरे–धीरे पढ़ सुनकर स्त्री लैंस से संस्कृति, इतिहास और परिवार, फाँसी वाली युद्ध और दंगे, पर्यावरण, भूमंडलीकरण विश्लेषित होते हैं। जाहिर होती है परिजन – पुरजन – पंचायत – जंगल तक से स्त्री की साधारण रिश्तेदारी, जेंडर टाइप पर प्रहार सम्भव होता है। मन में यह बात बड़ी स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन और व्यैक्तिक जीवन में जो भी विसंगतियाँ हैं उनकी मूलभूत कारण मेल प्रिंसिपल और फीमेल प्रींसिपल,बुद्धि तत्त्व और ह्रदय तत्त्व तक, न्याय और करुणा के बीच का असमंजस है।

भाषा और शिल्प का संबंध नाभि नाल वाला है। बिम्ब और शब्द चयन, टोन और डीक्शन, सबकी अलग ठसक और ठाठ। कहाँ–कहाँ से शब्द और संदर्भ लें आती हैं निकाल कर–देवदार की पेटी जैसे पुराने बर्तन, अजब गजब लोकोक्तियाँ, लोरियाँ और लोकगीत। भाषा की दीवार पर हाथों की मटियारी थपकन से सपनों और जातीय स्मृतियों का अहिवात लिखती है स्त्रियों की भाषा। स्त्रियाँ न हों तो भाषा की अनुगूंजें ही गायब हो जाएँ।

अकारण ही नहीं है कि भाषा के साथ 'मातृ' का प्रयोग उसे एक अलग तरह की ताकत देता है। शिशु की तरह अपनी जंघा पर अलट पलट कर भाषा की तेल मालिश ये करती है। कंधे पर हाथ रखकर घरेलू बिम्बों में सहज ढंग से कोई डेमोक्रेट ही बतिया सकता है। इससे यह सहज ही प्रमाणित होता है कि स्त्री दृष्टि एक डेमोक्रेटिक दृष्टि है और आज के ग्लोबल आंतक विह्वल समाज को प्रजातांत्रिक दृष्टि और प्रजातंत्र की जरूरत स्वंयसिद्धा है।

औरतें काम करते–करते भी गा–बतिया सकती हैं। वे एक साथ रहकर काम कर सकती है। एक साथ बहुत तरह के काम कर सकती है। दुनिया के हर देश का ऊर्जस्वी लोक साहित्य और अब तो शिष्ट साहित्य भी साथ–साथ कपड़े धोती, पालने डुलाती, धान कूटती, चक्की चलाती औरतों का अवदान है।

मैं बता रही थी कि स्त्रियों को एक साथ कई काम करने पड़ते हैं। पाँचों इंद्रियाँ एक साथ सजग हो जाती हैं। लेखन में भी जीवन में भी। पाँचों इंद्रियों के एक साथ सजग रहने की तकनीक भी स्री दृष्टि का बहुत बड़ा अवदान है जो उसके चिंतन को एकांगी नहीं बनने देता। दूसरों के पक्ष में सोचने की तकनीक उनमें विकसित करता है। दुनिया को आज इस तकनीक कुछ बेहद जरुरत है।

अंतरिक्ष से झाडू तक, युद्ध और दंगों की दहशत से बिस्तर तक की दहशत तक, पंचायत से यू.एन.ओ. की विसंगतियों तक फैले इस द्वंद्व विह्वल संसार में समस्त द्वतों के बीच क्रोशिया की सुई वाली फुर्तीली वाली बेचैनी में औरत कलम चला रही है तो इस ब्रहत्मना दृष्टि के एहसास के साथ कि उनका घर और परिवार रक्त और यौन संबंधों के दायरे तक ही सीमित नहीं है। परिजन, पुरजन, पंचायत, पहाड़, जंगल, पर्यावरण, इहलोक, परलोक, परम्परा, संस्कृति, पूर्व–पश्चिम तक की रिश्तेदारियाँ निभा रही हैं। बिना दीवारों के इस घर में नये तरह का परिवार विकसित किया है।

पहले जब स्त्रियाँ कलम उठातीं थीं, उनमें होता था– 'पुअर लिजा काम्प्लेक्स' बेचारी दुःख की मारी वाला भाव या दब दबकर कुछ कहने वाला 'गुड गर्ल सिंड्रोम'। आधुनिक महिला लेखन आत्मविश्लेषणात्मक है और उसमें मैं कि विस्तार इतना बढ़ गया है कि सारी दुनिया समा गई है। अब जब भी स्त्रियाँ कलम उठाती हैं खुद से अकेले रु–ब–रु होकर तो

जन्य अवसाद का स्वरुप भी कुछ तो जरुर बदला है। भाषा के तेवर भी बदले हैं। वह अधिक दोस्ताना और अनौपचारिक हुई है। गरीब और साधनहीन स्त्रियों का स्वरुप एकदम नये नये संदर्भों में उजागर हुआ है। इनका संसार घर गृहस्थी तक सिमटा नहीं है। पति और बच्चे इनके जीवन के केंद्रिय आधार हैं भी तो तभी तक जब तक वे उन्हें एक प्रजातांत्रिक स्पेस देतीं हैं और सबसे अच्छी बात है कि वे रहती भी हैं दीवारों के घर में। भाषा ही उनकी एकमात्र पुख्ता से छत है जहाँ से कोई उन्हें कोई 'गेट आउट' कहने की सोच भी नहीं सकता।

पूछतीं है कि प्रेमगली की तरह मेरी अस्मिता इतनी संकरी तो नहीं हुई जाती कि जामें दुई न समाहि।

स्त्री दृष्टि की एक और खास बात उनकी बचाव वृत्ति है। स्त्रियाँ न रहने वाली जगहों पर कहीं नहीं जातीं। साहित्य का भविष्य लेकर चिंतित रहने वाले आश्वस्त रहें कि साहित्य का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं। हजारों की तादाद में स्त्रियाँ यहाँ बसने आ गई हैं। यों कहें कि स्त्रियाँ न रहने वाली जगहें भी अपने दम पर रहने लायक बना लेती हैं। पूर्वाग्रहों के पत्थर टूटते हैं , मिथकों की जटाएँ सुलझती हैं।

विषम से विषम स्थिति में भी सपनाना नहीं तोड़तीं और न छोड़तीं हैं खुटुर पुटुर एक नया जीवन गढ़ने की, साहित्य से जिसका गहरा सरोकार है। अफ्रीकी साहित्य की तरह भारतीय स्त्री लेखन भी वैयक्तिक विछोहों और त्रासों को घर, संस्कृति और भाषिक विछोहों से जोड़कर देखता है और इतिहास के नये मोड़ पर एक नया नैतिक भूगोल खड़ा करता है जहाँ

स्थान–बोधकाल–बोध से चिपटा है। दूसरी तरह कहें तो साहित्य और अपनी बोली ही स्त्री का अपना घर है। सिर के ऊपर की एकमात्र छत, जहाँ से धक्के मारकर निकाल पाना अब किसी तरह सम्भव नहीं दिखता।

जिनका जीवन किसी कारण पटरी से उतर गया है प्रायः आज वे ही साहित्य की नायिकाएँ हैं। कितनी अनकही कहानियाँ हमारे आस पास घुमड़ रही है पर खेत खलिहानों, छोटी फैक्ट्रियों और वैश्यालयों में दिन–रात ढिबरी–सी धुंआती हुई जल रही जो स्त्रियाँ हैं उनकी अस्मिता भी कुछ हद तक प्रतिनिधित्व पा रही है।

महिला कथाकारों के कलात्मक वितान में स्त्री पुरुष संबंधों के असमंजस जन्य अवसाद का स्वरुप भी कुछ तो जरुर बदला है। भाषा के तेवर भी बदले हैं। वह अधिक दोस्ताना और अनौपचारिक हुई है। गरीब और साधनहीन स्त्रियों का स्वरुप एकदम नये–नये संदर्भों में उजागर हुआ है। इनका संसार घर गृहस्थी तक सिमटा नहीं है। पति और बच्चे इनके जीवन के केंद्रिय आधार हैं भी तो तभी तक जब तक वे उन्हें एक प्रजातांत्रिक स्पेस देतीं हैं। और सबसे अच्छी बात है कि वे रहती भी हैं दीवारों के घर में। भाषा ही उनकी एकमात्र पुख्ता से छत है जहाँ से कोई उन्हें कोई 'गेट आउट' कहने की सोच भी नहीं सकता।

स्मृति के पटचित्र को पढ़कर कथा में गढ़ने वाली लेखिका एक ही समय में पाठक भी होती है और लेखिका भी। वह उस स्पेस को पढ़ती है, गढ़ती है और जीती है जो बाहरी दुनिया की गूंज से छनकर उसके अंदर बसा होता है। इसमें कोई शक नहीं कि लिखने की प्रेरणा हमारे अंदर की किसी गुप्त अन्तर्दर्शी जगह से आती है। अंदर एक संसार बसा है–उसमें कितना कुछ अशांत और भ्रमित करने वाला है।

आज का समय चिंता का विषय है। संकटकाल–जिसमें मानव मूल्य तेजी से ओझल हो रहे हैं। इसलिए कला में और पूरे सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिरोध एक भीषण प्रासंगिकता ग्रहण कर लेता है। फिर भी विगत दो साल जब कोविड के नाम रहे। सारा विश्व ही ठिठक गया। कलम तब भी नहीं रुकीं। महिला लेखन उस त्रासदी को भोगता वेव कथाओं के रूप में सामने आया। वक्त कोई भी हो, पीड़ा का उद्भव कहीं से भी हो जाता है और चेतना राष्ट्रीय ही नहीं विश्व व्यापी हो जाती है।

सुधा गोयल, 290–ए, कृष्णा नगर, डॉ. दत्ता लेन, बुलंद शहर–203001
मो. : 9917869962, ई–मेल : sudhagoyal0404@gmail.com

✧ ✧ ✧

राहुल सांकृत्यायनः – साहित्य का महापण्डित

शंकर लाल माहेश्वरी

देशभक्त सांकृत्यायन को लोग गरीबों का मसीहा कहा करते थे। किसान और मजदूरों के हित के लिए 1938 से 1944 तक निरन्तर आन्दोलनों में भाग लेते रहे तथा श्रमिक संगठनों का नेतृत्व भी किया। कई बार भूख हड़ताले की। सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय रहने के कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। सन् 1940 से 1942 में निरन्तर जेल की यातनाएँ सहन करते हुए मजदूर और किसानों के सहयोगी बने रहे। इन्ही दिनों कम्यूनिस्ट पार्टी के भी आप सदस्य बने। जेल से मुक्त होने के बाद भी आपने सोवियत रूस और चीन व लंका की यात्रा की। सन् 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन में भी आपने अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया।

आषाढ़ी अमावस्या की बरसाती बयार जब विश्राम की शीतल छाया में जगत शिशु को सुला देती है, और अपने रहस्यमय मोहक कुहुकजाल में तमसाछन्न भैरव गगन को निष्पंद कर देती हैं तब इस सुनसान निस्तब्ध नीरव निशा में भारत की नारी अपने श्रद्धा दीपकों को सुकुमार आंचल में छुपाये तटिनी के तट पर पहुँचती हैं और चुपके से उसकी लहरों पर एक एक दीप प्रवाहित करते हुए प्रार्थना करती हैं। हे अदृश्य देव इस भयावही निशा में भटके बटोही को प्रकाश देना देवी भगवती ने ममतामयी माँ कुलवन्ती देवी की मनोकामना पूर्ण कर साहित्य शिल्पी महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को 09 अप्रैल, 1893 को अपने ननिहाल पंदपा जिला आजमगढ में जन्म दिया। बाद में पिता गोवर्धन पाण्डेय की छाया तले कनैला (आजमगढ़) उत्तरप्रदेश में अपना जीवन परिपोषित कर धन्य हुए।

बचपन का नाम केदारनाथ था, प्रारम्भ ही से अपने फूफा के संरक्षण में रहकर सारस्वत व्याकरण का गहन अध्ययन किया। यात्राओं का बड़ा शौक होने के कारण वह रेल द्वारा बनारस आया और इन्हें साहसिक यात्राएँ करने का निरन्तर अवसर मिलता रहा। बालक केदारनाथ जब तीसरी कक्षा में थे तभी उन्होंने उर्दू भाषा सीखना प्रारम्भ कर दिया। जब उर्दू की पाठ्य पुस्तक में एक भोर पढ़ा तो उन्हे बड़ी प्रेरणा मिली।

''सैर कर दुनियाँ का गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?

इस भोर ने बालक केदार को यात्राओं के लिए प्रेरित किया। यद्यपि बालक केदार को नियमित शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला फिर भी स्वाध्याय द्वारा ही इतिहास, संस्कृत, वेद, दर्शन, उपनिषद के साथ ही कई भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

राहुल सांकृत्यायन को अपने बचपन से ही यात्रा करने का ऐसा शौक लगा कि जीवन पर्यन्त भ्रमण करते रहे और अपनी यात्रा काल में बहुविध संस्कृतियों का ज्ञान अर्जित किया। भारत देश के प्रत्येक भू भाग की यात्रा करने के साथ ही हर क्षेत्र की भाषा संस्कृति तथा विविध प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त कर ज्ञानकोश को समृद्ध बनाया जो आगे जाकर उनके लिए उनकी विशिष्ट साहित्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत हुआ।

पर्यटन की दृष्टि से श्री राहुल जी ने नेपाल, तिब्बत, लंका, रूस, इंग्लैण्ड, कोरिया, जापान, ईरान और चीन की यात्रा की तथा प्रत्येक देश में वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश का गंभीर अध्ययन करने के साथ ही वहाँ के धर्म गुरुओं और साहित्यकारों से साक्षात्कार करते हुए साहित्य सृजन की प्रेरणा प्राप्त की, कई देशों की यात्राएँ तो एकाधिक बार भी हुई। रूस, तिब्बत, ईरान की यात्राओं से उनके जीवन में विशेष परिवर्तन हुआ।

देशभक्त सांकृत्यायन को लोग गरीबों का मसीहा कहा करते थे। किसान और मजदूरों के हित के लिए 1938 से 1944 तक निरन्तर आन्दोलनों में भाग लेते रहे तथा श्रमिक संगठनों का नेतृत्व भी किया। कई बार भूख हड़ताले की। सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय रहने के कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। सन् 1940 से 1942 में निरन्तर जेल की यातनाएँ सहन करते हुए मजदूर और किसानों के सहयोगी बने रहे। इन्ही दिनों कम्यूनिस्ट पार्टी के भी आप सदस्य बने। जेल से मुक्त होने के बाद भी आपने सोवियत रूस और चीन व लंका की यात्रा की। सन् 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन में भी आपने अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया। उस समय सहजानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र ''हुँकार'' के भी आप सम्पादक रहे। मजदूरों की सेवा के कारण जमींदारों द्वारा इन्हें आतंकित किया गया। उस समय भी राहुल जी निर्भीक होकर जन सेवा में संलग्न रहे।

यात्राएँ करते रहने से पं0 सांकृत्यायन जी का जीवन ही बदल गया। उन्हें यात्राओं के कारण देश विदेश की प्राचीनतम और नवीनतम गतिविधियों का पूरा आंकलन करते हुए विभिन्न विषयों का ज्ञान हो गया और देश देशान्तरों की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने में सफल रहे। पर्यटन का अनुभव प्राप्त करने के साथ ही आप विभिन्न प्रकार के साहित्य का निरन्तर स्वाध्याय करते रहे। इससे श्री राहुल जी के अन्दर का साहित्यकार जाग उठा और एक उच्च कोटि के साहित्यकार के रुप में आपकी पहचान बन गई। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित रहते हुए गरीब, असहाय और मजदूर तथा किसानों की सेवा में सदा संलग्न रहे। इसीलिए साहित्य भी इन प्रवृत्तियों से प्रभावित रहा।

अध्यात्म की दृष्टि से सांकृत्यायन ने कट्टर सनातनी होते हुए भी सनातन धर्म में व्याप्त रूढ़ियों और अंध विश्वासों को प्रभावी नहीं होने दिया। धार्मिक तथा समाजगत

कुप्रथाओं के उन्मूलन के लिए सदैव तत्पर रहे और तर्कशील रहते हुए शास्त्रोक्त तथ्यों को अंगीकार कर धर्माचरण हेतु कटिबद्ध रहे। आर्य समाज की विचारधारा तथा बौद्धधर्म की शिक्षाओं से आप प्रभावित रहते हुए आडम्बरों से ऊपर उठकर कर्मरत रहे। उन्होंने वेदान्त का गंभीर अध्ययन करने के बाद मंदिरों में बलि चढ़ाने की प्रथा के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द करते हुए जन चेतना का सतत प्रयास किया। समाजवाद से प्रभावित होकर सुविधा परस्तों के खिलाफ आवाज उठायी। उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर एक पुस्तक भी लिखी ''वैज्ञानिक भौतिकवाद एवं दर्शन दिग्दर्शन''।

राहुल जी की सदैव से पर्यटन की वृत्ति रही है। इसी को आपने अध्ययन का आधार बनाते हुए बहुविज्ञ बने। बचपन ही से राहुल जी प्रतिभाशाली और प्रखर बुद्धि के धनी रहे। छोटी आयु में ही साहित्य सृजन की प्रेरणा प्राप्त कर ली। जहाँ से जो भी मिलता उसका आद्योपान्त अध्ययन, मनन व चिन्तन कर अपने ज्ञान कोश को समृद्ध बनाने का सदैव इनका प्रयास रहा। वाराणसी में रहते हुए अंग्रेजी तथा संस्कृत का गहन अध्ययन किया। आर्य समाज से संबंद्ध होने के बाद समस्त वेद पुराणों और उपनिषदों का विशद् अध्ययन किया। बौद्ध धर्म से संबंद्ध साहित्य का पारायण करने के लिए पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, चीनी, जापानी, तिब्बती एवं सिहली भाषाओं की जानकारी कर ली और समस्त बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन कर लिया। आपको बौद्ध साहित्य का गहन गंभीर अध्ययन होने के कारण ''त्रिपिटिकाचार्य'' की उपाधि से विभूषित किया गया। साम्यवादी विचारधारा के कारण कार्लमार्क्स लेनिन तथा स्टालीन के जीवन दर्शन का परिचय प्राप्त किया।

इस प्रकार सांकृत्यायन ने पर्यटन, राजनीति, इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य और भाषा शास्त्र का विशिष्ट ज्ञान अर्जित कर लिया और बहुआयामी विषयों के अध्येता बन गये। पर्यटन की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए राहुल जी का कथन है कि ''कमर बाँध लो, घुमक्कड़ो! संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है'' इस दिशा में अग्रसर होते हुए उन्होने घुमक्कड़ शास्त्र की रचना भी कर ड़ाली। अपने लम्बे अनुभवों से उत्प्रेरित होकर उन्होंने अन्तर्विरोधों का सामना भी किया वे कहते थे ''बड़े की भाँति मैंने तुम्हें उपदेश दिया है वह पार उतरने के लिए है, सिर पर ढ़ोये–ढ़ोये फिरने के लिए नहीं जो मालूम हुआ कि जिस चीज को मैं इतने दिनों से ढूंढ रहा हूँ, वह मिल गई।''

साहित्यशिल्पी श्री सांकृत्यायन ने सन् 1927 से ही अपने साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ किया। वस्तुतः इन्होंने अपनी किशोरावस्था से ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। वे निरन्तर लिखते रहे। उनके द्वारा विविध विषयों पर 150 से अधिक ग्रंथों की रचना हुई है। लेख, वृतान्त तथा निबंध आदि की संख्या तो हजारों में है। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है–कहानियाँ– सतमी के बच्चे, वोल्गा से गंगा, बहुरंगी मधुपुरी, कनैला की कथा। उपन्यास– बाईसवीं सदी, जीने के लिए, सिंह सेनापति, जय यौधेय, भागो नहीं, दुनिया को बदलो, मधुर स्वप्न, राजस्थानी रनिवास, विस्मृत यात्री, दिवोदास। आत्मकथा–मेरी जीवन यात्रा।

जीवनियाँ–सरदार पृथ्वी सिंह, नए भारत के नए नेता, बचपन की स्मृतियाँ, अतीत से वर्तमान, स्तालिन, लेनिन कार्ल मार्क्स, माओ–त्से–तुंग, घुमक्कड़ स्वामी, मेरे असहयोग के साथी, जिनका मैं कृतज्ञ, वीर चन्द्र सिंह, गढ़वालीए सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, कप्तान

लाल, सिंहल के वीर पुरुष, महामानव बुद्ध।

यात्रा साहित्य–लंका, जापान, इरान, किन्नर देश की ओर, चीन में क्या देखा, मेरी लद्दाख यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, तिब्बत में सवा वर्ष, रूस में पच्चीस मास।

अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्य–मज्झिम निकाय – हिंदी अनुवाद, दीघ निकाय – हिंदी अनुवाद

संयुत्त निकाय – हिंदी अनुवाद, ऋग्वैदिक आर्य, दर्शन दिग्दर्शन, तुम्हारी क्षय – भारतीय जाति व्यवस्था, चल चलन पर व्यंग, मध्य एशिया का इतिहास, दक्खिनी हिन्दी का व्याकरण।

राहुल सांकृत्यायन जी ने हिन्दी साहित्य के अलावा धर्म, दर्शन, लोक साहित्य, यात्रा वर्णन, जीवनी लेखन तथा सम्पादन कार्य आदि क्षेत्रों में कुशलता पूर्वक कार्य किया। इन्होंने संस्कृत एवं पाली के अनेक बौद्ध ग्रंथों का जो 2000 वर्ष पहले लुप्त हो गये थे, उनका पता लगाकर धर्मकीर्ति, सुधाकर गुप्त, ज्ञानश्री, नागार्जुन (प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता असंग, रत्नाकर, वसुबन्धु, शांतिरक्षित, रत्नकीर्ति और गुण प्रभु जैसे विद्वानो के यश को अमर कर दिया। राहुल जी की जीवन यात्रा पाँच खण्डों में कुल 2770 पृष्ठों में प्रकाशित हुई। हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में श्री सांकृत्यायन जी ने ''अपभ्रंश काव्य साहित्य'' तथा ''दक्षिणी हिन्दी साहित्य'' ग्रंथों की रचना के साथ ही हिन्दी कहानियाँ भी प्रस्तुत की। इन रचनाओं में पुरातन के प्रति प्रेम तथा इतिहास के प्रति गौरव गरिमा का दर्शन होता है। कई रचनाएँ क्षेत्र व स्थानीयता को प्रकट करने वाली है। सांकृत्यायन जी के साहित्य में भाषा की सरलता, रोचकता तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है इसीलिए वे पाठकों के कण्ठहार बन गये।

पुरस्कार प्राप्ति की दृष्टि से निम्नांकित पुरस्कारों से विभूषित किया गया –

- महापण्डित– काशी पंडित सभा।
- त्रिपिटकाचार्य– विद्यालंकार परिवेण, श्रीलंका।
- साहित्य वाचस्पति– हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद।
- डी0 लिट0 (मानद) – विद्यालंकार यूनिवर्सिटी श्रीलंका।
- पद्मभूषण – भारत सरकार।

श्री राहुल सांकृत्यायन 14 अप्रैल 1963 में इस जरा धाम को छोड़ परलोक सिधार गये।

शंकर लाल माहेश्वरी, पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी, पो. : आगूंचा, जिला : भीलवाड़ा, राजस्थान–311022
मो. : 09413781610

✧ ✧ ✧

आलेख

सृजन, विसर्जन का वृंदगान : असाध्य वीणा

कृष्ण बिहारी पाठक

प्रियंवद असाध्य वीणा को साधता है पर वीणा की ध्वनि प्रियंवद की मौलिक सर्जना नहीं। ध्वनि क्या वीणा की अपनी है, नहीं वह भी नहीं, वीणा तो किरीट तरु का अंग मात्र है, अंगी है वह किरीट तरु। तो क्या यह ध्वनि किरीट तरु की अपनी उपज है। नहीं किरीट तरु भी विश्व अनुभूतियों का संग्राहक मात्र है। ठीक इसी तरह किसी रचना में अंतर्निहित सर्जना की मौलिक ध्वनि स्वयं भू होती है, ब्रह्मानंद सहोदर.. रचनाकार तो संग्राहक मात्र है फिर संग्रह का दंभ क्या? और कैसा?

अज्ञेय की असाध्य वीणा में किरीट तरु, वज्रकीर्ति, प्रियंवद और वीणा के चतुष्टय के माध्यम से अनुभूतियों के अभिव्यक्ति में शुद्ध रूपांतरण के अनंतर सृजन की अपरिहार्य शर्त के रूप में अहंनिष्ठा के विसर्जन और आत्म के विनीत समर्पण की सुरुचिपूर्ण गाथा है। असाध्य वीणा सृजन के लिए आत्म के विसर्जन की कविता है।

संचित अनुभूतियों की अक्षत एवं पारदर्शी अभिव्यक्ति रचनाकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। अनुभूति स्वयंभू स्वतःस्फूर्त एवं सर्वथा मौलिक होती है। रचनाकार अनुभूतियों का निर्माण नहीं करता संचय मात्र करता है, संग्राहक में सृजंता होने का अहंभाव इस चुनौती को और कठोर बना देता है। इस तरह से रचाव की यह प्रक्रिया असाध्य हो जाती है जो रचना रूपी वीणा को मुखरित होने से रोकती टोकती है।

सृजनकर्ता का मैं भाव अभिव्यंजना को झूठी और निष्प्राण करता जाता है। यह सृजन संजीवनी के प्रतिलोम विष का कार्य करता है। तभी वह राजा कह उठता है –

''मेरे हार गये सब जाने–माने कलावन्त,

सबकी विद्या हो गई अकारथ, दर्प चूर,

कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।'' 1

राजा के इस व्यग्र कथन के संतुलन में प्रियंवद का संयत कथन है –

''राजन! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ––
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।''2

अज्ञेय ने इस अद्‌भुत कविता में बहुत कौशल के साथ राजा की व्यग्रता के संतुलन में प्रियंवद का संयम सामने रखा है। व्यग्रता और संयम के रसायन आपस में टकराते हैं, या कहें संयम, व्यग्रता के विष का शमन करता है और उत्पाद के रूप में प्राप्ति होती है विश्वास की। राजा का कथन है –

'पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ–तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी।
इसे जब सच्चा स्वर–सिद्ध गोद में लेगा।''

असाध्य वीणा की केंद्रीय चिंता सृजन में मौलिकता की स्थानीयता का निर्धारण भी है। इसी निर्धारण के लिए अज्ञेय ने रचनाकार और बीनकार को एक चश्मे से देखा है।

प्रियंवद असाध्य वीणा को साधता है पर वीणा की ध्वनि प्रियंवद की मौलिक सर्जना नहीं। ध्वनि क्या वीणा की अपनी है, नहीं वह भी नहीं, वीणा तो किरीट तरु का अंग मात्र है, अंगी है वह किरीट तरु। तो क्या यह ध्वनि किरीट तरु की अपनी उपज है। नहीं किरीट तरु भी विश्व अनुभूतियों का संग्राहक मात्र है। ठीक इसी तरह किसी रचना में अंतर्निहित सर्जना की मौलिक ध्वनि स्वयं भू होती है, ब्रह्मानंद सहोदर.. रचनाकार तो संग्राहक मात्र है फिर संग्रह का दंभ क्या? और कैसा? रचना के आत्म की ध्वनि का शुद्ध साक्षात्कार रचयिता होने के दंभ को विसर्जित करके ही किया जा सकता है, यह बात असाध्य वीणा की केंद्रीय प्रवृत्ति है।

वीणा का साक्षात्कार करता हुआ प्रियंवद सबसे पहले अपनी अहंनिष्ठा का विसर्जन करता है –

''कौन प्रियंवद है कि दंभ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे...
.. ''मैं नहीं, नहीं! मैं कहीं नहीं !
ओ रे तरु! ओ वन!
ओ स्वर–सँभार!
नाद–मय संसृति!
ओ रस–प्लावन!

मुझे क्षमा कर –– भूल अकिंचनता को मेरी ––
मुझे ओट दे –– ढँक ले –– छा ले ––
ओ शरण्य!''

प्रियंवद जिस निश्छल आत्मसमर्पण के साथ वीणा और उसकी परंपरा का आत्म साक्षात्कार करता है, वह समर्पित आत्म ही किसी भी कला की सिद्धि और साधना का एकमात्र मार्ग है। रचना के आत्म से रचनाकार के समर्पित साक्षात्कार के साथ ही वह अद्‌भुत दृश्य उपस्थित होता है जहाँ रचना अपने स्वर और स्वरूप का निर्धारण स्वयं करने लगती है। यही रचनात्मक उत्कर्ष का वह क्षण है जहाँ रचनाकार केवल द्रष्टा बनकर रचना के पराक्रम को देखता है।

शेखर एक जीवनी की भूमिका में अज्ञेय ने इसी सत्य का उद्‌घाटन करते हुए साहित्य के निर्माण को जीवित मृत्यु का आह्वान कहा है –

'''साहित्य का निर्माण, मानो जीवित मृत्यु का आह्वान है, साहित्यकार को निर्माण करके और लाभ भी तो क्या, रचयिता होने का सुख भी नहीं मिलता, क्योंकि काम पूरा होते ही वह देखता है, 'अरे यह तो वह नहीं है जो मैं बनाना चाहता था।''

साहित्य की जो रचनाएँ काल को जीतकर आज भी उसी चमक दमक से अस्तित्वमान हैं उनके रचनाकारों ने निर्माण के क्षणों को साझा करते समय यह स्वीकार किया है कि रचाव के उत्कर्ष के क्षणों में रचना उनके बंधे बंधाए ढाँचों, नियम विनियमों से मुक्त होकर स्वाधीन चेतना के साथ स्वयं अपना मार्ग तय करने लगी है।

रचना और उसके पात्रों के स्वमेव गठन की प्रक्रिया में रचयिता स्रष्टा से द्रष्टा मात्र बनकर रह जाता है। इसे शेखर एक जीवनी में अज्ञेय ने स्पष्ट किया है –

''शिशु मानस के चित्रण की सच्चाई के लिए मैंने 'शेखर' के आरंभ के खंडों में घटनास्थल अपने ही जीवन से चुने हैं, फिर क्रमशः बढते हुए शेखर का जीवन और अनुभूति क्षेत्र मेरे जीवन और अनुभूति क्षेत्र से अलग चला गया है, यहाँ तक कि मैंने स्वयं अनुभव किया है कि मैं एक स्वतंत्र व्यक्ति की प्रगति का दर्शक और इतिहासकार हूँ, उसके जीवन पर मेरा किसी तरह का वश नहीं रहा है।... लेखक पात्र, स्थिति को.. विकसित करता है और एक समय ऐसा आता है जब रचना लेखक के हाथों से निकल जाती है, उसका स्वाभाविक विकास होने लगता है।''

रचना की स्वाधीन चेतना का साक्षात्कार प्रत्येक सफल रचना में सफल रचनाकार को होता है। धर्मवीर भारती ने अंधायुग के सृजनात्मक अनुभवों को साझा करते हुए लिखा है –

''इस बार ही नहीं अनेक बार ऐसा हुआ है कि पात्र के बारे में पूरे नोट्‌स बना लीजिए, यहाँ तक कि घटनाक्रम और संवादों की विस्तृत रूपरेखा भी सोच लीजिए, लेकिन जहाँ

लिखते लिखते पात्र अपने व्यक्तित्व को उपलब्ध कर ले गया, वहीं वह आपके हाथ में नहीं रहता। फिर उसका चरित्र विकास अपने आंतरिक क्रम के अनुसार होता है और आपका बनाया तथा कागज पर लिखा हुआ सारा ढाँचा नाकाफी सिद्ध होने लगता है अश्वत्थामा के बारे में भी यही हुआ। ''

रचना की श्रेष्ठता और सफलता के लिए यह परमावश्यक है कि रचना स्वतःस्फूर्त अपना विकास और निर्माण करने लगे। सृजन की यह वीणा आप से ही बज उठे, कहने की आवश्यकता नहीं यह स्वचालन रचनाकार की अहंनिष्ठा के विसर्जन और आत्म विलीनीकरण से ही संभव है। असाध्य वीणा में यही अज्ञेय ने स्थापित किया है।

यह पूर्ण समर्पित, चिर विर्सजित प्रियंवद कौन है? यही वह वाल्मीकि और व्यास है, भवभूति वा कालिदास है। 'मानस' कार तुलसी है, जायसी और कबीर है, सूर, रसखान या घनानंद है। मीरा, महादेवी, ललद्यद और नाज है। यह 'निराला', 'सुकुमार', 'कामायनीकार' है। यह हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, रामचंद्र है। यह सहज निष्प्रयास प्रस्तुत साधक है, राही नहीं, राहों का अन्वेषी है।

तार सप्तक के कवियों के लिए अज्ञेय ने राही के स्थान पर राहों के अन्वेषी कहा है। यह बात ध्यान देने योग्य है। राही शब्द में पथिक के पथ ज्ञान का अहंकार अंतर्निहित है जबकि अन्वेषी में उस पथ के प्रति सुरुचिपूर्ण जिज्ञासा का भाव छिपा हुआ है। एक रचनाकार अपनी रचना प्रक्रिया में सदैव अन्वेषी ही रहता है, पथ से संवाद करता हुआ, पथ के प्रति समर्पित।

असाध्य वीणा का प्रियंवद भी अपने समर्पण से उस अवस्था में पहुँच चुका है जहाँ रचना रचनाकार के नियमों से मुक्त होकर अपनी गति मति से पूर्णत्व प्राप्त करती है। सधती है। प्रियंवद वीणा से ही तो कहता है –

''मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकू
तेरे अनुभव का एक–एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय––
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।
''गा तू !
यह वीणा रखी है : तेरा अंग –– अपंग।
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म–भरित,
रस–विद,

तू गा :
मेरे अंधियारे अंतस में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का ––
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा !''

तू गा, तू गा की इस आवर्ती टेर में आत्मनिवेदन कितना भास्वर होकर सामने आता है। सृजन परंपरा में यही आत्मनिवेदन सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है और सहसा वीणा झनझना उठती है। असाध्य, सध जाता है।

वीणा से अवतरित संगीत श्रोता मात्र के तम श्रम को हरने वाला है, आशा आकांक्षाओं को पूरने वाला है, मनचाहा वरदान है और यही प्रमाण है कि वीणा सध गई है। संगीत का सृजन और अहं का विसर्जन एक सम पर आकर मिल गए हैं।

असाध्य वीणा नाम्नी इस प्रलंब कविता के कथ्य में जहाँ अहंकार का विसर्जन, संचित विविधतापूर्ण अनुभूतियों की समवेत अभिव्यंजना, जीवन और जगत के अनुभवों की सार्वजनीन व्याप्ति, आदि का भव्य आयोजन हैं वहीं कविता का शिल्प चुनौती के अभिनिवेश के साथ चमत्कृत करता है।

इस कविता के शिल्प में क्या चुनौती हो सकती है। किसी भी लेखन में दोहराव, पिष्टपेषण या क्लीशे उस लेखन की सफलता के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है यदि उसका औचित्य सिद्ध न हो सके।

असाध्य वीणा में किरीट तरु में संचित विश्व अनुभवों को पहले राजा कहकर सुनाता है और आगे चलकर उन्हीं अनुभवों को प्रियंवद स्मरण करता है। कवि ने यह दोहराव जान बूझकर अर्थ संदर्भों को और अधिक गहरा करने के उद्देश्य से किया है। नागार्जुन की अकाल और उसके बाद कविता में भी इसी चक्करदार प्रवृत्ति से अर्थ संदर्भ विशिष्ट होकर सामने आते हैं।

राजा के कथन में अंतर्निहित जानकारियाँ प्रियंवद तक आते–आते विरुद या प्रार्थना का रूप ले लेती हैं। दूसरे यह कि संगीत की पृष्ठभूमि से सुसज्जित कविता में यह आवर्तन इसे चक्करदार तिहाई की तुक पर चक्करदार कविता के सौंदर्य पर पहुँचाता है। एक ही कथन में बदलती हुई ध्वनि का प्रभाव इसे दोहराव के दोष से बचाता है, कथ्य की समानता पर भी राजा तथा प्रियंवद के काकु का पर्याप्त अंतर अग्रिम पद्य खंडों में देखा जा सकता है –

पहला खंड राजा का है जिसमें किरीट तरु का वैभव सूचनात्मक ढंग से वर्णित है –

''वज्रकीर्ति ने मंत्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी–तरु से इसे गढा था ––
उसके कानों में हिम–शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,

कंधों पर बादल सोते थे...
और ——सुना है—— जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल—लोक,
उसकी गंध—प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।''

यही बात प्रियंवद के संदर्भ का स्पर्श करते—करते गुणगान, या विरुद की ध्वनि में बदल जाती है —

''कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी—तरु
जिसकी जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिसके कन्धों पर बादल सोते थे
और कान में जिसके हिमगिरी कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।''

संगीत प्रधानता के चलते इस कविता के श्रुति बिंबों के संयोजन में अज्ञेय ने श्रुतिमधुर इन्द्रजाल बिछाया है जिसमें पढ़ने वाला प्रत्येक सामाजिक चकित विस्मित होकर रह जाता है।

वर्षा बूँदों की पटपट, महुए की टपकन, खग शावक की चिहुँक, झरने का कल निनाद, ढोलक की थाप, कठफोडे का ठेका, फुलसुंघनी की फुरकन, ओस बूँद की ढरकन, ताल लहरियों की सरसर ध्वनि, कूँजों की क्रेंकार, टिट्टिभ की लंबी काँद, मत्त मतंग की टकराहट, जल प्रपात का प्लुत स्वर, झिल्ली — दादुर, कोकिल — चातक की झंकार पुकार, संसृति की साँय—साँय, काले मेघों की बाढ़ में प्रतिध्वनित गजयूथों की चिंघाड़, बहिया नदी की घरघराहट, रेतीले कगार की छ्प छडाप, झंझा की फुफकार, ओले की कर्री चपत सहित नानाविध विश्व ध्वनियों का वृंदगान असाध्य वीणा को साधता है —

''घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूँज ——
काँपती मन्द्र —— अनुगूँज —— साँस खोयी—सी,
धीरे—धीरे नीरव।
''मुझे स्मरण है
हरी तलहटी में, छोटे पेड़ो की ओट ताल पर
बँधे समय वन—पशुओं की नानाबिध आतुर—तृप्त पुकारें :
गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूख, हुक्का, चिचियाहट।
कमल—कुमुद—पत्रों पर चोर—पैर द्रुत धावित

जल–पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलांगों की।
पन्थी के घोड़े की टाप धीर।
अचंचल धीर थाप भैंसो के भारी खुर की।''

ध्वनियों का आयोजन आमंत्रण ही नहीं, कवि ने संगीत की क्रियाओं का भी पूरा ध्यान रखा गया है। ढोलक से बजने वाले ठेके के समांतर कठफोडे का ठेका, बजने वाली ताल विशेष में जैसे मात्राओं के बोल निश्चित अंतराल पर चक्रिक आवर्तन करते हैं उसके समांतर में अज्ञेय ने किरीट की छाया में पले मृगों की चौकड़ियों का दृश्य गति बिंब रखा है और अंततः संगीत के सभी आवश्यक उपादान यथा स्वर, लय, ताल, छंद, गति का समवेत रचा है –

तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा ––
अपने खग–कुल को मुखरित कर..
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपने छायातप, वृष्टि–पवन, पल्लव–कुसुमन की लय पर
अपने जीवन–संचय को कर छंदयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे!
तू गा, तू गा –– ''

संगीत की द्रवणशील प्रवृत्ति के अनुरूप शब्दावली को मृदुल और संगीत मैत्रीपूर्ण भी कवि ने बनाया है। मधुमक्षिका के स्थान पर मौमाखियाँ, हिम तुषार के फाहे आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

सब मिलाकर असाध्य वीणा सृजन की सूत्र या मंत्र कविता है जो सृजन की निर्मात्री भूमिका को रेखांकित करती है। सर्जक को कठोरतम से मृदुलतम होने का, विनत होने का, संदेश देती है। अहं के विसर्जन और आत्म के विनीत समर्पण से ही श्रेष्ठ सर्जन संभव होता है, यही असाध्य वीणा की साधना का एकमात्र मार्ग है।

कृष्ण बिहारी पाठक, व्याख्याता हिन्दी, तिरूपति नगर, हिंडौन सिटी, जिला : करौली, राजस्थान–322230, मो. : 9887202097, ई–मेल : kpathakhnd6@gmail.com

✧ ✧ ✧

कालजयी 'कालिदास' और महावीर प्रसाद द्विवेदी

डॉ. प्रभात कुमार मिश्र

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत कवियों और रचनाओं पर भी पर्याप्त विवेचनात्मक और आलोचनात्मक लेखन किया है। वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि से लेकर कालिदास, श्रीहर्ष, अश्वघोष, बिल्हन, माघ, भट्टि आदि बहुतेरे संस्कृत के महाकवियों की कृतियों पर उन्होंने लिखा है। सच तो यह है कि उनके आलोचनात्मक लेखन का आरम्भ ही संस्कृत कवियों पर लिखी उनकी आलोचनाओं से हुआ था।

साहित्य के इतिहास के समक्ष कालजयी रचनाओं का प्रश्न बराबर उपस्थित होता रहा है और यह माना गया कि कभी–कभी ऐसा साहित्य भी रचा जाता है जिसकी व्याप्ति समाज और समय की सीमा के पार भी होती है। युग बदलता जाता है और रचना में नए–नए अर्थ–संदर्भ जुड़ते चले जाते हैं। ऐसी रचनाएँ अपने समय को जीतकर कालातीत महत्त्व हासिल कर लेती हैं और कालजयी कहलाती हैं। इस प्रसंग में यह प्रश्न भी उठता है कि समय के बदलने के साथ–साथ लोगों के सोचने–विचारने का ढंग भी बदलता चला जाता है, उनकी अभिरुचियों में भी परिवर्तन होता रहता है, फिर भी पुराने समय की भी कोई रचना महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली कैसे होती है। इस प्रसंग में विचारकों ने यह बताया है कि जिन कलाओं में आधारभूत मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है, उन्हीं रचनाओं में कालजयी बनने की क्षमता भी निहित होती है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि कालिदास के साहित्य में आधारभूत मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। जाहिर है कि कालिदास की कालजयिता का आधार निश्चित तौर पर उस मर्मी–सहृदय से जुड़ ही जाता है जिसने कालिदास के साहित्य में निहित इस विशेषता को उजागर किया है। यही कारण है कि हिन्दी में महावीर प्रसाद

द्विवेदी की कालिदास सम्बन्धी रचनाओं को भी कालजयी होने का गौरव प्राप्त है। इन रचनाओं की कालजयिता श्रेयस्कर अनुवाद का उदाहरण सामने रखने, श्रेष्ठ साहित्य का समुचित परिचय देने और हिन्दी समीक्षा तथा आलोचना की एक दिशा निर्धारित करने में इनकी विशिष्ट भूमिका से भी सिद्ध है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम हिन्दी आलोचना के उन्नायकों में आज लिया जाता है। किन्तु, उनको मिली यह प्रतिष्ठा बहुत पहले की बात नहीं है। आरम्भ में ऐसा नहीं था... बिल्कुल नहीं। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह माना तो है कि "श्रीयुत्पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पहले पहल विस्तृत आलोचना का रास्ता निकाला" किन्तु 'हिन्दी कालिदास की आलोचना', 'कालिदास की निरंकुशता' आदि पुस्तकों के बारे में उनकी धारणा यह ठहरी है कि "जो हो, इन पुस्तकों को एक मुहल्ले में फैली बातों से दूसरे मुहल्ले वालों को कुछ परिचित कराने के प्रयत्न के रूप में समझना चाहिए, स्वतन्त्र समालोचना के रूप में नहीं।" आगे आचार्य शुक्ल ने यह लिखा कि "यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते, तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरूद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परम्परा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गये और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।" आचार्य शुक्ल की इस टिप्पणी के बाद एक लम्बे समय तक हिन्दी आलोचना में द्विवेदी जी की भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी उसे केवल भाषा की सुचिंतित व्यवस्था तक ही बाँधकर देखा जाता रहा है। द्विवेदी जी के सम्बन्ध में लगभग स्थिर हो गई यह धारणा बदलनी शुरू हुई रामविलास शर्मा की किताब 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' के छपने के बाद।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत कवियों और रचनाओं पर भी पर्याप्त विवेचनात्मक और आलोचनात्मक लेखन किया है। वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि से लेकर कालिदास, श्रीहर्ष, अश्वघोष, बिल्हन, माघ, भट्टि आदि बहुतेरे संस्कृत के महाकवियों की कृतियों पर उन्होंने लिखा है। सच तो यह है कि उनके आलोचनात्मक लेखन का आरम्भ ही संस्कृत कवियों पर लिखी उनकी आलोचनाओं से हुआ था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी आलोचना में संस्कृत की टीका–समीक्षा और खण्डन–लोचन की अत्यन्त समृद्ध परम्परा के साथ प्रवेश किया था, विशेषकर कालिदास की कृतियों के साथ। संपादकत्व ग्रहण करने के साथ ही लगातार कालिदास विषयक द्विवेदी जी के आलेख 'सरस्वती' में प्रकाशित होते रहे थे। यह कहना ठीक है कि हिन्दी की दुनिया में लगभग अपरिचित से रहे कालिदास का प्रवेश महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ही कराया। द्विवेदी जी ने न केवल कालिदास सम्बन्धी आलोचनात्मक पुस्तकें लिखीं, बल्कि कालिदास की प्रमुख कृतियों को साधारण पाठकों के उपयोग के लिए सरल हिन्दी में प्रस्तुत किया और उनकी रचनाओं के काव्यानुवाद, गद्यानुवाद आदि किए।

ऐसा ही एक काव्यानुवाद है 'कुमारसम्भवसार'। इसका प्रकाशन 1902 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने किया था। पुस्तकाकार छपने से पूर्व महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसके हिस्से क्रमशः कलकत्ते से निकलने वाली पत्रिका 'भारत मित्र' में छपवाए थे। इसमें कालिदास के 'कुमारसम्भव' के कुछ सर्गों के मूल भाव का काव्यानुवाद किया गया है। द्विवेदी जी ने इसकी भूमिका में लिखा है कि ''इस काव्य के प्रथम पाँच ही सर्ग सर्वोत्तम हैं। इसलिए हमने उन्हीं का अनुवाद किया है। बहुत कम अवकाश मिलने के कारण तृतीय और पंचम सर्ग का ही पूरा अनुवाद करके प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ सर्ग के अनुवाद में हमने मूल का आशय मात्र लिया है।'' तृतीय सर्ग के आरम्भ में ही एक नोट लिखकर द्विवेदी जी ने बताया है कि इस सर्ग की कथा ही मनोहर है; इसलिए, हमने इसका पूरा अनुवाद किया है।

'कुमारसम्भव' के सर्गों के सम्बन्ध में द्विवेदी जी का मत है कि ''कालिदास के काव्यों में 'कुमारसम्भव' का भी बड़ा आदर है। इसमें सब सत्रह सर्ग हैं, परन्तु पहले सात ही सर्गों के पठन–पाठन का बहुधा सब कहीं प्रचार है। अष्टम सर्ग में कवि ने शंकर और पार्वती के श्रृंगारिक वर्णन की पराकाष्ठा कर दी है; यहाँ तक कि अनेक स्थल अश्लील–दूषित हो गये हैं। शायद इसी कारण से सप्तम सर्ग तक ही इस काव्य के अनुशीलन की परिपाटी पड़ गई हो। कोई यह भी कहते हैं कि आठ ही सर्ग कालिदास के बनाये हुए हैं, शेष नौ सर्ग किसी ने उसके नाम से बनाकर जोड़ दिए हैं। इस सम्भावना का कारण वे यह बतलाते हैं कि यदि सत्रह सर्ग पर्यन्त कालिदास ही की रचना होती, तो इस काव्य का 'तारकवध' अथवा इसी अर्थ का द्योतक और कोई ऐसा ही नाम रखा जाता; 'कुमारसम्भव' न रखा जाता; क्योंकि कुमार के द्वारा तारक का वध वर्णन करके सत्रहवें सर्ग की समाप्ति हुई है।''स्वाभाविक तौर पर इस काव्यानुवाद के शिल्प और इसकी भाषा पर तद्युगीन काव्यभाषा का असर है। उदाहरण के तौर पर प्रथम सर्ग के इन आरम्भिक हिस्सों को देखा जा सकता है–

दिव्य दिशा उत्तर में शोभित देवात्मा का अधिकारी
भूधरपति अति पृथुल हिमालय हिममण्डितमस्तकधारी।
पूर्व और पश्चिम पयोधि के बीच बढ़ाकर तनु भारी,
महीमाप के दण्ड तुल्य है रक्खा बहु विस्मयकारी।।
रत्न और ओषधी चमकती हैं जिसमें नित बहुतेरी,
नहीं न्यून उसकी शोभा को कर सकती हिम की ढेरी।
चन्द्रबिम्ब के भीतर जैसे नहीं कलंक दिखता है,
तैसे ही गुणगण–समुद्र में एक दोष छिप जाता है।

द्विवेदी जी ने भूमिका में सप्रमाण यह स्पष्ट किया है कि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' की कथा शिवपुराण से ली है। उनके अनुसार ऐसा करने में कवि ने कहीं–कहीं शिवपुराण के श्लोकों के पूरे चरण के चरण वैसे ही रख दिये हैं, पदयोजनाओं और भावों के ले लेने के

प्रमाण तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक सब कहीं विद्यमान हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कालिदास की कालजयी कृतियों– 'रघुवंश', 'कुमारसंभव' एवं 'मेघदूत' के भावार्थबोधक तथा औपन्यासिक रूप में रूपान्तरण भी किये हैं। 'रघुवंश' का रूपान्तरण 1912 ई. में किया गया था एवं इसका प्रथम संस्करण 1913 ई. में इण्डियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। ये रूपान्तर इस तरह किये गये हैं कि इन्हें पढ़ते हुए उपन्यास पढ़ने का सुख मिलता है यानी उपन्यास की तरह ये सरस, रोचक और मनोरंजक हैं। इसीलिए द्विवेदी जी के जीवनकाल में ही इनके कई संस्करण हो गए थे। हिन्दी गद्य के प्रति रुझान भी लोगों में इनके अनुवाद से बढ़ी थी। 1915 ई. में जब इनका किया 'कुमारसंभव' का गद्यानुवाद छपा, तो उसकी भूमिका में द्विवेदी जी ने अपने इन अनुवादों के प्रसंग में लिखा कि ''हमारे हिन्दी रघुवंश की आवृत्ति की कापियाँ बहुत शीघ्र निकल गईं। इससे सूचित हुआ कि ऐसी

राजा साहब के अनुवाद के बाद, दूसरा गद्यात्मक अनुवाद पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र का है। मिश्र जी ने इस श्लोक का यह अनुवाद किया है ''मैं वाणी और अर्थ की सिद्धि के निमित्त वाणी और अर्थ की समान मिले हुए जगत् के माता–पिता पार्वती शिव को प्रणाम करता हूँ।'' राजा साहब और मिश्र जी के अनुवाद में भेद इतना ही है कि मिश्र जी के अनुवाद में 'नाईं' की जगह 'समान' और 'वन्दना' की जगह 'प्रणाम' है। इसके सिवा शब्दों का क्रम भी कुछ बदला हुआ है। अतएव उनकी भाषा राजा साहब की भाषा से कुछ अच्छी हो गई है। बस, और कोई भेद नहीं।

पुस्तकों की माँग है। संस्कृत–काव्यों के इस तरह के गद्यात्मक अनुवादों से पाठकों को हमारे प्राचीन महाकवियों की रचना, उनकी विचार–परम्परा और उनके जीवन वैचित्र्य का भी ज्ञान हो जाता है और भारत की प्राचीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक अवस्था का भी थोड़ा बहुत हाल मालूम हो जाता है। इसी से लोग ऐसी पुस्तकों को चाव से पढ़ते हैं। इससे मनोरंजन के साथ ज्ञान–प्राप्ति भी होती है। अपने अतीत और अपने पूर्वजों पर श्रद्धा भी बढ़ती है और अपनी भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है।'' अपने इन अनुवादों के संदर्भ में द्विवेदी जी ने बताया है कि ''हमने कालिदास का भाव ही हिन्दी में लिखा है। उनके शब्दों पर कम ध्यान दिया है, आशय पर अधिक। आशय को अच्छी तरह प्रकट करने के लिए हमने यथेष्ट–शब्द प्रयोग किया है। यहाँ तक कि, आवश्यकता होने पर हमने मूल भाव का विस्तार भी कर दिया है।...भाव ही प्रधान है, शब्द स्थापना गौण।''

'रघुवंश' की भूमिका में विस्तारपूर्वक द्विवेदी जी ने शब्दानुवाद और भावानुवाद के अन्तर को स्पष्ट किया है। 'रघुवंश' के लाला सीताराम, बी.ए. और पण्डित सरयू प्रसाद मिश्र

के काव्यात्मक हिन्दी अनुवाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह के गद्यानुवाद की चर्चा करते हुए द्विवेदी जी ने भूमिका में लिखा है कि '''रघुवंश' का गद्यात्मक अनुवाद पहले पहल राजा लक्ष्मण सिंह ने किया। इस अनुवाद को उन्होंने ''विद्यार्थियों के उपकार के लिए हिन्दी बोली में किया''। उन्होंने अपने अनुवाद में मूल का यहाँ तक अनुगमन किया है कि संस्कृत के जिस पद में जो विभक्ति थी, उसके हिन्दी अनुवाद में भी, यथासम्भव, वही विभक्ति रखी है। अर्थात् संस्कृत के मूल शब्दों को उन्होंने तद्वत् हिन्दी में रख दिया है। 'रघुवंश' का पहला श्लोक है

'वागर्थाविवसम्पृक्तौवागर्थप्रतिपत्तये।
जगतःपितरौवन्देपार्वतीपरमेश्वरौ।।'

इसका अनुवाद राजा साहब ने इस प्रकार किया है– वाणी और अर्थ की सिद्धि के निमित्त (वागर्थप्रतिपत्तये) मैं वन्दना करता हूँ (वन्दे) वाणी और अर्थ की नाईं (वागर्थाविव) मिले हुए (सम्पृक्तौ) जगत् के (जगतः) माता–पिता (पितरौ) शिव पार्वती को (पार्वतीपरमेश्वरौ)। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि राजा साहब ने जो यह अर्थ किया वह संस्कृत के प्रत्येक पद का शब्दार्थ हुआ और संस्कृत के जिस पद में जो विभक्ति थी वही हिन्दी में भी रही।

राजा साहब के अनुवाद के बाद, दूसरा गद्यात्मक अनुवाद पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र का है। मिश्र जी ने इस श्लोक का यह अनुवाद किया है ''मैं वाणी और अर्थ की सिद्धि के निमित्त वाणी और अर्थ की समान मिले हुए जगत् के माता–पिता पार्वती शिव को प्रणाम करता हूँ।'' राजा साहब और मिश्र जी के अनुवाद में भेद इतना ही है कि मिश्र जी के अनुवाद में 'नाईं' की जगह 'समान' और 'वन्दना' की जगह 'प्रणाम' है। इसके सिवा शब्दों का क्रम भी कुछ बदला हुआ है। अतएव उनकी भाषा राजा साहब की भाषा से कुछ अच्छी हो गई है। बस, और कोई भेद नहीं। और, आपका भी अनुवाद ''भाषा के ज्ञाता तथा परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के निमित्त'' है। द्विवेदी जी ने लिखा है कि ''अच्छा, तो जो लोग न तो विद्यार्थी ही हैं और न भाषा के ज्ञाता ही हैं (ज्ञाता का अर्थ हम यहाँ पर धात्वर्थ से अधिक व्यापक लेते हैं) उनके लिए फिर भी एक अनुवाद की आवश्यकता शेष रहती है– ऐसे अनुवाद की जिसे थोड़ी हिन्दी जानने वाले लोग भी आसानी से पढ़कर कालिदास का आशय समझ जाएँ। इसी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए यह अनुवाद प्रकाशित किया जाता है।''

राजा साहब और मिश्र जी का भावार्थ, जैसा कि इस अनुवाद में है, नीचे दिया जाता है – ''जिस तरह वाणी और अर्थ एक–दूसरे को छोड़कर कभी अलग–अलग नहीं रहते, उसी तरह संसार के माता–पिता, पार्वती और परमेश्वर, भी अलग–अलग नहीं रहते, सदा साथ ही साथ रहते हैं। इसी से मैं उनको नमस्कार करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे शब्दार्थ का अच्छा ज्ञान हो जाय। मुझमें लिखने की शक्ति भी आ जाय और जो कुछ मैं लिखूँ वह सार्थक भी हो– मेरे प्रयुक्त शब्द निरर्थक न हों। इस इच्छा को पूर्ण करने वाला उमा– महेश्वर से बढ़कर और कौन हो सकता है? यही कारण है जो मैं और देवताओं को छोड़कर, इस ग्रन्थ

के आरम्भ में, उन्हीं की वन्दना करता हूँ।''

द्विवेदी जी ने अपनी अनुवाद चेष्टा को और अधिक स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है कि इस अनुवाद में शब्दार्थ पर कम ध्यान दिया गया है, भावार्थ पर अधिक। स्पष्ट शब्दों में कालिदास का आशय समझाने की चेष्टा की गई है। शब्दों का अर्थ लिख देने ही से संतोष नहीं किया गया। महाकवियों के प्रयुक्त किसी किसी शब्द में इतना अर्थ भरा रहता है कि उस शब्दार्थ का वाचक हिन्दी शब्द लिख देने ही से उसका ठीक बोध नहीं होता। उसे स्पष्टता पूर्वक प्रकट करने के लिए कभी एक नहीं अनेक शब्द लिखने पड़ते हैं।

'रघुवंश' का यह भावार्थ–बोधक अनुवाद कितना पसंद किया गया होगा, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके कई संस्करण आठ–दस वर्षों में हो गये। सितम्बर, 1927 की 'सरस्वती' में इसका पूरे पृष्ठ का विज्ञापन निकला। विज्ञापन में अन्य बातों के अलावा 'रघुवंश' के महत्त्व को दर्शाने वाली कुछ बातें भी हैं – ''संस्कृत भाषा में कालिदास का 'रघुवंश' सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। उसकी सर्वोत्तमता का कारण यह है कि उसमें महाकवि ने नैसर्गिक वर्णन का सबसे अच्छा चित्र उतारा है। लोक–शिक्षोपयोगी बातों से 'रघुवंश' आदि से अन्त तक पूर्ण है।... इस अनुवाद में कालिदास के लिखे केवल शब्दों का ही अनुगमन नहीं है, किन्तु उन शब्दों के प्रयोग द्वारा महाकवि कालिदास ने जो अनुपम भाव दर्शाए हैं उन्हीं भावों का–उन्हीं भीतरी मर्म्मों का–महाकवि की उन्हीं प्रतिभा–प्रदीप्त कल्पनाओं तथा लोकोत्तरा नन्ददायिनी उक्तियों के गूढ़ रहस्यों का सबके समझने योग्य हिन्दी भाषा में विशद् रूप से वर्णन किया गया है। जो आनन्द संस्कृतज्ञ विद्वानों को मूल 'रघुवंश' के पढ़ने में आता है वही आनन्द हिन्दी जानने वालों को इसमें भी प्राप्त होता है।''

'रघुवंश' की भूमिका लम्बी है और इसमें कालिदास पर विस्तार से विचार किया गया है। कालिदास का समय, कालिदास की जन्मभूमि, कालिदास की कविता, कालिदास और शेक्सपियर, कालिदास और भवभूति, कालिदास की उपमायें, कालिदास का शास्त्र–ज्ञान, कालिदास के ग्रन्थ आदि उपशीर्षकों में बांटकर लिखी गई इस भूमिका का अपना विशिष्ट महत्त्व है। भूमिका के पश्चात् द्विवेदी जी ने 1. सन्तान–प्राप्ति के लिए राजा दिलीप का वशिष्ठ के आश्रम को जाना, 2. नन्दिनी से राजा दिलीप का वर पाना, 3. रघु का जन्म और राज्याभिषेक, 4. रघु का दिग्विजय, 5. अज का जन्म और इन्दुमती के स्वयंवर में जाना, 6. इन्दुमती का स्वयंवर, 7. इन्दुमती से अज का विवाह, 8. अज का विलाप, 9. दश रथ का राज्यशासन, वसन्तोत्सव और आखेट, 10. रामचन्द्र आदि चारों भाइयों का जन्म, 11. परशुराम का पराभव, 12. रावण का वध, 13. रामचन्द्र का अयोध्या को लौटना, 14. सीता का परित्याग, 15. रामचन्द्र का स्वर्गारोहण, 16. कुश की राज्यप्राप्ति, अयोध्या का फिर से बसना, ग्रीष्म का आगमन और जल–विहार आदि, 17. राजा अतिथि का वृत्तान्त, 18. अतिथि के उत्तरवर्ती राजाओं की वंशावली, एवं 19. अग्निवर्ण का आख्यान शीर्षक सर्गों में सहजता से

घटना–प्रवाह को बांधा है।

'कुमारसंभव' के औपन्यासिक रूपान्तर का प्रकाशन 1915 में इण्डियन प्रेस, प्रयाग से हुआ था। इस रूपान्तर की भूमिका में स्पष्ट रूप से द्विवेदी जी ने लिखा है कि ''एक तो संस्कृतज्ञों की संख्या ही बहुत कम है, दूसरे प्राचीन काव्यों के पद्यात्मक अनुवादों में मूल की समानता लाना बहुत कठिन काम है। अतएव मूल काव्य पढ़कर बहुत ही कम लोग उनसे आनन्द–प्राप्ति कर सकते हैं। पद्यात्मक अनुवाद, इन पूर्वोक्त कारणों से अब तक उनसे भी अधिक–संख्यक लोग लाभ नहीं उठा सके। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर हम आज कालिदास के दूसरे महाकाव्य 'कुमारसम्भव' का भी गद्यात्मक अनुवाद हिन्दी भाषा में किये देते हैं।''

द्विवेदी जी के अनुसार इस काव्य के सत्रह सर्ग हैं, परन्तु पहले के आठ ही सर्गकालिदास के माने जाते हैं। विद्वानों की राय है कि नौ सर्ग किसी ने पीछे से जोड़ दिये हैं। यह बात इन पिछले नौ सर्गों की भाषा और कविता से भी पुष्ट होती है। इसके अलावा पंच–महाकाव्यों पर टीका लिखने वाले मल्लिनाथ की लिखी हुई टीका आरंभिक आठ सर्गों की ही उपलब्ध है। पिछले नौ सर्गों की टीका सीताराम नामक किसी दाक्षिणात्य पंडित की लिखी मिलती है। इससे भी इस बात की पोषकता होती है कि मल्लिनाथ के समय में भी 'कुमारसम्भव' के आठ ही सर्गकालिदास के माने जाते थे। इसी तर्क के आधार पर द्विवेदी जी ने भी आठ ही सर्गों का अनुवाद किया है।

अपनी प्रवृत्ति और अपने युग के स्वभाव के अनुकूल ही द्विवेदी जी ने इस अनुवाद में उन्मुक्त श्रृंगार के अंशों को संपादित कर दिया है। उनका कहना है कि ''इस अनुवाद को बच्चों और कुल–कामिनियों के भी पढ़ने योग्य बनाने के लिए हमने एक बात और भी की है। रघुवंश के सदृश इसमें भी यत्र–तत्र जो विशेष श्रृंगार–रसात्मक भाव आ गये हैं उनको या तो हमने छोड़ दिया है या कुछ परिवर्तित रूप में प्रकारान्तर से लिख दिया है। परन्तु पहले सात सर्गों में ऐसे स्थल दो ही चार हैं, अधिक नहीं। हाँ, आठवें सर्ग में इस तरह के कोई बीस पच्चीस श्लोक अवश्य हैं। अतएव विशेषतः उसी सर्ग में ऐसे भावों से अधिक बचना पड़ा है। भूमिका के अतिरिक्त इसमें पार्वती का जन्म, देवताओं का ब्रह्मा के पास जाना और वर पाना, मदन–दहन, रति का विलाप, पार्वती की तपस्या और फल–प्राप्ति, पार्वती की मंगनी, पार्वती का विवाह, तथा शिव–पार्वती का वन–विहार आदि आठ सर्ग रखे गये हैं।

इस अनुवाद की भाषा बड़ी ही चलती हुई सी है। उदाहरण के लिए रति का विलाप सर्ग का यह हिस्सा देखा जा सकता है ''पापी दैव ने यह क्या किया ! मारा तो उसने अवश्य, परन्तु उसे अच्छी तरह मारना भी न आया। मेरे पति को तो उसने जला दिया और मुझे छोड़ दिया। उसका इस तरह मुझे बचा रखना यद्यपि आधी ही हत्या के समान है, तथापि उसने मुझे भी मार ही सा डाला। क्योंकि पति के बिना मैं कितने दिन प्राणधारण कर सकूंगी? जिस वृक्ष से लता लिपट रही है उसे यदि हाथी उखाड़ फेंके, तो क्या वह लता नष्ट होने से बच

जायगी? वृक्ष के साथ ही लता का भी अवश्य ही पतन हो जायगा। अतएव अपने प्राणवल्लभ का आधा अंग होने के कारण मैं भी जीती नहीं रह सकती। इससे अब एक काम कर। तू मेरे पति का बन्धु है। मैं भी तुझे अपना बन्धु ही समझती हूँ। और समय पर सहायता करना बन्धु का कर्त्तव्य ही है। अब तू मुझ दुखिया पर दया करके मुझे किसी तरह मेरे पति के पास पहुँचा दे। मैं तुझसे अधीनतापूर्वक अग्निदान की याचना करती हूँ। मेरे लिए ऐसा करना अनुचित नहीं। पति का अनुगमन करना तो स्त्रियों का कर्त्तव्य ही है।''

'मेघदूत' द्विवेदी जी को अत्यन्त प्रिय था। 'मेघदूत' का उनका किया अनुवाद 1917 में इण्डियन प्रेस, प्रयाग से छपा था। इस अनुवाद से पहले ही उन्होंने 'सरस्वती' में अगस्त, 1911 के अंक में 'मेघदूत' पर एक लेख लिखा था। इस अनुवाद की भूमिका के रूप में द्विवेदी जी ने उसी लेख को उद्धृत किया है। उनका मानना है कि ''मेघदूत' की कविता सर्वोत्तम कविता का बहुत ही अच्छा नमूना है। उसे वही अच्छी तरह समझ सकता है और उससे पूरा पूरा आनन्द भी वही उठा सकता है जो स्वयं कवि है। कविता करने ही से कवि–पदवी नहीं मिलती। कवि के हृदय को– कवि के काव्यमर्म को– जो जान सकते हैं; वे भी एक प्रकार के कवि हैं। किसी कवि के काव्य का आकलन करने वाले का हृदय यदि कहीं कवि के ही हृदय–सदृश हुआ तो फिर क्या कहना है। इस दशा में आकलनकर्त्ता को वही आनन्द मिलेगा जो कवि को उस कविता के निर्माण करने से मिला होगा। जिस कविता से जितना ही अधिक आनन्द मिले उसे उतनी ही अधिक ऊँचे दर्जे की समझना चाहिए। इसी तरह, जिस कवि या समालोचक को किसी काव्य के पाठ या रसास्वादन से जितना ही अधिक आनन्द मिले उसे उतना ही अधिक उस कविता का मर्म जानने वाला समझना चाहिए। इस कविता का विषय–यहाँ तक कि इसका नाम भी– कालिदास के परवर्ती कवियों को इतना पसन्द आया है कि इसकी छाया पर हँस–दूत, पदांक–दूत, पवन–दूत और कोकिल–दूत आदि कितने ही दूत–काव्य बन गये हैं। यह इस काव्य की लोकप्रियता का प्रमाण है।''

'मेघदूत' के वैशिष्ट्य की चर्चा करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है कि ''कविता – कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का 'मेघदूत' एक ऐसे भव्य भवन के सदृश है जिसमें पद्यरूपी अनमोल रत्न जड़े हुए हैं – ऐसे रत्न, जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है। ईंट और पत्थर की इमारत पर जल–वृष्टि का असर पड़ता है, आंधी–तूफान से उसे हानि पहुँचती है, बिजली गिरने से वह नष्ट–भ्रष्ट भी हो सकती है। पर इस अलौकिक भवन पर इनमें से किसी का कुछ भी जोर नहीं चलता। न वह गिर सकता है, न घिस सकता है, न उसका कोई अंश टूट ही सकता है। काल पाकर और इमारतें जीर्ण होकर भूमिसात् हो जाती हैं। पर यह अद्भुत भवन न कभी जीर्ण होगा और न कभी इसका ध्वंस ही होगा। प्रत्युत इसकी रमणीयता–वृद्धि की ही आशा है।'' द्विवेदी जी ने बताया है कि 'मेघदूत' में कालिदास ने आदर्श प्रेम का चित्र खींचा है। निःस्वार्थ और निर्व्याज प्रेम का जैसा चित्र 'मेघदूत' में देखने

को मिलता है वैसा और किसी काव्य में नहीं। 'मेघदूत' के यक्ष का प्रेम निर्दोष है। और, ऐसे प्रेम से क्या नहीं हो सकता? प्रेम से जीवन पवित्र हो सकता है। प्रेम से जीवन को अलौकिक सौन्दर्य प्राप्त हो सकता है। प्रेम से जीवन सार्थक हो सकता है। मनुष्य–प्रेम से ईश्वर–सम्बन्धी प्रेम की उत्पत्ति भी हो सकती है। अतएव कालिदास का 'मेघदूत' करुणरस से परिप्लुत है तो क्या हुआ। वह उच्च प्रेम का सजीव उदाहरण है।

द्विवेदी जी ने एक प्रश्न उठाया कि कालिदास को इस काव्य के निर्माण का बीज कहाँ से मिला? इसका उत्तर भी उनके अनुसार ''इत्याख्यातेपवनतनयंमैथिलीवोन्मुखी सा'' इत्यादि इसी काव्य में है–

इतने कहततोहिंमम प्यारी।
जिमिहनुमत को जनक दुलारी।।
सीस उठायनिरखि घन लै है।
प्रफुलित चित ह्वै आदर दै है।।

यक्ष की तरह रामचन्द्र को भी वियोग–व्यथा सहनी पड़ी थी। उन्होंने पवन सुत हनुमान को अपना दूत बनाया था। यक्ष ने मेघ को दूत बनाया। मेघ का साथी पवन है। हनुमान की उत्पत्ति पवन से है। अतएव दोनों में पारस्परिक सम्बन्ध भी हुआ। यह सम्बन्ध काकतालीय सम्बन्ध हो सकता है। परन्तु मैथिली के पास रामचन्द्र का संदेशा भेजना वैसा सम्बन्ध नहीं। बहुत सम्भव है, कालिदास को इसी सन्देश–स्मृति ने प्रेरित करके इस काव्य की रचना कराई हो। बहुत सम्भव है, यह मेघसन्देशकालिदास ही का आत्म–सन्देश हो।

'मेघदूत' के इस गद्यानुवाद की भाषा खूब सुथरी हुई है। द्विवेदी जी ने इसमें भी कालिदास के आशय को ही प्रकट करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार उन्होंने इसमें आँख मूंदकर शब्दार्थ का अनुसरण न करके केवल भावार्थ का अनुसरण किया है। उदाहरण के लिए 'मेघदूत' का यह आरंभिक हिस्सा देखा जा सकता है– ''कुबेर की राजधानी अलकापुरी में एक यक्ष रहता था। वह अपने स्वामी कुबेर के यहाँ किसी पद पर अधिष्ठित था। अपनी प्रियतमा पर उसका प्रेम असीम था। उसका मन सदा यक्षिणी ही में लगा रहता था। इस कारण, जिस काम पर वह नियत था वह उससे अच्छी तरह न होता था। उससे बहुधा भूलें हो जाया करती थीं। अतएव कुबेर को उसे डांटना पड़ता था। इस डांट–डपट का जब उसपर कुछ भी असर न हुआ तब कुबेर ने क्रोध में आकर उसे अपने यहाँ से निकाल दिया। उसने आज्ञा दी– जा, तू यहाँ से निकल जा। पूरा एक वर्ष तू कहीं बाहर जाकर रह। जिसके प्रेम–पाश में फंसे रहने के कारण तुझसे अपना काम नहीं होता; उसके दर्शन भी तुझे अब एक वर्ष तक नहीं होंगे। तेरे लिए यही दण्ड उचित है।

यक्ष को विवश होकर कुबेर की इस आज्ञा का पालन करना पड़ा। उसकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। अलका छोड़कर वह रामगिरि पर्वत पर रहने चला गया। यह वही

पर्वत है जहाँ वनवास के समय राम–लक्ष्मण के साथ सीताजी कुछ समय तक रही थीं। इस पर्वत के जलाशयों में सीताजी ने स्नान भी किया था। इस कारण उनका जल अत्यन्त पवित्र है। रामगिरि सदा हरा–भरा रहता है। उस पर तरह–तरह की लताओं और तरूओं की बहुत अधिकता है। इस कारण उसके आश्रमों में सदा शीतल छाया बनी रहती है। ऐसे ही छायादार एक सुन्दर आश्रम में यक्ष रहने लगा।''

'कालिदास और उनकी कविता' का पहला संस्करण राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर, जबलपुर से 1920 में आया था। 1933 में तरूण भारत ग्रंथावली कार्यालय, प्रयाग से जब इसका दूसरा संस्करण छपा तब उसमें द्विवेदी जी ने लिखा कि कालिदास के विषय में उन्हें कोई भी प्रकाशित पुस्तक नहीं दिखाई पड़ी। इससे यह प्रकट होता है कि कालिदास पर हिन्दी में प्रकाशित यह पहली पुस्तक है। दिलचस्प बात यह भी है कि जब यह किताब छपी तो उसके शीर्षक के साथ 'साहित्य का एक सुन्दर आलोचनात्मक ग्रन्थ' भी छपा हुआ था। इस किताब के अधिकांश हिस्से 1905–11 के 'सरस्वती' के अंकों में छपते रहे थे। चूंकि इस किताब से पहले हिन्दी में कालिदास से सम्बन्धित कोई किताब उपलब्ध नहीं थी इसलिए यह आवश्यक था कि इसमें द्विवेदी जी उन विषयों पर विचार करते जिनसे हिन्दी पाठकों के बीच कालिदास सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारी पहुँच सके और भरसक कालिदास सम्बन्धी विवादों पर भी कुछ रोशनी पड़ सके। यही कारण है कि द्विवेदी जी ने इसके आरम्भ में ही लगभग पचास पृष्ठों में कालिदास के आविर्भाव काल पर ही विचार किया है। आगे के अध्यायों में उन्होंने कालिदास के समय का भारत, कालिदास की विद्वता, कालिदास के ग्रन्थों की आलोचना, कालिदास के 'मेघदूत' का रहस्य, कालिदास की वैवाहिकी कविता, कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल, और कालिदास की दिखाई हुई प्राचीन भारत की एक झलक जैसे विषयों पर लिखा है। अन्त में परिशिष्ट की तरह कालिदास से सम्बन्धित दो अन्य लेख, पहला शकुन्तला और दूसरा कालिदास के काव्यों में नीतिबोध को शामिल किया गया है।

'शकुन्तला' शीर्षक लेख असल में नन्दलाल विश्वनाथ दुबे द्वारा 1888 में किए कालिदास के 'शाकुन्तल' नाटक के गद्य–पद्यात्मक अनुवाद पर केन्द्रित है। द्विवेदी ने इसमें उनके द्वारा अपनाई गई अनुवाद–पद्धति की जमकर खबर ली है। लेख का अन्त करते हुए उन्होंने लिखा है ''सो ऐसे अच्छे अनुवाद (राजा लक्ष्मण सिंह कृत पद्यानुवाद) के होते भी दुबेजी ने अपना अनुवाद प्रकाशित करने की जरूरत समझी। इसे हम साहस के सिवा और क्या कहें। अब दुबेजी से प्रार्थना है कि अनुवादक की कीर्त्ति–रक्षा के लिए इस अनुवाद की अवशिष्ट कापियों को सन्दूक में बन्द करके मजबूत ताला लगा दें– न बेचें, न वितरण करें। क्योंकि इसका कोई भी अंश अच्छा नहीं। इसके दो–एक प्रमाण हम और दिये देते हैं। राजा दुष्यन्त कहता है –

मन्दमन्द विलास पूर्व विलमी जाती नितम्बी रही,
मा जा जो सखि ने कह्यो उ तिहिपैसाक्षेप रूठी रही।
दीन्ही औ पुनि दृष्टि अन्य दृग सो भी आत्मचेष्टा हरी,
जाने में प्रति ही कटाक्ष करती कामातुरी सुन्दरी।

इस उलझी हुई गाँठ को मूल पुस्तक देखकर चाहे कोई सुलझा भी ले, पर 'मा जा' को दुबेजी के सिवा मजाल क्या जो कोई सुलझा सके। उसका अर्थ है– 'मत जा'। 'मा' संस्कृत, 'जा' हिन्दी ! इस कायदे से दुबेजी 'डोंट जा' और 'नको जा' आदि प्रयोग करने से भी 'बैक पद' नहीं हो सकते!'' दूसरे लेख 'कालिदास के काव्यों में नीति–बोध' में द्विवेदी जी ने कालिदास की रचनाओं में आत्म–विषयक नीति, कौटुम्बिक नीति, सामाजिक नीति और राजकीय नीति की विवेचना की है।

'कालिदास की निरंकुशता' के हिस्से 'सरस्वती' में द्विवेदी जी के सम्पदाकत्व सम्भालने यानि जनवरी, 1911 के बाद से ही छपने लगे थे। असल में यह पुस्तकाकार छपा एक सुदीर्घ निबन्ध ही है। आरम्भ में ही निरंकुशता का आशय स्पष्ट करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है ''जिस समय कविता करने की इच्छा या कामना उच्छृंखल हो उठती है उस समय मन में उत्पन्न हुए विकार प्रकट किए बिना नहीं रहा जाता। ऐसे समय में विचारों या विकारों को शब्दरूपी सांचे में ढालने से एक प्रकार का विलक्षण आनन्द होता है। उसका अनुभव इतर जन नहीं कर सकते, कवि ही कर सकते हैं। उस प्रमोद–मद में मस्त होकर कवि–जन लोकरीति, शास्त्ररीति और शब्दशास्त्र आदि के नियमों का कभी–कभी उल्लंघन कर जाते हैं। यह बात जान–बूझकर भी हो सकती है और बे–जाने भी। ऋषियों और मुनियों तक से ये बातें हो सकती हैं और हुई भी हैं –''मुनिनां च मतिभ्रमः''। आदराधिक्य के कारण टीकाकार और समालोचक लोग कवियों की कविता के अन्तर्गत ऐसे ऐसे स्थलों को भूल या प्रमाद में नहीं गिनते। उन्हें वे कवि की निरंकुशता कहते हैं।''

द्विवेदी जी का मानना है कि महाकवि कालिदास भी इस निरंकुशता से नहीं बचे हैं। इस निबन्ध में द्विवेदी जी ने कालिदास की रचनाओं में उपमा की हीनता, उद्वेगजनक उक्ति, अनौचित्य–दर्शक उक्ति, रस–सम्बन्धी अनौचित्य, व्याकरण–सम्बन्धी अनौचित्य, नाम–सम्बन्धी अनौचित्य, इतिहास–सम्बन्धी अनौचित्य, यतिभंग, पुनरूक्ति, अधिकपदत्व, श्रुतिकटुत्व, जुगुप्साव्यंजक, ग्राम–भावव्यंजक, अविमृष्टविधेयांश, निहितार्थता, क्रमभंगता आदि से सम्बन्धित निरंकुशता की चर्चा की है।

हालांकि, द्विवेदी जी को इस बात की भी आशंका है कि ''इस लेख का नाम–निर्देश देखकर ही शायद कोई पाठक बिगड़ उठें। महाकवि कालिदास और निरंकुशता! कविकुलगुरु पर ऐसा गुरुतर दोषारोप!! छोटे मुँह बड़ी बात !!! ऐसा आरोप जो लोग हम पर करें, प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं।...खण्डन, मण्डन और समालोचन की रीति परम्परा से चली

आई है। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट तक ने अपने पूर्वाचार्यों के मत की समालोचना की है और कहीं—कहीं बड़े कड़े शब्दों में की है। औरों की तो बात ही क्या। कालिदास के 'रघुवंश' की टीका मल्लिनाथ, हेमाद्रि, सुमतिविजय, वल्लभ और दिनकर मिश्र आदि कितने ही विद्वानों ने की है और पूर्व टीकाकारों की भूलें दिखलाई हैं। इन लोगों ने यथास्थान कालिदास पर भी चोटें की हैं और उन दोषों का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है। अलंकार शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थों में तो कालिदास आदि पुराने कवियों की कविता के दोष बड़ी ही निष्ठुरता से दिखाये गये हैं। इस दशा में इन लोगों के दिखलाये या निर्माण किये हुए मार्ग से यदि हमारे समान अल्पज्ञ मनुष्य भी जाने का यत्न करे, तो कोई आक्षेप की बात नहीं।''

द्विवेदी जी ने इस लेख पर लगाये जाने वाले संभावित आक्षेपों का अनुमान कर ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि ''पाठक, विश्वास कीजिए यह लेख हम कालिदास के दोष दिखला कर उनमें आपकी श्रद्धा कम करने के इरादे से नहीं लिख रहे। ऐसा करना हम घोर पाप समझते हैं— भारी कृतघ्नता समझते हैं। इसे आप केवल वाग्विलास समझिए। यह केवल आपका मनोरंजन करने के लिए है। कालिदास को हम महाकवि ही नहीं समझते हैं। हम उन्हें देवता समझते हैं, पूजनीय समझते हैं, अपना गुरु समझते हैं। अभी इस एक वर्ष की बीमारी में — और बीमारी अब तक गई नहीं— हमने गीता नहीं पढ़ी, श्रीमद्भागवत का पारायण नहीं किया, वाल्मीकिरामायण नहीं देखा। जब कभी हमने कुछ पढ़ा है, 'रघुवंश' पढ़ा है। इससे आप जान सकेंगे कि हमारे हृदय में कालिदास का कितना आदर है। और, यह इसी आदर और अवलोकन का फल है जो हम यह लेख लिखने बैठे हैं।''

फिर भी, द्विवेदी जी के इस लेख का खण्डन करने के उद्धेश्य से कलकत्ते से निकल रही पत्रिका 'भारतमित्र' में एक लेखमाला चली थी 'निरंकुशता—निदर्शन'। इसे लिखने वाले थे जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, जिन्होंने 'मनसाराम' नाम से इसे लिखा था। बाद में इसी पत्रिका के जुलाई, 1911 के अंक में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का निबन्ध 'निदर्शन पर सम्मति' प्रकाशित हुआ। गुलेरी जी ने साफ शब्दों में लिखा कि इन लेखों को पढ़ने से लोगों को कालिदास की कृति के अनुशीलन की ओर रुचि हुई है इसलिए द्विवेदी जी के इन लेखों को महत्व देना चाहिए। गुलेरी जी के साथ—साथ महामहोपाध्याय पण्डित गंगानाथ झा, पण्डित दुर्गा प्रसाद द्विवेदी, श्री विजयधर्म सूरि, आर. कृष्णमाचार्य संस्कृत विद्वानों की प्रशंसा भी द्विवेदी जी को मिली। इससे उत्साहित होकर द्विवेदी जी ने बाद में 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना' शीर्षक एक और सुदीर्घ निबन्ध लिखा।

डॉ. प्रभात कुमार मिश्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी
मो. : 09435370523

✧ ✧ ✧

यशोधरा में राहुल का स्थान तथा गुप्त जी का संदेश

डॉ. शशिभूषण प्रसाद सिंह

निश्चय ही, ग्रंथ में राहुल की अवतारणा यदि नहीं होती, तो एक ओर जहाँ कवि को काव्य–रचना के लिए कथावस्तु का अभाव खटकने लगता, वहाँ यशोधरा के सम्पूर्ण जीवन के विषादमय हो जाने पर ग्रंथ की प्राणधारा की प्रकृति ही उन्हें बदल देनी पड़ती। बहुत संभव है, यशोधरा आत्महत्या भी कर डालती। यह राहुल ही है, जिससे मीठी–मीठी बातें करके, वह अपने भग्न हृदय की मलहम पट्टी में समर्थ होती है।

वात्सत्य स्नेह मनुष्य मात्र की एक सहज प्रवृति है। साथ ही, संतान का मोह भी मनुष्य को संसार में लिप्त रखने का एक ऐसा प्रबल कारण है, जिसका अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है। नारी भोग प्रधान सभ्यता की उपयोग मात्र नहीं, वह उत्सर्गमय प्रेम की प्रतीक है। उसे वासना अथवा शारीरिक विकृतियों को विवशता समझना एक भूल है। मूलतः नारी एक सहृदय सृजन शक्ति है। सामाजिक सीमाओं के अनुसार उसके अनेक अवस्थाएँ है। वह कुमारी, कामिनी, जाया तथा जननी है। हाँ, उसके इन विविध रूपों में उसका मातृत्व स्थान ही सर्वोपरि है।

जाया ही जननी है। जाया का प्रेम जहाँ पतिप्रेम है, जननी का प्रेम संतान प्रेम। जब जाया जननी–दशा को प्राप्त कर लेती है, तब वह अपनी संतान के उत्थान–पतन का कारण स्वयं बन जाती है। पति–वंचिता नारियों की तो समस्त भावनाएँ ही आकर पुत्र–प्रेम में केन्द्रित हो जाती है। नारियों के लिए उसका पुत्र ही उसका सर्वस्व होता है न, अतः विरहिणियाँ तो उस पुत्रों का मुख देखकर ही जीवित रहती आई हैं।

यशोधरा भी एक उपेक्षित परित्यक्तता नारी है। सिद्धार्थ उसके प्रियतम उसे निद्रा देवी की गोद में छोड़कर चले गये हैं। जाग्रत होते ही उसके हृदय में

एकाएक विरह जनित हाहाकार, तूफान, बवंडर मचने लगता है। आवेश वश वह मृत्यु को वरण कर अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देना चाहती है, पर उसी पर्यक पर उसका मनोहर शिशु राहुल जो सो रहा है। वह थम जाती है

स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार।
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का भार।।

उसका छिन्न–विछिन्न ह्रदय अपने पुत्र की मुख–छवि निहार कर धैर्य धारण करता है। यशोधरा मरते–मरते जी उठती है। अपने राहुल को आलिंगित कर वह आत्म संतोष के लिए कह उठती है–

मेरी मलिन गुदड़ी में भी है राहुल–सा लाल।

डॉ0 ब्रह्मादेव ब्रह्मचारी शास्त्री ने अपने ग्रन्थ 'गुप्त जी की कारुण्य धारा' में लिखा है ''राहुल का कथानक की माला में पिरोया जाना गुप्त जी की भावुकता की मनोवैज्ञानिकता का परिचायक है।''

डॉ0 वासुदेवनन्दन ने लिखा है, ''यशोधरा में राहुल का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस काव्य ग्रन्थ के कथानक में राहुल मध्यम कड़ी का है। सच है– इसके द्वारा कवि ने अनेक कार्य किये है :

(क) वात्सल्य प्रेम की सुन्दर उद्भावना
(ख) यशोधरा के विरहिणी और मानिनी रूप की अवतारणा
(ग) गौतम की पलायनवादी नीति की कटु भर्त्सना
(घ) आदर्शवाद तथा वैष्णवता की रक्षा एवं
(ड़) राहुल–जननी के संवाद द्वारा नवीन नाटकीय शैली की सृष्टि।

निश्चय ही, ग्रंथ में राहुल की अवतारणा यदि नहीं होती, तो एक ओर जहाँ कवि को काव्य–रचना के लिए कथावस्तु का अभाव खटकने लगता, वहाँ यशोधरा के सम्पूर्ण जीवन के विषादमय हो जाने पर ग्रंथ की प्राणधारा की प्रकृति ही उन्हें बदल देनी पड़ती। बहुत संभव है, यशोधरा आत्महत्या भी कर डालती। यह राहुल ही है, जिससे मीठी–मीठी बातें करके, वह अपने भग्न ह्रदय की मलहम पट्टी में समर्थ होती है। हाँ, अब उसका दुःख उसकी खींझ, उसका दुख, उसकी लगन अपने स्वामी की अमानत राहुल में ही सिमटकर निखर उठते हैं। वह उसे दुलारती–पुचकारती है तथा स्वयं गल–गलकर भी उसे पालती–पोसती और बड़ा करती है।

यशोधरा में वात्सल्य रस की मनोरम सृष्टि हुई है। गुप्त जी ने विरहिणी माता के ममतामय और वात्सल्य विभोर ह्रदय के अंतरंग को असामान्य सफलतापूर्वक दिखलाया है। राहुल अपनी माता के डगमगाते जीवन का एकमात्र अवलम्ब है। वात्सल्य वर्णन–क्रम में कवि

ने गार्हस्थ जीवन की घटनाओं का चित्रण प्रचुरता में किया है। फलतः इस प्रकार के वर्णन मर्मस्पर्शी और आनन्ददायक है। अति सामान्य घटनाओं को भी सजीवता और स्वाभाविकता के रंग में रंगकर गुप्त जी ने अपने असाधरण कवि–व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

यशोधरा की विरहाग्नि अभी शान्त नहीं हुई है कि सहसा राहुल, सोता राहुल जगकर रोने लगता है। यद्यपि वह उसे चुप करने का प्रत्यन करती है, पर माता के उद्वेलित मानस का वेग सहसा बढ़ जाता है, वह खींझ उठती है। अबला नारी की खींझ की सर्वाधिक पात्रता उसकी संतान में ही तो हुआ करती है न! किन्तु हाय रे भाग्य चुप कराते समय 'आँचल का दूध' न टपककर 'आँखो का पानी' टपक पड़ता है। वह झल्ला उठती है।

चुप रह, चुप रह, हाय! अभागे!
रोता है, अब किसके आगे।।

माँ की इन कठोर बातों को सुनकर राहुल और अधिक रोने लगता है। जो सर्वथा स्वाभाविक है। माता यशोधरा अपनी वेदना को राहुल से प्रायः छिपाती ही रहती है, इससे जननी–हृदय का अमर त्याग ही प्रकट होता है।

यशोधरा के मातृ–हृदय में करुणा की मंदाकिनी है। यत्र–तत्र उसके जननी रूप के साथ–साथ उसका विरहिणी रूप भी स्पष्टतया प्रकट हो जाता है। देखिए, नीचे जैसे स्थलों में उसका मातृत्व कुछ कुण्ठित सा हो गया है।

आ मेरे अवलम्ब बता क्यों? अम्ब–अम्ब कहता है।
पिता–पिता कह बेटा, जिससे घर सुना लगता है।।

यशोधरा में प्रकट राहुल के व्यक्तित्व को देख यह सुनिश्चित हो जाता है कि गुप्त जी बाल मानव के मर्मी थे। इन्होंने बाल–मनोवृत्तियों, मनोदशाओं और चेष्टाओं का इतना सुन्दर और स्वाभाविक अंकन किया है कि उनकी प्रतिमा पर मुग्ध हो गद्–गद् हो जाना पड़ता है। ग्रन्थ में अनेक ऐसे पद मिलते हैं, जिनमें आह्लादकता, मार्मिकता, तरलता, कोमलता और प्रांजलता है। कालक्रमानुसार वात्सल्यमयी यशोधरा का 'मधुर सलोना' अपने बचपन का मौन व्रत भंगकर पक्षी की भांति चहकने लगता है। सांसारिक वस्तुओं से वह अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए कभी–कभी प्रश्नों का ताँता–सा लगा देता है। कभी–कभी टालने के लिए विरह–व्याकुलता उस क्रम को भग्न भी कर डालती है, पर प्रश्न करना तो राहुल का जैसे जन्मजात गुण हो। जब माँ उससे कहती है–

पी–पी किन्तु दूध की तुझे क्या सुधी रहती?
तो उत्तर में वह अपनी टेंक पर डँटा रह जाता है,
नहीं पीऊँगा–नहीं पीऊँगा
पय हो चाहे पानी।।

और फिर यशोधरा को राहुल के मनोनुकूल ही आचरण करना पड़ता है। विजय की खुशी में राहुल कह उठता है–

निष्फल दो–दो बार गई।
हार गई, माँ हार गई।

प्रश्न पूछने पर कभी राहुल अघाता नहीं। यथासंभव राहुल जननी उसका समाधान भी करती जाती है। प्रश्न द्रौपदी के दुकूल की भाँति बढ़ते ही जाते है। किशोर प्रश्नकर्त्ता को क्या मालूम की माँ के दिल पर क्या गुजर रही है। राहुल कभी तो अपने पिता के विषय में अपनी माँ से पूछता है और कभी उससे कोई कहानी सुनाने का आग्रह करता है। ऐसे स्थलों पर गुप्त जी की कौटुम्बिकता अपनी पराकष्ठा पर पहुँच गई है। यशोधरा कहानी सुनाने में भी शिक्षा का आदर्श नहीं भूलती, क्योंकि उसके विरह 'गुदड़ी का लाल' ही तो उसकी सांत्वना का साधन है। जननी यशोधरा अब यह अच्छी तरह समझने लगती है कि नारी के मातृत्व रूप का गौरव गौतम की तपस्या से किसी भी प्रकार कम नहीं। यशोधरा के मानिनी रूप का भी एकमात्र आधार राहुल ही है। वह मानिनी इसलिए है चूँकि उसकी गोद 'राहुल जैसे लाल' से भर हुई है। सच है, शिशु नारी की वैसी आशा है, जिसके बल पर वह अनेक बाधाओं–कष्टों का भी सामना करती है। गुप्त जी ने राहुल को गौतम और यशोधरा के बीच लाकर यह सिद्ध कर दिया है कि 'नारी मुक्ति मार्ग की बाधा नहीं, वरन् पुरुष के जीवन की पूर्णता है।'' राहुल और यशोधरा के मध्य वार्त्तालापों में कहीं–कहीं तो कवि द्वारा नारी हृदय का हाहाकार और कहीं वात्सल्य प्रेम एवं क्रीड़ा की सफल व्यंजना हुई है। कवि निश्चय ही राहुल की अवतारणा में पूर्ण सफल हुआ है। अपने राहुल की ही सहायता से तो यशोधरा अपने जीवन को अकलुष बनाकर आत्मोद्धार में सफल भी हो जाती है न।

भारतीय दर्शन में बौद्ध–धर्म में जन्मदाता भगवान गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा के चरित्र को केन्द्र में रखकर कवि मैथिलीशरण 'गुप्त' ने 'यशोधरा' का प्रणयन किया है। निश्चय की कवि का प्रयास सोद्देश्य है। कवि साहित्य के सम्बन्ध में भारतीय आस्था रखता है। कुछ दिन पूर्व पश्चिमी साहित्य में एक विवाद देखा गया था, जिसमें कला कला के लिए का नारा बुलन्द किया जाता था। किन्तु अब धीरे–धीरे कलावाद का यह गन्दला पानी उतर चला है और कला का सम्बन्ध जीवन से अनिवार्य मान लिया जाता है।

इस सम्बन्ध में गुप्त जी का दृष्टिकोण नितान्त उपयोगितावादी है। इस व्यवहारवादी जगत में जबकि शुद्ध मनोरंजन के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किये जाने वाले फिल्मों में भी जीवन के प्रति सन्देह की खोज की जाती है, तो साहित्य कलावाद का राग अलापकर चिर स्थायी कैसे हो सकता है? मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लोकरंजन स्वरूप का आराधक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की नैतिकता का वाहक कवि कभी उच्छृंखलता का समर्थक हो भी नहीं सकता था। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की–

''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।'

ज्ञातव्य है कि उसमें उपदेश नहीं, उपदेश का मर्म होना चाहिए। इसी समन्वय की भूमि पर पाश्चात्य आलोचक ड्राइडेन तथा संस्कृत काव्य शास्त्र के पण्डित आचार्य मम्मट भी है।

उपर्युक्त संदर्भ में भी यशोधरा में कवि के संदेश की चर्चा करते हुए, स्वर्गीय आचार्य धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने लिखा है कि गुप्त जी यद्यपि काव्य के द्वारा राष्ट्र, जाति अथवा मानवता को सीख देते हैं, फिर भी वे कवि ही बने रहते है। तात्पर्य यह है कि उनका रूप उपदेशक का नहीं होने पाता है। रचना स्रोत के दृष्टिकोण से 'यशोधरा' भगवान बुद्ध के संन्यास ग्रहण एवं निवृत्ति मार्ग की महत्ता का प्रतिपादन है, किन्तु भारतीय संस्कृति एवं वैष्णव भावना के अनन्योपासक कवि ने सामाजिक मर्यादाओं के पालन की ओर इंगित करना चाहा है। इतनी बात तो सच है कि विश्व की प्रस्तुति ही सब कुछ नहीं है। जो दिखलाई पड़ रहा है उसके अतिरिक्त भी कुछ है तो संसार की नश्वरता के बावजूद भी आत्मा की शाश्वतता कायम है। गौतम की प्राथमिक अनुभूति 'घूम रहा है कैसा चक्र? इस बात की अभिव्यक्ति है कि काल एवं भाषा के चक्र में पीसता संसार जीवन के मूल उद्देश्य को ही भूल बैठा है। दिग्भ्रमित संसार की इस गति में मनचाहा चेतने 'नवनीत' तो दूर ही रह जाता है, जो शेष बचता है वह निस्सार होता है। इस सिद्धांत के अध्यात्म की महत्त्व स्थापना का प्रयास है।

गुप्त जी ने भौतिकवादी दुनिया में अध्यात्म के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी अतिवाद का 'खण्डन' किया है। गौतम का दृष्टिकोण गृहत्याग, असामाजिक होने के कारण अव्यावहारिक भी है। संसार के शून्य क्षणिक और दुःखमय से 'परिणाम' पाने के लिए गौतम ने भव को राम–राम कहकर जो महाप्रयाण किया है। कवि का संदेश उसका विरोध करता है। अपने इस विचार को अभिव्यक्त करने के लिए कवि के काव्य की नायिका यशोधरा का आश्रय लिया है। प्रो0 कृष्ण कुमार के शब्दों में–'यशोधरा गुप्त जी की भावनाओं की प्रतीक है, जबकि गौतम बुद्ध पलायनवादी मनोवृति के रूप है। वैराग्य के प्रतिनिधि पुरुष गौतम का विरोध स्वयं उनकी पत्नी द्वारा उपस्थित करके लेखक ने भावात्मक एवं कलात्मक दोनों ही कोटि की सफलता का प्रमाण दिया है।

यशोधरा आत्मसंयम, इन्द्रिय निग्रह एवं काम के संशोधित स्वरूप का समर्थन करती है। गौतम भोग में विनाश की छाया देखते है तो यशोधरा उसी सृष्टि के बीज का अंकुरण पाती है। अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जीत है, कहकर यशोधरा रागलोक की ओर संकेत करती है। गौतम विराग लोक के पथिक है तो यशोधरा मधुवन की संन्यासिनी। परित्यक्तता होने के कारण आधुनिक मनोविश्लेषक उसे कुठाराग्रस्त भी कह सकते है। फिर भी कवि के चिन्तन को वाणी देने वाली वही है।

'यशोधरा' का प्रणयन काल राजनीति के पूज्य बापू का काल रहा है। युगनेता गाँधी के गाँधीवाद से प्रेरणा ग्रहण की है। यही कारण है कि यशोधरा जीवन की आशा की स्फूर्ति प्रदान करने वाला एक जीवन काव्य है। इसमें आत्मसंयम एवं गार्हस्थ जीवन की मर्यादाओं के पालन का सिद्धांन्त प्रतिपादित है। 'साकेत' के राम के मुख से इस संदेश की अभिव्यक्ति की गयी है–

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।
कवि का यह संदेश आर्य–संस्कृति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है।

यशोधरा का अंतिम किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संदेश नारी–जीवन की महत्ता का प्रतिष्ठान है। इस स्थल पर हमारा ध्यान आचार्य द्विवेदी एवं अनन्य मानवतावादी कवि रवि बाबू की ओर जाता है। रवि बाबू की 'काव्येर' उपेक्षितों से प्रेरणा ग्रहणकर द्विवेदी जी की कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता हमारे सम्मुख आयी। 'यशोधरा भी इन्हीं अपेक्षितओं की श्रेणी में आती है। गौतम के सिद्धांत बौद्ध धर्म के रूप में संसार के कोने–कोने में फैले, किन्तु इस बात की ओर किसी का ध्यान नहीं गया कि भाषा एवं क्षणिक आकर्षण का उपादान कहकर नारी के जिस नारीत्व का अपमान स्वयं उसके पति द्वारा किया गया। उसने किस प्रकार तिल–तिलकर अपना जीवन गलाया होगा। जीवन के अरमानों का अतृप्त शयन एक बात है, शारीरिक ऐषणाओं का अपूर्ण रह जाना और भी हल्का है किन्तु सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अपेक्षा सचमुच बड़ी भयंकर है। इस अपेक्षा के बावजूद भी यशोधरा अपने व्यक्तित्त्व के बल पर हमारी सम्मान भावना की अधिकारिणी बन जाती है। स्वयं गौतम को भी उसकी सम्मान रक्षा के लिए उसके गेह पधारना पड़ता है।

प्रो0 कृष्ण कुमार के शब्दों में– 'हम दावे के साथ कह सकते है कि गुप्त जी ही एक ऐसे कवि हुए, जिन्होंने नारी–गुणों के प्रति सहानुभूति से प्रेरित होकर 'यशोधरा' काव्य का निर्माण किया। 'यशोधरा' में भारतीय ललनाओं के भव्य आदर्श की प्रतिष्ठा का जो प्रयास है, वह एक बार फिर से ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की स्थापना करता है। इन्हीं संवेदनाओं के साथ 'यशोधरा' प्रणीत है जिसमें भारतीय संस्कृति के अग्रणी कवि का व्यक्तित्व गूँजता है।

डॉ. शशिभूषण प्रसाद सिंह, सहायक प्राध्यापक, एम0एस0 इंस्टीच्यूट ऑफ एजुकेशन,
दानापुर–खगौल रोड, पटना, मो. : 7488615155

✧ ✧ ✧

आलोचक डॉ. नंदकिशोर नवल की कविता में प्रेम

पंडित विनय कुमार

नवल जी की कविता में जो प्रेम है वह बेहद मार्मिक और दर्दीला है। संभवतः यह कवि के द्वारा जीवन में किए गए किसी प्रेयसी के प्रति भावनात्मक आत्मीय उद्‌गार हो क्योंकि प्रेम सदा से चांद का प्रतीक रहा है। चांद को चातकी रात भर देखता रहता है, वह चातकी को रात भर सोने नहीं देता। संभव है यहाँ भी चांद कवि को सोने नहीं दे रहा है, जाहिर– सी बात है कि कवि को नींद नहीं आ रही है। यदि नींद आ रही होती तो कवि चांद को भला क्यों दोष देता?

मेरे प्यारे गुरुदेव डॉ. नंदकिशोर नवल, जिनकी स्मृतियाँ अब शेष हैं; आज जब मैं खाली समय में हूँ तो दो बातें याद आ रही हैं। एक तो अभी 3:00 बज कर 04 मिनट हो रहे हैं क्योंकि अक्सर उनके यहाँ डिक्टेशन लेने के लिए 4:00 बजे पहुँचा करता था, वह वक्त मुझे अभी भी सालता रहता है कि वह किस तरह 4 बजते–बजते मेरे आने की प्रतीक्षा करते रहते थे। और जब देर होने लगता था, तो वे गंभीरता के साथ कहा करते थे कि मेरी स्थिति उस गाय की तरह है जो दूध दुहाने के लिए लदबद और बेचैन है। दरअसल वे उस दिन का कोटा जो लिखाना रहता था, उसे लिखाने के लिए एकाग्र चित्त होकर मेरी बाट जोहते रहते थे। और सहजता के साथ ऐसा कहते थे कि कोई आकर मेरे इस ज्ञानरूपी दूध को दूह कर कागज के पन्नों पर उतार दे। दरअसल यह उन दिनों की घटना है, जब वे हिंदी कविता का इतिहास, रीति काव्य, दिनकर, सूरदास, तुलसीदास आदि पर लिखकर अपने लेखन कर्म से छुट्टी पाना चाहते थे। इन्हीं दिनों उनकी तबीयत धीरे–धीरे कमजोर पड़ने लगी थी और वे लेखन कार्य से हारने लगे थे। दूसरे शब्दों में कहना चाहिए कि वे अब थकने लगे थे। और उन्हें एक किसी ऐसे सहारे व्यक्ति की जरूरत थी जो उनके जीवन के लंबे अनुभव/ज्ञान के अनुभव को शीघ्रता के साथ लिपिबद्ध कर सके। यही वह वक्त था जिसे पूरा करने के बाद लेखन कार्य से छुट्टी

पाना चाहते थे। दूसरी बात यह थी कि मैंने ही उनकी ''कहाँ मिलेगी पीली चिड़िया'' और ''दवाभा'' का डिक्टेशन लिया था। आज और अभी मैं उनकी कविताओं को फिर से देखने का प्रयास कर रहा हूँ। जिसमें प्रेम भी हैं, प्रकृति भी है और सौंदर्य भी है। 'कहाँ मिलेगी पीली चिड़िया' का प्रथम संस्करण 1997 ई. में सारांश प्रकाशन नई दिल्ली से निकला था और कविता संग्रह के फ्लैप पर स्पष्ट शब्दों में अंकित था –– ''नंदकिशोर नवल हिंदी के सुपरिचित आलोचक हैं। इन्होंने अपने लेखक जीवन का आरंभ कवि के रूप में किया था, लेकिन अभी तक उस रूप को छिपा रखा था। प्रस्तुत संग्रह में ये दो दशकों (1958–1978) से लिखी गई अपनी कविताओं में से एक चयन लेकर उपस्थित हुए हैं। कविताओं में नई कविता की संवेदना का टटकापन है, वैसी ही चित्रात्मकता। इनकी अभिव्यक्तिगत पारदर्शिता किसी को भी प्रभावित करेगी। मूल संवेदना प्रकृति और प्रेम की है, जिसमें आगे चलकर युवा कविता का मोहभंग भी शामिल हो गया है। लेकिन यहाँ फैशन के रूप में कुछ भी नहीं है। जो भी है, हार्दिक और अकृत्रिम।'' अभियुक्ति में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि अन्य अनेक लेखकों की तरह मैंने भी अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत कविता से ही की। जहाँ तक मुझे याद है, 1960 तक में कवि– कर्म गंभीरता से करता रहा, पर उसके बाद कविता छूटने लगी और मैं आलोचना की तरफ मुड़ गया। इधर अपने पुराने कागज– पत्तर उलट रहा था, तो मालूम हुआ कि मैं 1978 तक किसी न किसी रूप में कविताएँ लिखता रहा हूँ। उनमें से चुनकर एक सौ तैंतालिस कविताओं का यह संग्रह अपने कवि जीवन की स्मृतिस्वरूप प्रकाशित करा रहा हूँ। प्रसाद जी के शब्दों में, 'कुछ शेष चिन्ह है केवल...'

अधिकांश कविताएँ छोटी हैं, जो किसी फैशन में नहीं लिखी गई, स्वयं लिख गई हैं। यह सरल चित्त की सरल अभिव्यक्ति हैं, कभी गहरी, कभी उतनी गहरी नहीं। निश्चय ही इनके बल पर आज के क्या, कल के भी कवियों में अपना नाम लिखाने की आकांक्षा से यह नहीं प्रकाशित की जा रहीं। सुविधा के लिए इन्हें रचना– क्रम से दिया जा रहा है।..... इसके प्रकाशन में सर्वाधिक रुचि मेरे अनुज भारत भारद्वाज ने दिखलाई है... अतः ये मेरे धन्यवाद के पात्र है।

– नंदकिशोर नवल

अतः आज उनकी इस कविता के बहाने हम उनके भीतर के कवि को देखना चाहते हैं। उनकी कविता है प्रेम। यह प्रेम सांसारिक होते हुए भी असांसारिक है, इस प्रेम में प्रकृति भी समाहित है, जीवन का सुख–दुख तो है ही। पाठक देखेंगे कि इसमें और भी बहुत कुछ है–

मेरे प्राणों के शिखर ज्योतिर्मय हो रहे हैं
मेरे मन के आम्रवन में मलय पवन का संचार हो रहा है
मेरे अंतर के शालिक्षेत्र पर चंदा का अमृत बरस रहा है
मेरे ह्रदय की डाली में कोंपलें फूट रही हैं
मेरी चेतना का क्षितिज परिधान बदल रहा है...

दूसरी कविता है– तुम्हारी याद

सोने के पहले
और जागने के बाद,
तुम्हारी याद
मानस के जल में ज्यों
पुरइन के पात–सा
पूनो का चांद।

तीसरी कविता है– मेरा प्रेम

माखन– सा कोमल,
जमुना के जल–सा तरल,
कदंब के पुष्पों – से माधन,
बांसुरी– सा बेधक
मेरा प्रेम क्या हुआ?

नवल जी की कविता में जो प्रेम है वह बेहद मार्मिक और दर्दीला है। संभवतः यह कवि के द्वारा जीवन में किए गए किसी प्रेयसी के प्रति भावनात्मक आत्मीय उद्‌गार हो, क्योंकि प्रेम सदा से चांद का प्रतीक रहा है। चांद को चातकी रात भर देखता रहता है, वह चातकी को रात भर सोने नहीं देता। संभव है यहाँ भी चांद कवि को सोने नहीं दे रहा है, जाहिर– सी बात है कि कवि को नींद नहीं आ रही है। यदि नींद आ रही होती तो कवि चांद को भला क्यों दोष देता? और तो और यह कहने का बहाना कदापि नहीं मिलता कि–– ''चांद यह सोने नहीं देता''। हाजीपुर के युवा कवि संजय शांडिल्य नवल जी की कविताओं का संकलन तैयार कर रहे हैं, जिसका शीर्षक यही है–– ''चांद यह सोने नहीं देता''। पिछले दिनों नवल जी के परलोकवासी होने के बाद एक दिन संजय शांडिल्य ने बताया था कि उनके इसी नए संग्रह पर काम किया जा रहा है और हम से भी कुछ ना कुछ सहयोग की उम्मीद उन्होंने कर रखी थी। बहरहाल, ये बातें तो आई गई हो गई और अचानक लॉक डाउन की अवधि भी 31 जुलाई, 2020 तक बढ़ा दी गई है। सो नवीनतम कविता– संग्रह अभी छपने की प्रत्याशा में है और जैसे ही यह लॉकडाउन की समाप्ति की घोषणा की जाएगी, तुरंत यह चिर प्रतिक्षित संग्रह शीघ्र ही पाठकों के सामने आएगा। यहाँ प्रसंग वश इस कविता को पूरा रख रहा हूँ ताकि पाठक गण कविता के वर्ण– विषय से परिचित हो सकें––

चांद यह सोने नहीं देता
किया था मैंने कभी प्रेम भूल कर सब नेम, योग –क्षेम
याद उसकी यह मुझे सोने नहीं देता
कान के आ पास जाता कूक
उठाता है कलेजे में हूक

किंतु खुलकर यह मुझे रोने नहीं देता
प्राण– चुनर में लगा है दाग
आग में जल भस्म यह होने नहीं देता।

पाठक देखेंगे कि इस कविता में तीन बातें हैं। पहला तो साफ है कि चांद कवि को सोने नहीं दे रहा है। दूसरा यह कि कवि स्वयं यह स्वीकार करता है कि अपने युवावस्था के दिनों में उन्होंने किसी से प्रेम किया था। प्रेम करना बुरा नहीं है, किंतु उसे छिपाना और उसे गलत दिशा में मोड़ना/ले जाना अवश्य बुरा है। इस दृष्टि से नवल जी दिल के साफ हैं क्योंकि उन्होंने बेहिचक प्रेम करने वाली बात को तहे दिल से स्वीकृति दी है। गौर करने की बात यह है कि यह उस समय की घटना है जब लोगों के द्वारा प्रेम किया जाना खतरे से खाली ना होता था, दूसरे अपमान अनल में जलना होता था अलग। इस तरह नवलजी एक ईमानदार तथा संवेदना से ओतप्रोत भावुक हृदय के कवि हैं, जिनमें हृदयगत निष्कपटता और निश्छलता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। कवि आगे यह भी कहने से पीछे नहीं रहता कि प्रेम का पारावार इतना बह चला है कि कलेजे में हूक उठा हुआ प्रतीत होता है, दूसरे प्रेम की पराकाष्ठा में कवि खुलकर रो भी नहीं पाता क्योंकि––

उठाता है कलेजे में हूक
किंतु खुलकर यह मुझे रोने नहीं देता

और 'दाग' लगने की बात से कभी मौन नहीं बल्कि इसकी सच्चाई से कवि मुखर हो गया है और कह ही तो देता है––

प्राण चुनर में लगा है दाग
आग में जल भस्म यह होने नहीं देता...

सच्चे प्रेम की पहचान यह है कि वह प्राण रूपी चुनर में दाग नहीं लगा सकता, वह प्रेम स्वार्थ युक्त नहीं, परमार्थ युक्त प्रेम रहता है। जैसा कबीर ने कहा था––

'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया... 'जीवन में लाख आपाधापी क्यों ना हो। अभाव, संत्रास, पीड़ा, तनाव और परेशानियों का दावानल क्यों ना हमारे हृदय और मन को आलोडित–विलोडित करें किंतु सच्चा प्रेमी मन अपनी आत्मा को, अपने प्राणों को, अपने चरित्र को कभी दाग लगने नहीं देता, उसे कभी दूषण युक्त रहने नहीं देता। सच तो यह है कि इसी प्रेम ने किसी भी कवि को महान बनाया होगा। जिस कवि के भीतर संवेदना नहीं, ज्ञान नहीं है, विचारधारा नहीं है, पर दुख कातरता का भाव नहीं है, जिस कवि में भावनाओं का उद्गार नहीं है, वह कवि नहीं बन सकता। किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि कवि बनने के लिए तपना पड़ता है। जलना पड़ता है, तड़पना भी पड़ता है। यदि शीतलहरी का वर्णन करना हो, तो उस शीतलहरी में बाहर घूम कर और रात के कष्ट काटकर तथा उन अभावों का वर्णन करके अर्थात उन परिस्थितियों में खुद को तपाकर अपनी अनुभूतियों को वाणी देनी होगी, तभी वह कविता प्रभावकारी सिद्ध होगी। आश्चर्य नहीं कि नवल जी की कविता में वह तपिश

है, वह अंतर्संघर्ष है, वह अंतर्वेदना है, वह चिंतन धारा है, वह मार्मिकता है जिससे कवि का सामना हुआ है। कवि इसी के बहाने एक ओर अतीत को याद करता है जिस गाँव में वह रहा है, उन लोगों को छोड़ आया है जिन लोगों से मैत्री की है और जिनके साथ सुख–दुख की अनुभूति की है, वह गाँव का स्टेशन हो या विद्यालय हो या बाग–बगीचा हो या खेल का मैदान हो या अपने गाँव के दर्शनीय स्थल रहे हों। जाहिर है कि शहर आने के बाद गाँव की यादें हर किसी को आने लगती हैं। घर, परिवार, समाज और वहाँ का वातावरण कवि को भावुक बना जाता है और कवि उसका वर्णन निम्नलिखित शब्दों में इस प्रकार करने के लिए उद्धत होता है–

लौट आया हूँ गाँव से
छोड़ आया हूँ पीछे
गाँव के लोगों को
गाँव की सड़क को
और गाँव के छोटे– से स्टेशन को
लेकिन रह गई है
मन की हिलती
ईख की सफेद झंडी।

इसी तरह वह अपनी अगली कविता–– 'नील जल कुछ और घुल गया... 'जो कुल 5 पंक्तियों/लाईनों में लिखी गई कविता है––

चांदनी
दिगंबरा
मोहिनी–सी भाग रही भुवन–भुवन
जिसके पीछे है मन नाप रहा
धरा गगन!

सच तो यह है कि जब हम नवल जी की कविता में प्रेम की तलाश करते हैं, तो हमें उनके समकालीन कवियों की रचनाओं और उस समय की प्रवृत्तियों तथा सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार करना चाहिए। जाहिर है कि प्रेम के बगैर तो कोई कवि बन ही नहीं सकता। प्रेम तो चाहिए, हाँ, यह देखना है कि वह प्रेम किस रूप में प्रतिफलित हुआ है। अखिल ब्रह्मांड में प्रेम का स्वरूप अतिशय व्यापक है। कबीर निर्गुण ब्रह्म के प्रति प्रेम किया है, तो डूब कर लिखा, जायसी ने भी प्रेम पर लिखा, तो नागमती विरह वर्णन में विरह की तीव्रता को महसूस किया, तुलसी, सूर, कबीर सबों ने प्रेम को तरजीह दी। ईश्वर– प्रेम को, मानव–प्रेम को और प्राणी मात्र के प्रेम को, जहाँ प्रेम स्वार्थरहित रहा और उस प्रेम को लोकजीवन से जोड़कर इसे प्रासंगिक बनाया। प्रत्येक कवि की कविता में केवल प्रेम खोजना रहे, तो वह इतने भाव, विचार और संवेदना के साथ अंतर्गुंफित मिलेगा कि उसका पार नहीं। पाठक उस

काव्य–सरिता में गोता लगाते जाएं, लगाते जाएं, ज्ञान और आनंद की मंदाकिनी मिलती जाएगी, मिलती जाएगी। नवलजी में जो प्रेम है, वह एक ओर जयशंकर प्रसाद का नारी प्रेम है, महादेवी का अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम है, निराला का सर्वहारा, निर्धन, गरीब, विधवा, मजदूरिन स्त्री और असहाय नारी के प्रति प्रेम है तो पंत में प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति प्रेम है। सच तो यह है कि इसी प्रेम ने कवि को कविता रचने के लिए प्रेरित किया है। जीवन में जो सच है, जहाँ जीवन का सुख–दुख है, जहाँ जीवन में होने वाले अभाव और पीड़ा की लकीरें हैं, जहाँ समर्पण और प्यार है और जहाँ जीने और मरने के लिए जज्बा और त्याग है, वहाँ की परिस्थितियाँ और परिवेश किसी को भी सचमुच कवि बनने के लिए प्रेरित कर सकता है।

आलोचक कवि नवलजी को गाँव से विशेष प्रेम है। वह प्रेम नागार्जुन से मेल खाता है। नागार्जुन की कविता में जो गाँव, गंवई और ग्रामीण परिवेश आया है, वह उनसे संपृक्त है। गाँव का जीता–जागता परिवेश नवलजी को ज्यादा प्रेरित करता है। गाँव में क्या होता है?–– खेतों की हरियाली, पगडंडी, खुले मैदानों में सूरज की पड़ती पीली सुनहरी धूप, चलती बैलगाड़ियों की बैल के गले में बजती टुनटुन–टुनटुन की घंटी, किल्लोल करती किशोरियों की कोकिल कंठी तान (नागार्जुन की अनुभूति), बड़े बुजुर्ग, जमींदारी प्रथा का तांडव–– इन सबों को कवि ने अपनी इन आँखों से देखा और भोगा है। कवि की कविता ''गाँव की सौगात'' में जो गाँव का वर्णन आया है; वह अत्यंत सजीव है। उसका चित्र देखते ही बनता है : ''कल घर से आया हूँ :

साथ– साथ लाया हूँ खेतों की हरियाली,
मैदानों पर पड़ती पीली धूप शिशिर की,
पथ पर जाती बैलगाड़ियों की टुन –टुन –टुन,
ग्राम– किशोरी के अधरों की तिरछी रेखा,
बदलू चाचा की बच्चों– सी भोली बातें,
और गाँव की जनता पर अब तक मंडराती
क्रूर– कुचाली जमीदार की काली आँखें ...
किंतु ये सभी टिक पाएंगी कै दिन मन में ?
बीच नगर के कोलाहल में
सारी चीजें उड़ जाएँगी;
रह जाएगा शेष यंत्र वत् जीवन पहला,
सूना– सा वीरान, और सौगात गाँव की
आज नहीं तो कल निश्चय ही चुक जाएगी...''

''गाँव की याद'' किसी भी भावुक और संवेदनशील व्यक्ति के मन को भावाकुल बना जाता है। नवलजी जब गाँव से पटना पढ़ने के लिए आते हैं, तब उन्हें गाँव की याद आती है। गाँव का पूरा परिवेश, वातावरण तथा वहाँ की आवोहवा, सुख–दुख ––सबके अनुभव अपने साथ कवि ले आया है। इसी तरह उनकी एक और ''मैं तुम्हें भुला नहीं हूँ'' शीर्षक कविता कवि

की किशोर मन की स्मृतियों पर केंद्रित है, यहाँ कवि अपने अतीत को भूल नहीं पाता। इसीलिए कवि अनुभव करता है कि वह स्मृतियाँ भूलने लायक नहीं हैं। इतना ही नहीं, वे यादें किसी भी भावुक एवं संवेदनशील कवि के हृदय को बेध डालती हैं। जहाँ उन्हें आपस की खीझ, खिलखिलाहट, मनुहार, एकांत का वार्तालाप, कोमल स्नेहिल संस्पर्श, मादक गंध और न जाने क्या– क्या? कवि उसे भूलता नहीं; और क्या कोई अपने सुख–दुख, मिलन–विरह तथा आनंद और अवसाद को विस्मृत कर सकता है? शायद नहीं। यही कारण है कि उनकी कविताओं में सारा कुछ क्रमवार दिख पड़ता है। वह हमें भी अपने अतीत के भावों के अथाह सागर में गोते लगाने के लिए प्रेरित करता है :

''मैं तुम्हें भुला नहीं हूँ।
कभी दुःशंका
(कि तुम को भूलता मैं जा रहा हूँ)
बेध जाती है मुझे भी,
किंतु सच है, मैं तुम्हें भुला नहीं हूँ।

याद रखने की यही तो वस्तुएँ हैं––
खिलखिलाहट,
कमल– आँखें,
नर्म कोंपल–उँगलियाँ,
उड़ते–लहराते बाल,
कुर्ते पर फिसलता दुपट्टा,
एकांत वार्तालाप का अत्यंत बेधक मौन,
पहला पत्र,
पहला स्पर्श ––
और सबकी लयान्विति में गूंजता
आलोक निर्मित
गंध निर्मित
तुम्हारे मन का विमल संगीत।''

कवि की मधुर स्मृतियाँ एक–एक कर चित्रपट की भाँति कविता की इन पंक्तियों में इस तरह संगुम्फित होकर आ गई है कि सहसा आँखों को विश्वास नहीं होता। सच तो यह है कि जीवन के तमाम सुख–दुख हमारे जीवन को प्रभावित करता है। जीवनगत विभिन्न परिस्थितियाँ, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक और वैयक्तिक–परिवेश हमारे चिंतन और विचार में हर क्षण बदलाव लाता रहता है। यह बदलाव किसी भी कवि मन को रचने के लिए प्रेरित करता रहता है। कहना नहीं होगा कि याद रखने की जो वस्तुएँ (नवल जी के शब्दों में) हैं, वे भला भुला पाएंगी क्या? शायद नहीं। इसीलिए कवि के अनुसार जीवन स्मृतियों का

ऐसा समुच्चय है जो चेतना के गहनतम तल में स्थिर बना रहता है–

''याद रखने की
यही तो वस्तुएँ हैं,
मैं जिन्हें भूला नहीं हूँ।
हाँ, नहीं अब तैरती वे सभी
मन के जलाशय की सतह पर,
अब चेतना के गहनतम तल पर––''

और इतना ही नहीं, वे स्मृतियाँ–– 'प्राण निधियों–सी हर क्षण सुरक्षित रहती हैं' और यही सारा कुछ कवि को अक्सर याद आता रहता है। आखिर उसे भूलना इसलिए संभव नहीं है क्योंकि कवि का इस संदर्भ में उनका अपना तर्क है क्योंकि वे वस्तुएँ मोतियों–सी और प्रवालों–सी बार–बार कवि की स्मृतियों में चमक उठती हैं। कवि स्वयं स्वीकार करता है कि–

''प्राण– निधियों– सी सुरक्षित हैं;––
और प्रतिक्षण तो नहीं,
पर जब कभी आलोक– शर रवि का –
बेध जाता है जलाशय की सतह को,
वस्तुएँ ये
मोतियों– सी, प्रवालों– सी, चमक उठती हैं।

कुल मिलाकर इस कविता में जहाँ कवि नहीं भूलने के बारे में अपने तर्क प्रस्तुत करता है, वही यह तर्क अकाट्य और तर्कसंगत भी प्रतीत होता है। अक्सर हम अपने जीवन में यादगार पलों को कभी भूल नहीं सकते। इसीलिए कि कवि उसे अपने हृदय–वलय में संजोकर रखा है। वही स्मृतियाँ काव्य– सरिता बन कर उनकी स्मृतियों को झकझोरता रहता है। इसीलिए कवि स्पष्ट शब्दों में उद्‌घोषणा करता है कि– तुम इसे मेरे द्वारा नहीं भूलने के बारे में एक सुंदर और तर्कसंगत तर्क कह सकते हो––

''तुम इसे मेरा–
भूलने के पक्ष में –
एक सुंदर तर्क भी कह लो,–
किंतु, सच है :
मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ।''

अगली कविता ''जहाज की एक सांझ'' में कवि पानी के जहाज से अपने गृह क्षेत्र से पटना आता है तब जहाज ही आवागमन का साधन हुआ करता है। अतः उस काल की अनेक स्मृतियाँ कवि मन को आन्दोलित करती हैं। वह स्मृतियाँ देखने लायक हैं––

''इधर–उधर छिप जाने वाली बाल लहरियाँ...
मुझे घेर कर सभी
तुम्हारे बिछुड़नेपन का
एक विकलता नहीं, किंतु
अनवरत उदासी से भरते जाने वाला
परिवृत्त रच रहे...''

कहना नहीं होगा कि स्मृतियों में बिछुड़ेपन की गहरी उदासी है, वह उदासी जीवन की विफलता नहीं है। वह उदासी परिस्थितियों की उपज है। पढ़ाई– लिखाई के क्रम में घर से बाहर जाना, किसी भी व्यक्ति को अपने परिजनों से कुछ समय के लिए बिछुड़ना अवश्य कष्टदायी प्रतीत होता होगा। कवि को यह उदासी ज्यादा ही प्रभावित कर रहा है क्योंकि वे हमें बार–बार स्मृतियों में आती रहती हैं। हमारी चेतना को झंकृत करती रहती हैं। कवि अपने आप को कछुए–सा प्रदर्शित करता है। जैसे कछुआ कभी अपना मुँह निकालकर बाहरी वृत्त को देख लेना चाहता है, तो कभी अपने मुँह को भीतर खींचकर छिपा लेता है। अतः बिछुड़ने की इस व्यथा– कथा को इन काव्य– पंक्तियों में सजाकर कवि ने पाठकों के सामने बड़े ही कलित– ललित शब्दों में प्रस्तुत कर दिया है––

''कछुए–सा मेरा मन
बैठा वृत्त– केंद्र में,
कभी झाँक लेता है बाहर के दृश्यों को
कभी खींचकर मुँह भीतर
ढूँढा करता है
तुम्हें,
तुम्हारी पिछड़ेपन की व्यथा बाँटनेवाली
खोई– सी आँखों को...''

किसी भी रचनाकार की विशेषता यह है कि वह अपने चिंतन और विचार, भावना और संवेदना से दूसरों को कितना प्रभावित करता है, यह महत्वपूर्ण है। यहाँ कवि के भीतर जो प्रेम है वह एकांगी नहीं है, वह सार्वजनीन है, वह मानवीय प्रेम, करुणा और दया की भावना को अभिव्यक्त करता प्रतीत होता है।

पंडित विनय कुमार, हिन्दी शिक्षक, शीतला नगर, रोड नं.–3, पो. : गुलजारबाग, अगम–कुआँ, पटना
मो. : 7991156839, 9334504100

✧ ✧ ✧

आलेख

नए दौर में नए तरीके से हो साहित्य पत्रकारिता

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

आजकल के अखबारों से साहित्य को दरकिनार किया जा रहा है, क्योंकि अब अखबार का रास्ता टकसाल से गुजरने लगा है। और यह अकाट्य सत्य है कि जब रास्ता टकसाल की तरफ भी मुड़ जाए तो यकीन जानना, वह अपने उद्देश्यों पर कम ही कायम रह पाएगा। इस समय टकसाल की ओर मुड़ना मजबूरी तो माना जा सकता है किन्तु इसके लिए मूल्यों से इतना समझौता करना फायदे का कम पर अधिक नुकसान का सौदा नजर आ रहा है।

पुनर्जागरण और नवाचार को भीतर समाहित कर, आवाम के मनोभावों को शब्दों के धागे में पिरोकर, चेतना के ऊर्ध्वाधर आभामंडल में, स्वच्छता, स्वच्छंदता और सर्वांगीण विकास की इमारतों का निर्माण करने वाली वैचारिक शक्ति को संसार साहित्य मानता है, और इसी के भीतर वह शक्ति होती है, जो जनमानस को सहज भाव से, आत्मीय होकर, मन से जुड़ता हुआ प्रभावित कर सकता है। साहित्य का स्वभाव जनजागरण, नवाचार और परिवर्तन है, इन्हीं कारणों से साहित्य का उदय भी हुआ और अस्तित्व भी कायम है।

आजादी के पहले से साहित्य पत्रकारिता, पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाओं का चलन है और इनसे भारत का आजादी आन्दोलन मजबूत और प्रभावी भी हुआ था, इसी कारण से अखबार को राष्ट्र जागरण का कारक माना जाता रहा है। किंतु वर्तमान दौर में न साहित्य और न ही साहित्यिक संस्थाओं के उद्देश्यों की स्थापना प्रभावी हो रही है क्योंकि सामान्य अखबारों से साहित्य का क्षरण और साहित्य पत्रकारिता जैसी विधा अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है। साहित्यिक पत्रकारिता एक प्रकार की गद्य पत्रकारिता है, जो कथा तकनीक और शैलीगत रणनीतियों के साथ तथ्यात्मक रिपोर्टिंग को पारंपरिक रूप से कथा साहित्य से जोड़ती है। लेखन के इस रूप को कथात्मक पत्रकारिता या नई पत्रकारिता भी कहा जा सकता है। साहित्यिक पत्रकारिता शब्द का उपयोग कभी–कभी रचनात्मक

रूप से गैर–बराबरी के साथ किया जाता है, हालांकि इसे एक प्रकार की रचनात्मक गैर–कल्पना के रूप में माना जाता है।

साहित्यिक पत्रकारिता की शुरूआत भारत में 19वीं सदी में हो चुकी थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को साहित्यिक पत्रकारिता का प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने वर्ष 1868 में साहित्यिक पत्रिका कवि वचन सुधा का प्रकाशन किया। भारतेन्दु जी के जन्मस्थल बनारस से उस समय छः पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं– कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र–मैगजीन, बालबोधिनी, काशी समाचार व आर्यमित्र। द्विवेदी युग (1900–1918 ई.) में कई साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। वर्ष 1900 में इलाहाबाद से मासिक पत्रिका सरस्वती का प्रकाशन शुरू हुआ। वर्ष 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के संपादन में इस पत्रिका ने नई ऊँचाइयों को छुआ। साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी ने व्याकरण एवं खड़ी बोली को एक नई दिशा प्रदान की। इस समय की अन्य पत्रिकाएँ सुदर्शन, देवनागर, मनोरंजन, इन्दु समालोचक आदि थी।

छायावाद काल में चाँद, माधुरी, प्रभा साहित्य, संदेश, विशाल भारत, सुधा, कल्याण, हंस, आदर्श, मौजी, समन्वय, सरोज आदि साहित्यिक पत्रिकाएँ सामने आईं। वर्तमान में सारिका, संचेतना, निहारिका, वीणा, प्रगतिशील समाज, साहित्य ग्राम, मातृभाषा, कथासागर, सन्देश, आलोचना, सरस्वती संवाद, नया ज्ञानोदय, हंस आदि साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। नॉर्मन सिम्स ने अपनी ग्राउंड–ब्रेकिंग एंथोलॉजी द लिटररी जर्नलिस्ट्स में कहा कि साहित्यिक पत्रकारिता 'जटिल, कठिन विषयों में विसर्जन की माँग करती है। लेखक की आवाज यह दिखाने के लिए है कि एक लेखक काम पर है।'

आजकल के अखबारों से साहित्य को दरकिनार किया जा रहा है, क्योंकि अब अखबार का रास्ता टकसाल से गुजरने लगा है। और यह अकाट्य सत्य है कि जब रास्ता टकसाल की तरफ भी मुड़ जाए तो यकीन जानना, वह अपने उद्देश्यों पर कम ही कायम रह पाएगा। इस समय टकसाल की ओर मुड़ना मजबूरी तो माना जा सकता है किन्तु इसके लिए मूल्यों से इतना समझौता करना फायदे का कम पर अधिक नुकसान का सौदा नजर आ रहा है।

बाजारवाद के दौर में साहित्यिकी आयोजनों, लेखन, चर्चा इत्यादि भी अखबारों में कम प्रकाशित होती है, इससे चिंतन का मौन वर्तमान पर हावी हो रहा है। जिस साहित्य का मूल उद्देश्य ही राष्ट्र जागरण होता है, आज वही साहित्य मुख्य धारा की मीडिया से उपेक्षित–सा बर्ताव हासिल करेगा, तो स्वयं टूटते हुए टूटता हुआ समाज बनाएगा।

इस दौर में साहित्य पत्रकारिता के नए मानक, नए छोर तैयार हो रहे हैं, जिसे अपनाते हुए नए मानक गढ़ना आवश्यक है, और इस कार्य में मीडिया संस्थान और पत्रकारिता और जनसंचार महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। जब साहित्य की पहुँच गाँव–गाँव तक है और हिन्दी पत्रकारिता भी लगभग हिन्दुस्तान के गाँव–गाँव तक पहुँच चुकी है, तब साहित्य पत्रकारिता में भी जनमानस का दखल अनिवार्य रूप से होना चाहिए। पत्र–पत्रिकाओं को प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना चाहिए, गाँव से शहर और जिला स्तर पर भी नए पत्रकार तैयार करना चाहिए। वर्तमान दौर डिजिटल युग है, और इस समय वेबसाइट, डिजिटल पोर्टल, डिजिटल पत्रिकाएँ, व्यक्तिगत वेबसाइट जितना साहित्य को प्रचारित और प्रसारित कर रही हैं, उतना अन्य माध्यमों में कम दिखाई देता है।

और समझदारी इसी बात में भी है कि आम जन मानस को भी इंटरनेट की उपलब्धता का फायदा उठाते हुए स्वयं को नए दौर के लिए तैयार कर लेना चाहिए। वेबदुनिया डॉट कॉम, दी क्विंट, साहित्य आजतक, कविता कोश, मातृभाषा डॉट कॉम, गद्य कोश, जैसी तमाम वेबसाइट इस समय हजारों लेखकों को लाखों पाठकों से जोड़ रही हैं। इन्दौर जैसे महानगर से मातृभाषा डॉट कॉम एक वेबसाइट 2016 में शुरू हुई, जिसने प्रारंभिक दौर में कुछ सौ रचनाकार जोड़े और आज हजारों लेखक जुड़कर अपने नए पाठक तक पहुँच रहे हैं। उनका लेखन प्रचारित और प्रसारित हो रहा है।

इस तरह की वेबसाइटों के माध्यम से भी निरंतर साहित्य पत्रकारिता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, ग्राम, नगर में साहित्य पत्रकारों को तैयार करना चाहिए। उन्हें नए युवाओं को जोड़ना चाहिए, प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना चाहिए, नए लोगों को पत्रकारिता से भी जोड़ना चाहिए, इस बहाने हिन्दी पत्रकारिता में भी पुराने ढर्रे पर चलने की प्रवृत्ति बदलेगी और नवाचार आएगा।

इस समय स्मार्टफोन यूजर्स की संख्या में तेजी से वृद्धि होने के साथ ग्रामीण भारत में डिजिटल अपनाने की प्रकिया में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। हाल ही में सामने आई एक नई रिपोर्ट के मुताबिक इस ट्रेड को देखते हुए तीन साल बाद यानी 2025 तक कुल सक्रिय इंटरनेट आबादी के 90 करोड़ तक पहुँचने की संभावना है। पिछले साल इनकी संख्या 62.2 करोड़ थी। और शहरी भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या में 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। साल 2020 में ये आँकड़ा 32.3 करोड़ उपयोगकर्ताओं (शहरी आबादी का 67 प्रतिशत) तक पहुँच गया था। ये आँकड़े द इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (आईएएमएआई) की ओर से जारी रिपोर्ट में सामने आए हैं।

इन आँकड़ों पर गौर किया जाए, तो निश्चित तौर पर पत्रकारिता और साहित्य जगत को भी अपने आप को नए साँचे में ढाल लेना चाहिए। कहते हैं परिवर्तन संसार का नियम है और इसी नियम के मद्देनजर व्यवस्था और नियामकों को भी अपने दायरों में बदलाव लाना चाहिए। साहित्य पत्रकारिता भी नए ढंग से पाठकों तक पहुँच बना सकती है और इस विधा के जिम्मेदारों को भी तकनीकी रूप से समृद्ध करते हुए दक्ष करना चाहिए।

बहरहाल, चिन्ताओं के बीच इस बात को भी स्वीकार किया जा सकता है कि मुख्य धारा की पत्रकारिता ने तो साहित्य पत्रकारिता को हाशिए पर रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी किन्तु नए दौर के नए मीडिया ने आज भी साहित्य समाज को ऑक्सीजन दे रखी है, लगातार समयानुकूल साहित्य जगत की खबरें, लेखन, काव्य इत्यादि प्रकाशित भी हो रहा है और पाठकों की संसद में सराहा भी जा रहा है। ऐसे समय में नए मीडिया पर भरोसा भी किया जा सकता है और इस मीडिया को साहित्य की मुख्य धारा बनाया जा सकता है।

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल', लेखक एवं पत्रकार, 204, अनु अपार्टमेंट, 21–22 शंकर नगर, इंदौर
मो. : 9893877455, ई–मेल : arpan455@gmail.com

✧ ✧ ✧

लोक साहित्य में बिखरी लोक संस्कृति

बृजेश आनन्द राय

लोकसाहित्य में सामान्य जनता की आर्थिक परिस्थिति का भी चित्रण बड़ी सुन्दर ढंग से किया गया है। झूमर के सभी गीत 'सोने की थाली में जेवना परोसलों' से प्रारंभ होते हैं। प्रियतम के भोजन करने की थाली सोने का होता है, उसका जलपात्र भी सुवर्णमय है। वह चन्दन की बनी लकड़ी पर सोता है, जो रेशम की रस्सियों से बुना गया होता है। भोजन की वस्तुएँ भी बड़ी सुन्दर और स्वादिष्ट हैं। परन्तु जहाँ धनधान्य तथा वैभव एवं ऐश्वर्य का वर्णन उपलब्ध होता है वहीं साधारण किसान की गरीबी का वर्णन भी श्रोताओं को अपनी तरफ आकृष्ट किये बिना नहीं रहता।

भारतीय–संस्कृति लोक–साहित्य में बिखरी हुई है। लोक संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए हमें लोकसाहित्य का ही अनुसंधान करना होता है। ग्रामीण समाज ने जिस समता या विषमता का अनुभव किया है, उसका उसी रूप से चित्रांकन भी किया है। पारिवारिक जीवन के जो मर्मस्पर्शी दृश्य यहाँ उपलब्ध है, उसके दर्शन अन्यत्र नहीं होते। ऐसा ज्ञात होता है कि जन–जीवन को चित्रित करने वाले 'कुशल–चितेरे' ने बड़े संयम से अपनी तूलिका का प्रयोग किया है। सुन्दर और दिव्य दृश्यों के चित्रांकन में उसकी तूलिका उतनी ही सफल दिखाई देती है जितना कि भोड़े तथा भद्दे चित्रों के दर्शन में। लोकसाहित्य में जहाँ पतिव्रता सती नारियों का उल्लेख है वहाँ ऐसी कर्कशा स्त्रियों का वर्णन पाया जाता है जो विधवा होने के लिए सूर्य भगवान से प्रार्थना करती रहतीं हैं। जहाँ माता और पुत्री का दिव्य प्रेम दिखलाया गया है वहीं सास–बहू तथा ननद–भौजाई के कटु एवं विषाक्त व्यवहार का वर्णन भी है। भाई और बहन के निस्पृह, पवित्र और दिव्य प्रेम का वर्णन करने के लिए जो भी विशेषण प्रयुक्त किया जाय वह थोड़ा ही है।

भाई–भाई के घनिष्ठ प्रेम के उल्लेख के साथ ही देवर और भावज का जो सम्बन्ध दिखलाया गया है वह कम

प्रशंसनीय नहीं है। कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि लोक–कवि ने जन–जीवन के सुन्दर तथा असुन्दर दोनों पक्षों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसलिए वह समाज के सच्चे दृश्य को उपस्थित करने में सफल हुआ है। इन सब के अतिरिक्त एकनिष्ठ–प्रेम में विरह पाकर भी जीवन अर्पण कर देने वाले उदास–कहानियों को तथा लोकोक्तियों को नहीं भूलाया जा सकता जो संस्कृति के आदि काल से ही लोक में व्याप्त है।

सामाजिक जीवन के साथ ही साथ धार्मिक जीवन का चित्रण भी लोकसाहित्य में पाया जाता है। व्रत के गीतों में कहीं सूर्य की पूजा उपलब्ध होती है, तो कहीं शीतला माता की। गंगा माता और तुलसी माता के गीतों की भी संख्या कुछ कम नहीं है। शिव–पार्वती के साथ ही विष्णु के प्रमुख अवतार राम–कृष्ण की भी गीतों में अर्चना की गई है।

लोकसाहित्य में सामान्य जनता की आर्थिक परिस्थिति का भी चित्रण बड़ी सुन्दर ढंग से किया गया है। झूमर के सभी गीत 'सोने की थाली में जेवना परोसलों' से प्रारंभ होते हैं। प्रियतम के भोजन करने की थाली सोने का होता है, उसका जलपात्र भी सुवर्णमय है। वह चन्दन की बनी लकड़ी पर सोता है, जो रेशम की रस्सियों से बुना गया होता है। भोजन की वस्तुएँ भी बड़ी सुन्दर और स्वादिष्ट हैं। परन्तु जहाँ धनधान्य तथा वैभव एवं ऐश्वर्य का वर्णन उपलब्ध होता है, वहीं साधारण किसान की गरीबी का वर्णन भी श्रोताओं को अपनी तरफ आकृष्ट किये बिना नहीं रहता।

तात्पर्य यह है कि सामान्य जनता की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का रमणीय चित्रण उपलब्ध होता है। '(अ) सामाजिक जीवन का लोकसाहित्य में चित्रण––––'

'एकनिष्ठ प्रेम की लोक–अभिव्यंजना––––'

भोलेभाले मन की प्रेम–अभिव्यक्ति किस सह्रदय और विद्वज्जन को नहीं भाता! संस्कृत–काल से लेकर प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक समय की प्रादेशिक बोलियों के लोकसाहित्य में निश्छल–ह्रदय के समर्पण में तन–मन और जीवन को गवाँ देना कोई आश्चर्य की बात नहीं रहा है।

प्राकृत– लोक–भाषा में एक निश्छल मन की अभिव्यक्ति इस प्रकार है.....

''सत्य प्रेम तु मातुलानी मर्त्यलोके अति दुर्लभः। अथ भवति को विरहे? विरहे भवति को जीवति? ''

...प्राकृत भाषा (प्राकृत–प्रकाश) से।

जिसका अर्थ है.... एक लड़की अपनी मामी से कहती है....

''हे मामी! सत्य प्रेम तो इस संसार में अत्यंत दुर्लभ है। यदि ऐसा होता तो विरह क्यों

होता? (और सत्य प्रेम में) विरह होने पर कौन जी सकता है ?

...अर्थात कोई नहीं जी सकता! अर्थात प्रेम में धोखा खाकर कोई भी जी नहीं सकता !!

इसी प्रकार से विरह का एक और निष्कर्ष कितना सटीक द्रष्टव्य है...

''दव क दाधा हो, नव–कोपल लेइ।
विरह क दाधा हो, न पाल्हवई ।।

अर्थात् आग का जला वृक्ष तो नव–पल्लव ले सकता है, पर विरह का जला व्यक्ति कभी नहीं फलता–फूलता। सदा के लिए मुरझा जाता है! समाप्त हो जाता है।

विरहिणी नारी के ताप और क्लेश का कितना मार्मिक वर्णन लोकसाहित्य में किया गया है। कुछ बिन्दुवार इस प्रकार है ...

1) नाहर के नाखून बसै, औ विषधर के दन्त
बिच्छुन के पोछीन बसे, विरहन को सब अंग।
2) अग्नि बरै हियरा जरे, भये कलेजे छेद।
विरहन तो बौरी भई, क्या कोई जाने भेद।।
3) विरह–भुवंगम तन डसा, मन्न न लागे कोय।
प्रेम–वियोगी ना जिये, जिये तो बौरा होय।।
4) विरह–जलन्ती मैं फिरौ, मो विरहन को दुःख।
छाह न बैठो डरपती, मत जल उट्ठे रुक्ख।।
5) विरह–वाण जिहि लागिया, औषधि लगे न ताहि।
सुसुकि मरि–मरि जिवै, उठे कराहि–कराहि ।।
6) विरह की ओदी लकड़ी, सुपुचौ और धुधुआए।
दुःख से तबहिं बचिहौं, जब सकलौ जरि जाए।।

इस प्रकार से विरह के परिणाम का कितना वास्तविक चित्रण लोक साहित्य में यत्र–तत्र विद्यमान है। उपरोक्त कहावतों में विरह की जो पीड़ा है उसके अभिव्यक्ति का माध्यम प्रायः प्रेमिकाएँ रही हैं। अब पुरुष का नारी के वियोग में उसके अंग–प्रत्यंग की सुन्दरता का बखान किस अंदाज में किया जा रहा है, देखते हैं...

''सुनरी हमार जटिनिया हो बाबू जी
पातरि बाँस की छौकिनिया हो बाबू जी
गोरी हमार जटिनिया हो बाबू जी
चाँदनी रात क इजोरिया हो बाबू जी
नान्हीं–नान्हीं दतवा, पातर ठोरवा हो बाबू जी
छटके जैसन बिजलिया हो बाबू जी...''

इस प्रकार कितना सरस श्रृंगार–अभिव्यक्ति है जो जिह्वा पर चढ़ कर हृदय में उतरकर मन में बस जाता है। और सहृदय, सुखद–प्रेम की कल्पना में कहीं खो जाता है।

ऐसा नहीं है कि लोकसाहित्य में तकरार का वर्णन न हुआ हो। कभी–कभी रूप–रस के रहते हुए भी युगल जोड़ी में से कोई एक–दूसरे को समय नहीं देता, ऐसे में भी किसी 'रूप–लोभी–मन' का धैर्य धीरे–धीरे टूट जाता है। फिर दोनों में से एक की या दोनों की नासमझी के कारण जीवन में खटास आना प्रारम्भ हो जाता है। प्रिय या प्रियतमा में से किसी एक की उदासीनता, भले ही वह स्वभावगत ही क्यों न हो, लाख चारित्रिक शुचिता क्यों न हो, पर एक गहरी खाईं बीच में उत्पन्न कर देता है, जिसका कोई अन्त नहीं होता। फिर वही हाल होता है जिसका वर्णन निम्नवत है...

''धरती फाटे मेघ–जल, कपड़ा फाटे डोर ।
तन फाटे की ओखदी, मन फाटे नहीं ठौर ।।''

इस प्रकार वैवाहिक जीवन से इतर भी प्रेम के संयोग, वियोग, और 'कुसामंजिक प्रेम के परिणाम' का वर्णन भी लोकसाहित्य में मिलता है। केवल नारी की उदासीनता ही नहीं पुरुष की उदासीनता का वर्णन भी इस प्रकार मिलता है...

''आग लागि घर जारिगा, विधि भल कीन्हि
पिय के हाथ घरिलवा भरि–भरि दीन्हि।।''

अर्थात् नायिका को घर जल जाने की चिन्ता नहीं है, उसे हर्ष है कि आग बुझाने के कोलाहल में पानी से भरा घड़ा देते हुए, रूठे प्रेमी से कुछ बोल–चाल हो गयी।

इस प्रकार से सनातन देश के सनातन साहित्य में कौन सा लोक–रंग नहीं है, सबकुछ तो है। यहाँ विश्व का अनूठा साहित्य विद्यमान है, जिसकी कहीं समता नहीं।

हिन्दू परिवार संयुक्त परिवार का आदर्श उदाहरण है, जहाँ पिता–पुत्र, माता–पुत्री, पति–पत्नी, ननद और भावज सभी आनन्द से एक साथ निवास करते हैं। पति–पत्नी के आदर्श प्रेम की 'बाँकी–झाँकी–लोक–गीतों में,' हमें आदर्श– सती–स्त्रियों का जैसा चित्रण मिलता है, वैसा संसार के अन्य साहित्य में मिलना दुर्लभ है। पति परदेश चला जाता है, बारह वर्ष का सुदीर्घ काल वह विदेश में बिताता है। वह अपनी सती स्त्री की तनिक भी खोज नहीं करता। परन्तु इन दुखद दिनों को बिताती हुई उसकी स्त्री, अनेक प्रलोभनों के आने पर भी अपने सतीत्व की रक्षा करती है। पति जब परदेश से बारह वर्षों के पश्चात लौटकर आता है तब वह अपनी स्त्री के चरित्र पर संदेह करता है और उसकी अग्नि–परीक्षा के बाद ही उसे अपनाता है। परन्तु उसकी स्त्री सती सीता के समान, इसके लिए तनिक भी बुरा नहीं मानती और अपने पतिव्रत धर्म से विचलित नहीं होती।

'आदर्श सतीत्व का लोकसाहित्य में दर्शन–'

सतीत्व की यह भावना मानव समाज का अतिक्रमण कर पशु जगत में भी व्याप्त दिखाई पड़ता है। किसी अनमनी हिरणी को देखकर हिरन उसकी उदासीनता का कारण पूछता है। उत्तर में हिरनी कहती है कि, ''आज राजा दशरथ के घर में पुत्र जन्म के कारण छठी का उत्सव है, जिसमें तुम्हें मारकर तुम्हारा मांस पकाया जाएगा।'' हिरन के मारे जाने पर हरिणी रानी कौशल्या से प्रार्थना करती है कि, ''हिरन की खाल मुझे देने की कृपा कीजिए, जिसे मैं पेड़ पर टांग कर अपने दुखी ह्रदय को सान्त्वना प्रदान कर सकूँ!'' परन्तु उसकी विनम्र प्रार्थना अस्वीकृत हो जाती है। रानी हिरन की खाल से खंजरी बनवाती है और बालक राम उसे बजा–बजा कर खेलते हैं। जब–जब खँजड़ी बजती है तब–तब उसकी आवाज सुनकर बिचारी दुखिया हरिणी चौंक उठती है। वह ढाक वृक्ष के नीचे खड़ी होकर अपने प्यारे हिरन को याद करती रहती है। अवधी का यह लोक गीत निम्नांकित है...

''छापक पेड़ छिउलिया त पवन गहवर।
अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ि हरनियाँ त मन अति अनमनी।
धरतै चरन हरिनवा त हरिन से पच्छई।
हरिनी! की तोर चेहरा झुरान न पानी बिनु मुरझिऊ।
नाहीं मोर चेहरा झुरान की पानी बिनु मुरझेऊँ।
हरिना! आज राजा जी के छट्ठी तुमहिं मारि डरि हैं ।
मचियै बैठी कौसल्या रानी, हरिनी अरज करइ ।
रानी, मांसवा त सिंझहिं करहिया, खलरिया हमें देतेऊ ।
पेड़वा से टँगतिऊँ खलरिया, ताहेरि हेरि देखतिऊँ।
रानी देखि–देखि मन समुझउतिउँ जनुक हिरना जियतई।
जाहु अपने घर खलरिया नाहीं देबइ।
हरिनि, खलरि के खँजरी मढ़उबइ, त राम मोर खेलिहइँ।
जब–जब बाजै खंजड़िया सबद सुनि अनकइ
हरिनि ठाढ़ी ढँकुलिया के नीचे हिरन के विसूरइ।''

कहने के लिए तो राजा–रानी को आधार बना कर इस गीत में पति हरिना के प्रति पत्नी हिरनी के आदर्श पतिव्रत धर्म का वर्णन अति मनोहर ढंग से किया गया है। हिरन प्रजाति कोमल स्वभाव का होता भी है। इसलिए श्रृंगार के साथ उत्पन्न जुगुप्सा पर ध्यान नहीं दिया गया है। और यही अनगढ़ लोकसाहित्य की विशेषता भी है। पर यहाँ पर दु:खिनी हरिणी की दशा देखकर पाषाण ह्रदय भी पिघल उठता है। इस प्रकार की लोक– गीत–कथाओं को पहले के जमाने में वृद्धाएँ एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक गा–गा कर सुनाया करती रही हैं। जब मोबाइल और टेलीविजन जैसे मनोरंजन की वस्तुएँ नहीं थी। केवल तोता–मैंना के किस्से ही

पुस्तक रूप में मेलों में बिका करते थे। नहीं तो जनश्रुति के किस्से–कहानियों तथा लोकोक्ति – मुहावरों से मनोरंजन हुआ करता था।

पक्षियों में हंस–हंसिनी, पपीहा– पपीही तथा चकवा–चकवी, अटूट दाम्पत्य प्रेम के उदाहरण हैं....

''साझ भई देख के चकवी दीन्ही रोइ
चल चकवा उस देश में जहाँ रैन ना होइ।।''

इसी प्रकार से एक मादा मछली अपने नर मछली को विपत्ति–काल में याद करती है–

''वह दिन गये, वह रैन गई
पिऊ गये गहरे गगना!'' आदि–आदि।

सतीत्व की रक्षा के लिए स्त्रियों ने किन–किन कष्टों को नहीं उठाया। इन्होंने अपनी कांचन काया को धधकती हुई आग में झोंककर, जल–समाधि लेकर अपने सतीत्व की रक्षा की और अपने कुल को कलंकित होने से बचाया। दुराचारी आतताइयों को छलकर अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा की और अनेक कष्टों तथा यातनाओं को भोगते हुए भी ये अपने पवित्र पथ से विचलित नहीं हुईं। इन्होंने संसार की सम्पदा को अपने पैरों से ठुकरा दिया तथा संसार की कोई भी शक्ति इन्हें सोने या चाँदी के जाल में नहीं फंसा सकी। कुसुमा देवी और भगवती देवी के लोकोत्तर चरित्र से कौन परिचित नहीं है? जिन्होंने अपनी अलौकिक चातुरी तथा साहस के द्वारा आततायी मुगल सरदारों से अपना पिण्ड छुड़ाकर, अपने प्राणों को निछावर कर, दिव्य चरित्र का परिचय दिया है।

एक किस्सा में प्रोषितपतिका किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, मोती आदि देखकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है। परन्तु वह सुन्दरी कहती है कि, ''ए बटोही! तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतियों में वज्र पड़े। दुनियाँ में 'सत' छोड़ने से 'पत' नहीं रहता।''

''डाल भर सोना लेहु, मोतिया से मांग भरूँ,
जाति छाड़ि मोरे संग लागहु रे की।''

इस पर सती स्त्री उसका मुहतोड़ जवाब देती हुई कहती है कि...

''आगि लागो सोनवा, बजर परे मोतिया रे,
सत छोड़े कइसे पत रहिहें नु रे की।''

पुत्र जन्म के एक गीत में स्त्री की सतीत्व रक्षा के साथ ही उसका अदम्य उत्साह एवं अलौकिक पराक्रम दिखलाया गया है। नदी के पार जाने के लिए किसी स्त्री द्वारा नाव माँगने

पर कोई कामुक मल्लाह उसे हार और अंगूठी देने का लालच देकर व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह स्त्री पैरों से ठुकरा कर, नदी को तैर कर, पार चली जाती है। लौटती बेरी वह अपने भाई को इस दुष्ट मल्लाह की खाल खीचकर भूसा भरवा देने का आदेश देती है।

''अगिया लगाऊँ तोरी मुदरी, बजर परे तिलरी,

...   .

जाते हि दइया अकेलिन लौटत बिरन संग

केवटा खालवा कढ़ाय भूसा भरतेऊँ जवन मुख भाखेऊँ।

इस प्रकार सती स्त्रियों की अमर कहानी लोकगीतों में पाई जाती है। उनके अलौकिक सतीत्व के ज्वलन्त उदाहरणों से लोक–कथाएँ भरी पड़ी हैं।

'लोकसाहित्य में माता और पुत्री का प्रेम –'

यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति असीम होता है। परन्तु पुत्री भी उसे कुछ कम प्यारी नहीं होती। लोकगीतों में माता का प्रेम पुत्र की अपेक्षा पुत्री में अधिक दिखाई देता है। चाहे पुत्री के लालन–पालन और विवाह में कितना ही खर्च क्यों न उठाना पड़े, माँ का प्रेम से पूर्ण हृदय इसकी तनिक भी परवाह नहीं करता। कभी–कभी वह सोचती है कि काश! यह विवाह वर्ष–दर–वर्ष टलता रहे और बेटी अधिक से अधिक दिन उसके पास रहे...

''ताले क पानी पताले गई बेटी, पुरइनि गई कुम्हिलाइ रे!

गंगा जमुन बिच रेती परत हौ, कइसे क रचऊँ, बियाह रे!!''

खपरैले के छाजन वाले घर में रहने वाली माता हमेशा बेटी की विदाई को वर्ष–छमाही टालने के प्रयास में लगी रहती है। चाहे भले ही खाने का अनाज वर्ष भर में कम पड़ जाता हो, पर वह बेटी को विदा नहीं करना चाहती। गवना का साइत हुआ नहीं कि बेटी घर के किसी कोने में, और काम–काज करती हुई माता का सात–सात पाती आँसू झरना चालू!

पुत्री और माता तथा अन्य कन्याओं का गौना दोंगा के समय विदाई का रुदन–गीत 'अरे मोरे रनिया!' या 'अरे मोरे माई' से शुरू होकर बारी–बारी से उपस्थित महिलाओं का अंकवार भेंटना वातावरण को अत्यंत कारुणिक बना देता है। जैसे...

अरे मोरि रनिया! कवन अभाग हम कइली मोरी रनिया।।

काही क करम मोर फुटल मोरी रनिया।।

कतहुँ जहर मिली जात मोरी रनिया।।

खाई के जहर मर जाती मोरि रनिया।।''

आज से चालीस–पचास वर्ष पहले की बात है। लड़कियों के गौने–दोंगे की विदाई के समय आस–पड़ोस की लड़कियाँ ही नहीं, आधे–पूरे गाँव की महिलाएँ व बालिकाएँ भी देखने के लिए आतीं थीं। और जब गले लगकर रोने की प्रथा का आरम्भ होता था तो वह केवल प्रथा नहीं रह जाता था बल्कि हृदय–विदारक बयानों से सारा घर दहल उठता था। जिसके घर से व्याहता लड़कियों के घर वालों का मनमुटाव होता था, उनके घर की महिलाएँ और बच्चियाँ भी विदाई के समय अवश्य आईं होती थीं, और रोने से अपने को रोक नहीं पाती थीं। इन दूसरे–दूसरे घर की महिलाओं में भी एक–दूसरे के प्रति निश्छल ममता होती थी। किसी–किसी सभ्रांत परिवार में चार–चार, पाँच–पाँच लड़कियाँ रहती थीं। कभी एक की तो कभी–कभी एक ही साथ दो–दो, तीन–तीन लड़कियों की विदाई भी होती थी। बारी–बारी से विवाहिता और कुमारियाँ आपस में आलिंगन करके कभी बहनों से तो कभी माता, भाई, सखी तथा पिता से बयान कर–कर रोती थीं। ऐसा लगता था जैसे ससुराल कोई यातना का घर हो, जहाँ वह जा रही हैं। एक सच यह भी है कि अधिकांश घरों में सासुओं का कठोर अनुशासन हुआ करता था। मौसम की मार झेलती फसलों का कोई ठिकाना नहीं था कि वर्ष भर खाने को हो जाएगा कि नहीं! भले ही कुछ सम्पन्नता ही क्यों न हो पर मकर संक्रांति पर अधिकार– पूर्वक नैहर की खिचड़ी अवश्य अगोरती थीं।

'भाई और बहन का 'लोकसाहित्य में प्रेम'––'

भाई और बहन के विशुद्ध, सात्विक, दिव्य और अलौकिक प्रेम का जो वर्णन भारत के लोक गीतों में उपलब्ध होता है, वैसा आदर्श प्रेम का दर्शन संसार में अन्यत्र दुर्लभ है।

भाई बहन के घर गया है। वह सास से पूछती है कि मैं अपने भाई के लिए क्या–क्या भोजन बनाऊँ? दुष्टा सास तुच्छ कहे जाने वाले अन्न, कोदों और साँवा का नाम लेती है। इस पर वधू क्रोधित होकर कहती है कि "तुम्हारे कोदों–सावाँ में आग लग जाय।" और अपनी सास की इच्छा के विरुद्ध वह बासमती चावल का भात और मूँग की दाल बनाती है। वह पूड़ी और पालक का शाक भी तैयार करती है तथा सारी सामग्री को सबसे अच्छे से थाल में (सोना कहाँ इतना सस्ता है! प्रायः पीतल के थाल में) परोसकर भाई को भोजन कराती है।

नैहर में पिता या भाई का आना किसी उत्सव से कम नहीं होता है। कहा जाता है कि– "नैहर के कुकुरो (पालतू–पशुओं) से भी बहुत प्रेम होला...मनइन क त बात छोड़ द।"

आजकल तो लोग गेहूँ की रोटी प्रत्येक दिन खा रहे हैं। पर इक समय था कि पुराना चावल, अरहर की दाल और दो प्रकार की सब्जी, पूड़ी और खीर विशेष तौर पर महिलाएँ अपने भाइयों के या पिता के आने पर ही बनाती थीं। नहीं तो वर्ष भर बेर्रा, बाजरा, लतरी, जई, जौ, उरद, मूँग, सावाँ, कोदो ही बना करता था। गन्ने का रस, औटी, और भूने–तले आलू के सेवन से जाड़े का दोपहर–साँझ कट जाता था। मकई के भुट्टे से कभी–कभी एक मीटिंग वैसे

ही निकल जाता था। दूसरे मीटिंग ही खाना बन पाता था। पर मेहमान आने पर घी–पूड़ी, खीर आदि की आशा अवश्य की जाती थी। आज की तरह हर जगह समोसा और छेना नहीं बिकता था कि जब चाहे दुकान से मंगा लिया जाए। अब तो दिनों–दिन सबकुछ उपलब्ध हो जाता है। मेहमानों के पास भी समय नहीं रहता कि एक दिन भी ठीक से रुक सकें।

भाई के आने पर बहन कहती है, ''आज मेरा भाई आया है। अतः मेरे हृदय में अत्यंत प्रसन्नता है। ऐ भाटिन, तुम कोई गीत गावो, ऐ मेरी सास! तुम पूड़ी बनाओ।''

''आरे–आरे जोगिन भाटिन सब कोई गावहु हो।
मोरा जियरा भइल बा हुलास, बीरन मोर आवेले हो।
आरे आरे सासु बढ़इतिन करहिई चढ़ावहु हो।
आजु मोरा जियरा हिलोरे, बीरन मोर आवेले हो।''

बहन का भातृ–स्नेह सच्चा और सक्रिय है। दासी के द्वारा जब उसे समाचार मिलता है कि उसका भाई आ रहा है तब वह उत्कंठित होकर अटारी पर चढ़ जाती है। कोठे के झरोखे से वह अपने भाई को देखती है जो वल्लरी (लता आच्छादित वृक्ष) के नीचे खड़ा है। वह अपनी सास से चादर मांग कर भाई से मिलने के लिए चल पड़ती है...

''खिरकी से बहिनी जे चितवे
वीरन बेइलि नीचे ठाड़।
देहु न सासु मोरो अपनी चदरिया
वीरन मिलब हम जाइबि।।''

भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि ''भाई के चोट और केहुनी के घाव न सहाला।''

इससे पता चलता है कि बहन के हृदय में भाई के प्रति अगाध प्रेम, करुणा और स्नेह होता है।

भाई और बहन का प्रेम अन्योन्याश्रित होता है। भाई भी अपने प्रेम की अंजलि बहन को अर्पण करता हुआ दिखाई देता है। राजा गोपीचंद जब संसार को छोड़कर जोगी हो जाते हैं तब उनकी माता कहतीं हैं कि ''बेटा! तुम सब जगह जाना परन्तु अपनी बहन के पास मत जाना।'' इस पर वे उत्तर देते हैं कि ''माँ! मैं कहीं भले न जाऊँ परन्तु बहन के यहाँ अवश्य जाऊँगा।'' इससे गोपीचंद का बहन के प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रकट होता है। बहिन के विदाई के समय बहिन का उद्‌गार ''अरे मोरे वीरना....'' से प्रारंभ होता है जो अत्यंत कारुणिक दृश्य उपस्थित कर देता है।

इस प्रकार लोक गीतों में भाई–बहन के अलौकिक प्रेम का जो चित्रण किया गया है, वह अनुपम और अद्वितीय है।

'सास और बहू का लोक साहित्य में चित्रण———' लोकसाहित्य में जहाँ पिता—पुत्र, माता—पुत्री, पति—पत्नी और भाई—बहन का लोकोत्तर प्रेम दिखाई पड़ता है वहीं सास पतोहू, ननद—भावज और विभिन्न सपत्नियों का पारस्परिक व्यवहार अत्यंत कटु और विषमय उपलब्ध होता है। लोकगीतों में सास सदा 'दरुनियाँ '(दारुण) विशेषण में सम्बोधित की गई है। सास अपनी पतोहू से 'कटु—बचन' बोला करती है जो विष में बुझे वाणों के समान हृदय में प्रवेश करते हैं। वह पतोहू से कहती है कि ''केकर कमाई खइबी? भतार त परदेश गयल...।''

''सासु मोर बोलेली बिरहिया,
तू केकर कमइया खइबू ए राम।''

सास केवल कटुवचन ही नहीं बोलती बल्कि वह पतोहू को शारीरिक कष्ट भी देती है। वह वधू से इतना काम करवाती है जिसे करने में वह असमर्थ है। वह उससे बर्तन मजवाती है और गहरे कुएँ में से पानी भी भरवाती है। वधू की यह गाथा कितनी मर्मस्पर्शनी है:—

''कई मन कूटो भइया, कई मन पीसीला हो ना।
भइया कइ रे मन रीन्हीला रसोइया हो ना।।
सासू खाँची भर बासना मँजावेले हो ना।
सासू पताल से भरावेलै हो ना।।''

सास अनेक छोटी—छोटी बातों को लेकर बहू के चरित्र पर सन्देह भी करने लगती है। इस प्रकार वह अपने 'दरुनियाँ' विशेषण को चरितार्थ करती हुई दिखाई देती है।

'ननद और भावज का लोकसाहित्य में चित्रण————'

ननद और भावज का सम्बन्ध भी सास और पतोहू की अपेक्षा कुछ कम विषाक्त नहीं है। ननद अपनी माँ और भाई से भावज की शिकायत करती हुई पाई जाती है। वह बात—बात पर 'व्यंग्य—बाण' छोड़ती है जो मर्म को भेदने वाले हैं। ननद और भावज का यह झगड़ा कुछ नया नहीं है। यह चिरकाल से चला आ रहा है। संस्कृत के किसी कवि ने दुष्टा सास और मर्म—भेदन में पटु ननद का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। कोई स्त्री अपने दुःखों का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है कि————

''श्वस्रू पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभंगवक्रेक्षणा,
मर्मच्छेदपटुः प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननान्दा वचः।
अन्यासामपि किं ब्रमीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते,
कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि ।।''

इस श्लोक में ननद को कटु वचनों के द्वारा हृदय रूपी मर्मस्थल का भेदन करने में चतुर कहा गया है। यह विशेषण ननद के लिए उपयुक्त ही है। इसकी पुष्टि लोकगीतों से पूर्ण

रूप से होती है। कभी–कभी संकोची बेटे–बहू का दाम्पत्य–जीवन का सुख, इन सास और ननद के द्वारा रचे गए ईर्ष्या जनित चक्रव्यूह में भेंट भी चढ़ जाता है।

'लोक साहित्य में सौतिया डाह–––' सौतिया डाह अत्यंत कष्टप्रद मानसिक स्थिति होती है। जिसमें जलने वाले व्यक्ति को इक–पल भी चैन नहीं मिलता। यदि समझदारी नहीं है तो बड़ी भयावह स्थिति बन जाती है। जिसका संघर्ष नारियों के सन्तानों को भी डाह के लपेटे में ले लेती है। एक देहाती कहावत है कि ''काठ की भी सवत अच्छी नहीं लगती है।'' फिर यदि वह 'सजीव', जवान और सुन्दर भी हो, तो कष्ट का कहना ही क्या! गृहशान्ति सदा के लिए नष्ट हो जाती है और घर सौतों के लड़ने का अखाड़ा बन जाता है। विदेशिया के गीतों में गृहिणी को प्रायः डर बना रहता है कि विदेश गया हुआ परदेशी किसी बंगालन के मायाजाल में फंस न जाए। भिखारी ठाकुर के विदेशिया के गीतों में इस चिन्ता को बहुत ही मार्मिक ढंग से रखा गया है।

लोक साहित्य में साधारण जनता के सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ ही आर्थिक पक्ष का चित्रांकन भी उपलब्ध होता है। जहाँ ग्रामीण जीवन में सुख और समृद्धि का सागर हिलोरें मार रहा है, वहीं घोर निर्धनता, हीनता और दीनता का वीभत्स कंकाल सामने दिखाई पड़ता है। जहाँ देहाती–दुनिया में धन–धान्य और वैभव का साम्राज्य दिखाई देता है, वहाँ दुःख, गरीबी और भूख का भैरव–नाद भी सुनाई पड़ता है। जहाँ झूमर में सोने की थाली में भोजन करने और सुवर्णमय पात्रों से जल पीने का वर्णन होता है, वहीं टूटी हुई खाट और टपकते हुए छप्पर का मर्मस्पर्शी चित्रण हमारे हृदय को विचलित कर देता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सुख–दुःख, आशा–निराशा, विलास– वैभव और दैन्य–दीनता के उभय पक्षों का वर्णन लोकसाहित्य में पाया जाता है।

''पूरब से पूरब जिन जइहौं रे विदेशिया
पूरब हव जादू क देश रे विदेशिया।
वही जादू–देशवा में रह ल बंगलिनिया
रूपवा हौ ओकर कलेस रे विदेशिया ।।''

कभी–कभी ऐसा भी होता था कि परदेश गया हुआ पति कोई सौत लाकर घर में बैठा देता था। पति पर एकाधिकार टूटते ही गृहस्वामिनी का स्वाभिमान भी टूट जाता था। फिर एक–दूसरे के विरूद्ध षड्यंत्रो का उपक्रम प्रारंभ हो जाता था।

सौत की तो कल्पना भी दूसरी स्त्रियों को दुःखदायी होती है। वह उसके प्रतीक से भी घृणा करती हैं। प्रियतम के अधरों को स्पर्श करने के कारण गोपिकाएँ वंशी से भी विरोध रखती थीं। वही बात सभी नारियों में होता है। कोई स्त्री कहती है कि :–

''राजा के बंशी सेजरिया पर बाजे,
सवतिया होके सुनबि–सुनबि राउर बंशी।''

एक झूमर में सपत्नी की चिन्ता के कारण नींद न लगने का उल्लेख पाया जाता है।

''लागति नाहीं निनिया ए राजा जी
बायें सूतलि बा सवतिया ए राजा जी,
लागति नाहीं निनिया ए राजा जी।''

सौतिया डाह कभी–कभी उग्र रूप धारण कर लेता है। पहले तो सौतें आपस में वाग्वाणों का ही व्यवहार करती हैं, परन्तु जब यह शस्त्र सफल सिद्ध नहीं होता तब हाथापाई की नौबत आ जाती है। किसी लोक–कवि द्वारा एक गीत में दो सौतों का आपस में झोटा–झोटौवल करने का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। जिसकी केवल दो पंक्तियाँ यहाँ पर्याप्त है.....

''उढ़री वियही करे झोंटी क झोंटा हो ना,
रामा राजा बैठि डेहरी झंखे हो ना।''

एक दूसरे गीत में कोई बहू अपनी सौत, जो सुनारिन है, कि हत्या करने के लिए सास से छूरी और कटारी माँग रही है।

''देहु न सासु हो छुरिया कटरिया,
कतल कइ घलबो सोनारिन हो।''

'(ब) आर्थिक पक्ष लोकसाहित्य में चित्रण'

लोक साहित्य में साधारण जनता के सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ ही आर्थिक पक्ष का चित्रांकन भी उपलब्ध होता है। जहाँ ग्रामीण जीवन में सुख और समृद्धि का सागर हिलोरें मार रहा है, वहीं घोर निर्धनता, हीनता और दीनता का वीभत्स कंकाल सामने दिखाई पड़ता है। जहाँ देहाती–दुनिया में धन–धान्य और वैभव का साम्राज्य दिखाई देता है, वहाँ दुःख, गरीबी और भूख का भैरव–नाद भी सुनाई पड़ता है। जहाँ झूमर में सोने की थाली में भोजन करने और सुवर्णमय पात्रों से जल पीने का वर्णन होता है, वहीं टूटी हुई खाट और टपकते हुए छप्पर का मर्मस्पर्शी चित्रण हमारे हृदय को विचलित कर देता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सुख–दुःख, आशा–निराशा, विलास– वैभव और दैन्य–दीनता के उभय पक्षों का वर्णन लोकसाहित्य में पाया जाता है।

'ब) लोकसाहित्य में निर्धनता का वर्णन––––––'

हम सभी ने जायसी के 'पद्मावत' में नागमती के वियोग वर्णन को पढ़ा है, उस पर लोकसाहित्य और किस्सागोई का प्रभाव है। लोकसाहित्य को ही उठाकर जायसी ने 'अवधी का अरघान' बना दिया। पद्मावत से बहुत पहले उस प्रकार के चौमासा और बारहमासा का वर्णन लोकसाहित्य में होता रहा है जो पूर्ववर्ती वाल्मीकि के रामायण से लेकर हेमचन्द्र के 'प्राकृत–प्रकाश' के बारहमासा तक में देखा जा सकता है। तभी नागमती के वियोग–वर्णन में 'रानी का वर्णन' एक विपन्न स्त्री की तरह हुआ है।

लोकसाहित्य में कोई निर्धन स्त्री गीतों के माध्यम से अपने दुःख तथा गरीबी का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरा छप्पर टूटा हुआ है और वर्षा की बूँदें टपक रही हैं। मेरी सुधि लेने वाला कोई नहीं है। मेरा जेठ अपना बंगला छवाता है। उस स्त्री के घर को भला कौन छवाएगा, जिसका पति परदेश में है। इस गीत में दुखिया स्त्री के निर्धन जीवन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह अवधी गीत इस प्रकार है....

''टुटही मड़इया बुनिया टपकइ रे।
के सुधि लेबै हमार
जेठा छवावइ आपन बंगलवा
देवरा छवावै चौपार
हमरा मंदिरवा केऊ न छवावै,
जेकर पियवा विदेश।।''

इस प्रकार कोई भोजपुरी गरीब स्त्री विलाप करती हुई कहती है कि ''मेरा पति तो पूर्व देश बंगाल में व्यापार करने जा रहा है। अब मेरे उजड़े हुए घर को कौन छवाएगा?''

''पियवा जे चलेले पूरब बनिजिरया
से केइ रे छइहें ना,
उजड़ल बँगलवा से केइ रे छइहें ना।''

एक समय था पहले का जब गाँवों में गरीबों को रहने के लिए न झोपड़ी था न पहनने को वस्त्र। उपर्युक्त गीत में स्त्री ऐसी ही गरीबी की मूर्तिमयी प्रतिनिधि है। हमारे गाँवों में निवास करने वाली अनगिनत अभागिन स्त्रियाँ इसी प्रकार थोड़ी–थोड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तरस कर रह जाती रही हैं।

मँहगाई के कष्टों से पीड़ित कोई ग्रामीण युवा कह रहा है कि मँहगाई के कारण पेट की ज्वाला से पीड़ित होने से 'बिरहा' गाना भूल गया। अब कजरी और कबीर के गीत अच्छे नहीं लगते। सुन्दरी युवती के उभरे हुए यौवनों को देखकर अब मेरे ह्रदय में पीड़ा नहीं होती...

''मँहगी के मारे बिरहा बिसरिगा,
भूलि गइली कजरी कबीर।
देखि के गोरी के उभरल जोबनवा,
अब उठे ना करेजवा में पीर ।।''

सचमुच पेट की मार बड़ी तीव्रतर होती है। जब पेट खाली होता है तब साहित्य संगीत की चर्चा सूखी जान पड़ती है। 'भूखे भजन न होंहि गोपाला।'

आजकल भी इस प्रकार के गीतों की रचना की जा रही है। जिसमें सादगी के साथ मंहगाई आदि आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का चित्रण लोकगीतों में किया जा रहा है। जैसे चलचित्र 'पीपली–लाइव' का यह गीत...

''सखी सइयाँ त बहुत कमात हौ
मंहगाई डायन खाए जात हौ''

'लोक साहित्य में किसान–जीवन और उसके साध का वर्णन———'

भारतीय किसान का जीवन बड़ा सीधा–साधा सरल होता है। वह थोड़े में सन्तोष प्राप्त कर लेता है। अतएव उसका जीवन सुखी होता है। नीति शास्त्र के विद्वानों ने भी कहा ही है कि ''संतोषं परमं सुखम्।'' अर्थात् सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है। किसान का जीवन सन्तोष का उत्कृष्ट उदाहरण है। एक मारवाड़ी गीत इस प्रकार है....

''उठे हो पीरो होय उठे हो सास रो
अथूड़े होय न खेत चवे न आसरो।
नाड़ा खेत नजीक जड़े खोलणा
इतना दे करतार फेर नहीं बोलणा।।''

जिसका भाव यह है कि– ''उसके पिता का घर और उसकी ससुराल एक ही गाँव में हो; खेत पश्चिम में हो, झोपड़ी वर्षा के दिनों में टपकने वाली न हो। तालाब खेत के पास ही हों, जिसमें बैलों को पानी के लिए दूर न जाना पड़े। यदि भगवान इतना दे दे तो कुछ और माँगने की आवश्यकता नहीं है।'' इससे पता चलता है कि किसान जीवन की साध तथा उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? उसकी आवश्यकताएँ कितनी सीमित है। 'सुत्तनीपात' में एक गीत इस प्रकार है....

''पक्कदनो दुद्धखीरोहमस्मि
अनुतोरे महिया समानवासो।
छन्ना कुटि आहिलोगिनि
अथ च पत्थयसी पवस्स देव ।।''

अर्थात् मेरे यहाँ भोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। मेरे घर में दूध देने वाली गाये हैं। मैं नदी किनारे अपने कुटुम्बियों के साथ घर में रहता हूँ। मेरा घर अच्छी तरह से छाया गया है जिससे चूने का डर नहीं है। मेरे यहाँ जलती हुई आग भी उपस्थित है। अतः हे देव! तुम जितना चाहो बरस लो। इस गीत में जो अलौकिक ओज, अदम्य उत्साह, सन्तोष की ज्वलंत भावना, विपत्तियों के प्रति चुनौती और जीवन के प्रति जो सच्ची आस्था विद्यमान है वही लोकगीतों की आधार–शिला है।

ग्रामीण जीवन के सादगी और सरलता की प्रशंसा संस्कृत साहित्य में भी उपलब्ध होती है। देहाती जगत की सरलता पर मुग्ध होकर कोई कवि कहता है कि हे सुन्दरी! गँवई के लोग बड़े सुखी हैं। वे साठी के चावल का मीठा भात खाते हैं, सरसों का साग और मीठी दही का स्वाद लेते हैं। इस प्रकार वे थोड़े से ही व्यय में मीठा तथा स्वादिष्ट भोजन करते हैं। उनका नदी–खेत के किनारे का गाँव और उसमें बना 'घर', हर मौसम की गहन अनुभूति देता है।

'लोक साहित्य में धार्मिक जीवन का चित्रण––––'

लोकसाहित्य, विशेषकर लोकगीतों में सामान्य जनता की धार्मिक परिस्थिति का चित्रण उपलब्ध होता है। यद्यपि नयी सभ्यता तथा शिक्षा के चाक–चिक्य के कारण हमारी प्राचीन धारणाओं और विश्वासों में परिवर्तन होने लगा है परन्तु लोक–संस्कृति की सरिता आज भी अपनी अक्षुण्ण गति से प्रवाहित हो रही है। ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उसी प्रकार से व्रत रखती हैं और अपनी अभीष्ट कामनाओं की सिद्धि के लिए देवताओं की पूजा करती है जिस प्रकार से प्राचीन काल में की जाती थी। पुरुष वर्ग भी अपनी धार्मिक भावनाओं और विधि–विधानो को सँजोकर थाती के समान सुरक्षित रखे हुए हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष में अनेक राजनीतिक उथल–पुथल हुए, अनेक क्रान्तियाँ हुईं परन्तु हमारी धार्मिक विचार–धारा में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। फलतः लोकसाहित्य में जनता के धार्मिक जीवन का सजीव चित्रण अंकित किया गया है।

'बहुदेववाद की संस्कृति और लोकसाहित्य में पूजन –––' लोकगीतों में जिन मुख्य देवताओं की पूजा की जाती है, उनमें शिव जी सबसे अधिक प्रचलित है। वे होली– कजरी सब लोक–गानों में विद्यमान रहते हैं। 'भगवान शिव' देवता के रूप में ही चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि एक साधारण गृहस्थ के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं। इनकी पूजा प्रत्येक गाँव में की जाती है। कोई भक्त स्त्री कहती है कि ''ए सखी! शिव जी के मन्दिर में दर्शन के लिए चलो।'' कोई इनके मन्दिर में अक्षत–चन्दन चढ़ाता है और कोई लाल चूनर चढ़ाकर अपनी अभीष्ट सिद्धि की प्रार्थना करता है। स्त्रियाँ षष्ठी माता की पूजा कार्तिक मास में किया करती हैं। वह सूर्य उपासना का पर्व है, जिसके गीत अत्यंत सरस और कर्णप्रिय होते हैं....

''काचहि बास क बहंगिया, बहंगी लचकत जाय
पहिनी ना पिया जी पीयरिया, दौरा घाटे पहुँचाय
दौरा में सजल बाटे फल–फलहरिया
पियर–पियर रंग सोहे ल डगरिया
जिहिकर जाग जाला भगिया, उहै छठ घाटे आय।।''

पुत्र अभिलाषिणी कोई स्त्री भगवान् सविता से प्रार्थना करती हुई कहती है कि ''हे भगवान! मैं अर्ध्य प्रदान करने के लिए कब से खड़ी हूँ। अब मेरा पैर दुःखने लगा है और कमर में पीड़ा हो रही है। अतः आप शीघ्र उदय लीजिए, जिसमें मैं अर्ध्य प्रदान कर सकूँ!

''गोड़वा दुःखइले रे डाड़वा पिरइले,
कब से बानी हम ठाढ़।
आरे हाली–हाली उग सुरूजमल,
अरघ दिआउ।।''

कोई स्त्री कहती है कि हे राजन! मैं अधिक पुत्रों को नहीं चाहती। केवल पाँच पुत्रों को पाकर ही सन्तुष्ट हो जाऊँगी। वह सूर्य की पूजा के लिए अक्षत और जल लिए हुए है, जिससे सूर्य को अर्ध्य दे सके।

''खोंइछा अछवता गडुववा जुड़ पानी,
चलली कवन देव अदित मनावे।
थोर नाहीं लेबों आदित बहुत न माँगिले,
पाँच पुतर आदित हमरा के दिहिती।''

मारवाड़ में अनेक देवी– देवताओं के गीत गाये जाते हैं। जिसमें हनुमान और भैरूँ जी (भैरव जी) अधिक प्रसिद्ध है। कोई मारवाड़ भक्त कहता है कि 'बाबा बजरंग की मूर्ति बड़ी भव्य है। कमर में लाल लंगोटा और माथे पर सिन्दूर का तिलक है। बाबा बजरंग आसन लगाकर बैठे हैं। अपने ब्रह्मचर्य के प्रताप से बजरंग जी ने रावण की अशोक वाटिका विध्वंस कर डाला और राजा रामचन्द्र जी के कार्य को सिद्ध किया। माता अंजनी की कोख धन्य है जिसने हनुमान जैसे पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया।'

''लाल लंगोटो तिलक सिन्दूर को
बैठ बजरंग आसण ढाल।
बाग बिधूस्या, लंका दलमली
सारया राजा रामचन्द्र का काम।
धन माता अंजनी की कूख,
उड़ जायो हड़वन्त पूत।
बाबा बजरंग रो बँगलो हद वण्यो।।''

लोक—कथाओं में देवी—देवताओं की पूजा का वर्णन बहुधा हुआ है। इन कथाओं में पुत्र की प्राप्ति, धन के लाभ तथा बच्चे की नीरोग कामना के निमित्त दुर्गा माता, हनुमान और सत्यनारायण बाबा की अनेक मनौतियाँ मनाई जाती है। भूत—दूत की पूजा का उल्लेख भी स्थान—स्थान पर किया गया है। ग्रामीण जनता का जीवन धर्म से ओत—प्रोत है। जिसका दर्शन लोक—गीत और कथाओं में सर्वत्र पाया जाता है।

लोक—साहित्य में 'सर्वभूतहिताय और सर्वजनसुखाय' की भावना प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। गाँवों में परोपकार के लिए कुआँ खोदवाने, तालाब बनवाने और बाग लगवाने की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है। ऐसा कार्य जिससे दूसरे मनुष्यों को सुख मिले ग्रामीण लोगों को अधिक प्रिय होता है। एक लोक—गीत में यह भाव व्यक्त किया गया है कि कुआँ खोदने का फल यह है कि पानी भरने वाली पनिहारिनों की भीड़ लगे। आम का पेड़ लगाने का उद्देश्य यह है कि बटोही मन चाहा फल तोड़ कर खाया करें। तालाब बनवाने की सार्थकता इसमें है कि मनुष्य, पशु, पक्षी सभी इसके शीतल जल का उपयोग कर आनन्द का लाभ प्राप्त करें। स्त्री जन्म की सफलता इसी में मानी जाती है कि उसकी गोद पुत्र—रत्न से सुशोभित होती रहे।

इस प्रकार लोक गीतों में ग्रामीण संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। हमारी ग्राम संस्कृति इन्हीं आदर्शों के सहारे सहस्त्रों वर्षों से अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। ऊपर उल्लिखित गीत में सर्वजनसुखाय की भावना व्याप्त है, जो हमारे ह्रदय में सर्वेअ्त्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः' की उदात्त भावना को जागृत करती है। लोक गीतों में अन्तर्निविष्ट मंगल की यह प्रवृत्ति संसार के कल्याण की आधारशिला है।

संदर्भ ग्रन्थ –

1) डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय,
2) दुर्गाशंकर सिंहः भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस
3) राम नरेश त्रिपाठीः हमारा ग्राम—साहित्य, कविता—कौमुदी भाग—5 (ग्राम—गीत)
4) राकेशः मैदानी लोक गीत
5) सूर्यकरण पारीकः राष्ट्रीय लोक गीत भाग—एक
6) डॉ. रामशंकर त्रिपाठी—सम्पादक, अवधीः विविध आयाम
7) जनश्रुति।

बृजेश आनंद राय, प्रवक्ता : ग्रामोदय कॉलेज, गौराबादशाहपुर, जौनपुर (उत्तर प्रदेश)
मो. : 9451055830, 6394806779, ई—मेल : brijeshanandraj@gmail.com

✧ ✧ ✧

यूट्रेस

डॉ. रंजना जायसवाल

इधर–उधर की बातें करके पंकज ने फोन रख दिया। पंकज की बड़ी खराब आदत थी, वह हमेशा फोन स्पीकर पर रख कर बात करते थे। नवीन की आवाज रसोई घर तक आ रही थी। कितनी बार भावना का पंकज से इस बात को लेकर झंझट भी हो जाता था। नवीन के अंतिम वाक्य को सुन चाय छानती भावना के हाथ काँप गये और गर्म चाय की कुछ बूंदें उसके हाथों पर छलक गई, मुँह से एक टीस उभर आई, उसकी आँखों में धुंधलका छा गया। ये धुंधलका उसके आँसुओं की वजह से ही था, उसकी आँखें कब नम हो गई, आँखों के कोर कब भीग गये उसे पता भी नहीं चला।

भावना जब से अस्पताल से लौट कर आई थी मन बहुत उखड़ा – उखड़ा सा था। इन दिनों तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती थी।

''मैं अपने लिए चाय बनाने जा रही हूँ, आप पियेंगे।''

''इस वक्त चाय...!''

पंकज ने कलाई में बंधी घड़ी पर नजर डालते हुए कहा,

''सर में दर्द हो रहा है, आप पियेंगे या फिर...''

अपनी बात को अधूरा छोड़ भावना रसोईघर की ओर बढ़ गई।

''थोड़ी सी मैं भी ले लूँगा।''

पंकज ने अपनी आवाज के सुर को बढ़ाते हुए कहा, पंकज अपना फोन लेकर बैठ गए और नवीन को फोन घुमा दिया।

'' कैसे हो नवीन...''

''नमस्ते पापा! कैसे हैं आप... मैं ठीक हूँ। आज तो आप मम्मी को लेकर अस्पताल जाने वाले थे, क्या हुआ... क्या बताया डॉक्टर ने...''

''ऑपरेशन बताया है... डॉक्टर ने कहा है जल्दी ही करा दीजिए टालने का कोई मतलब नहीं है। अपनी मम्मी को

समझाओं, जब से आई हैं मुँह लटकाए टहल रही हैं। आज के जमाने में यह आम बात है। हर दूसरी औरत का यूट्रेस का ऑपरेशन होता है। डॉक्टर ने कहा है एक हफ्ते की बात है, एक हफ्ते में अस्पताल से छोड़ देंगे। डेढ़–दो महीने परहेज करना पड़ेगा फिर जैसा चाहो वैसे जियो... बस भारी सामान उठाने को मना किया। थोड़ी बहुत सावधानी बरतनी होगी।''

''ठीक कह रहे हैं आप... इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। घबराना कैसा? मम्मी का बेस्ट अस्पताल में इलाज कराइए, पैसे की चिंता मत कीजिए। मैं तो कहूँगा उन्हें दिल्ली ले जाइए, एक से एक बढ़िया और लग्जरी अस्पताल हैं। ऐसे–ऐसे अस्पताल हैं कि पूछिये ही मत... किसी फाइव स्टार होटल से कम नहीं होते है ये अस्पताल। हर तरह की सुख–सुविधा... डॉक्टर एक पैर पर खड़े रहते हैं। आप को और मम्मी को कोई तकलीफ नहीं होगी। मैं कल ही अकाउंट में पैसे डाल देता हूँ। हमारा आना तो संभव नहीं है, आप से हाल–चाल तो मिलता ही रहेगा।''

इधर–उधर की बातें करके पंकज ने फोन रख दिया। पंकज की बड़ी खराब आदत थी, वह हमेशा फोन स्पीकर पर रख कर बात करते थे। नवीन की आवाज रसोई घर तक आ रही थी। कितनी बार भावना का पंकज से इस बात को लेकर झंझट भी हो जाता था। नवीन के अंतिम वाक्य को सुन चाय छानती भावना के हाथ काँप गये और गर्म चाय की कुछ बूंदें उसके हाथों पर छलक गई, मुँह से एक टीस उभर आई, उसकी आँखों में धुंधलका छा गया। ये धुंधलका उसके आँसुओं की वजह से ही था, उसकी आँखें कब नम हो गई, आँखों के कोर कब भीग गये उसे पता भी नहीं चला। मन न जाने क्यों खट्टा हो गया था, जिस बेटे के लिए न जाने कितनी रातें जागरण कर–कर के बिताई थी। जो जरा सी चोट लगने पर रो–रोकर घर सर पर उठा लेता था। आज उसे अपनी माँ का ऑपरेशन एक छोटी सी बात लगती थी। भावना न जाने क्यों झुंझला गई।

''एक तो आप कम सुनते हैं और दूसरे को भी बहरा बनाने पर तुले हुए हैं।''

पंकज ने मासूमियत से कहा,

''कुछ भी कह लो अब तो इसी बुड्ढे के साथ ही जीवन बिताना है, मुझे छोड़कर जाओगी भी कहाँ?''

सच ही तो कह रहे थे पंकज...मायके की दहलीज तो वैसे भी पराई मानी जाती है। माँ–पिताजी के आँख मुंदते ही वह उस घर के लिए बिल्कुल ही पराई हो गई थी। सम्बंध शादी–विवाह और तीज–त्योहार पर बधाई देने तक ही रह गये थे। पंकज जब से डॉक्टर के यहाँ से आये थे, तब से उसे समझाने की कोशिश कर रहे थे पर वो...

''तुम भी न फालतू में डर रही हो, अरे वो जमाना गया कि ये मत खाओ वो मत खाओ... मेडिकल साइंस में बहुत उन्नति हो गई है। अब ये सब तो छोटे–मोटे ऑपरेशन माने जाते हैं।''

''पर वो...''

''पिछले साल मैंने भी तो मोतियाबिंद का ऑपरेशन कराया था, बताओ क्या दिक्कत हुई थी। पति सेवा करने के लिए तैयार है और तुम...''

पंकज ऐसे माहौल में भी चुटकी लेने से बाज नहीं आये।

भावना सोच रही थी। क्या यूट्रेस का ऑपरेशन कराना उसके लिए इतना आसान था। कहते हैं एक बच्चे को जन्म देने में सिर्फ बच्चे का नहीं एक औरत का भी पुनर्जन्म होता है। डॉक्टर्स भी ये मानते हैं कि एक बच्चे को जन्म देते समय महिला को बीस हड्डियों के एक साथ टूटने जितना दर्द होता है। पुरुष में तो ये दर्द सहने की क्षमता भी नहीं होती है। वो तो ये दर्द बर्दाश्त भी नहीं कर सकते। इतना दर्द होने पर पुरुष की मौत भी हो सकती है। सात साल...सात साल तक उसने माँ बनने का इंतजार किया था। शहर का कोई डॉक्टर, कोई वैद्य जहाँ उसने इलाज न कराया हो, यहाँ तक की कोई मंदिर, मस्जिद, दरगाह नहीं बची थी जहाँ उसने माथा न रगड़ा हो, झोली न फैलाई हो।

लोगों ने उसे शुभ कामों में बुलाना तक छोड़ दिया था। वही ननद जो नवीन के पैदा होने पर फूली नहीं समा रही थी, उन्होंने ही अपनी बेटी के शादी में पैर तक नहीं पूजने दिया था। उन्हें डर था कि उसके जीवन की काली छाया उनकी बेटी के सुनहरे भविष्य पर न पड़ जाये पर किसे पता था भावना को मनहूस और बाँझ समझने वाली ननद के जीवन में ऐसी कालिख पुतेगी। दो बार गर्भवती होने के बावजूद उनकी बेटी शुभी को सन्तान का सुख प्राप्त न हो सका, गर्भ ठहरता ही नहीं था। शुभी को यूट्रेस का कैंसर हो गया था।

''जिंदगी बचानी है तो यूट्रेस तुरन्त निकलवा दीजिये।''

कितना रोई थी वो... उम्मीद का वो सहारा भी उससे छीना जा रहा था। दीदी भी कितना छटपटाई थी। शुभी का मासूम चेहरा देख–देख उनके आँसू नहीं रूकते थे। दीदी अपनी संतान के लिए छटपटा रही थी और शुभी अपनी संतान के लिए...

आज भी उसे वो दिन याद है, भावना की छोटी बहन की शादी थी। भैया–भाभी उसे विदा कराने आये थे। दीदी के बच्चों की छुट्टियाँ चल रही थी, दीदी उन दिनों पीहर में ही थीं। भाभी ने दबे स्वर में दीदी से कहा था।

''जब ईश्वर को मंजूर नहीं है तो क्या किया जा सकता है। जीजा जी आप लोग बच्चा गोद क्यों नहीं ले लेते? आजकल तो ये आम बात है, बच्चे को माँ बाप मिल जायेंगे और

दीदी–जीजा जी को सन्तान...''

दीदी ने वहीं खड़े–खड़े ही भाभी को इतना सुनाया कि भाभी ने फिर कभी उसके घर में कदम भी नहीं रखा।

'' भाभी! ये किताबी बातें किताबों में ही रहने दीजिए। दूसरों के घर में होता होगा पर हमारे घर में नहीं...न जाने किस का खून हो। किस जाति और धर्म का हो। ऐसे कैसे किसी को उठा लाये, कोई मजाक है क्या...''

आज वही दीदी शुभी को दुनियादारी समझा रही थी,

''किसकी संतान अपने साथ रही है। तुम भी तो मेरी संतान हो पर मेरे साथ कहाँ रहती हो। तुम्हारा भाई वहाँ विदेश में पड़ा है और तुम अपने ससुराल... बताओ क्या फायदा है सन्तान पैदा करने का। हर आदमी अपने जीवन में अकेला ही है। जहाँ तक बच्चों की बात है, अगर तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम्हें भी माँ बनना चाहिए तो किसी अच्छे से अनाथ आश्रम से हम बच्चा गोद लेते हैं। तुम्हें सन्तान मिल जायेगी और एक अनाथ को माँ–बाप।''

न जाने दिल के किसी कोने में कुछ चटक सा गया था, शायद दिल ही... क्योंकि रिश्तों के धागे तो कब के टूट चुके थे, जिसकी चटकन वो उस आज तक महसूस करती थी। पंकज का तो वो नहीं जानती पर भावना उन्हें कभी माफ नहीं कर पाई। क्योंकि इस धागे में न जाने कितनी गाँठें थी अपमान की, आँसुओं की, वितृष्णा की, घृणा की और न खत्म होने वाली फासले की। वो उसके लिए बस पंकज की बहन और नवीन की बुआ भर ही रह गई थी। शायद ठीक भी था, एक औरत का दर्द अगर औरत न समझ सके तो उसके औरत होने का क्या मतलब... पंकज दीदी से बहुत छोटे थे। कहने को तो वो उनकी बहन थी पर उन्होंने पंकज को माँ की तरह पाला था। ग्यारह साल बड़ी थी वो पंकज से... उम्र का एक लंबा फासला था उन दोनों में, दीदी माँ–बाबूजी की पहली संतान थी, नाजों से पाला था उन्हें... फिर भी एक बेटे की कमी खलती ही थी। माँ जी ने बताया था... कुल के दीपक के लिए उन पर दबाव पड़ने लगा। सिर्फ सन्तान होना ही काफी नहीं होता लड़का या लड़की का होना भी बहुत मायने रखता है।

''तुम लोग कोई अमर होकर थोड़ी आए हो कि जिंदगी भर यही बैठे रहोगे। कल तुम लोगों के बाद बिटिया का तो मायका ही खत्म हो जाएगा उसे भी तो मन करता होगा कि उसका भी कोई भाई होता जिसे वह राखी बांधती।''

उसकी ददिया सास ने यही तो उनसे कहा था। भावना अक्सर सोचती थी, अगर पहली संतान बेटा हो जाये तो क्या पुत्र हो जाने के बाद बेटी के जन्म के लिए भी लोग ऐसा ही सोचते होंगे। दीदी की खुद पहली संतान बेटा ही था फिर भी उन पर भी कितना दबाव

था। एक बार उनके बेटे से भावना के सामने ही किसी ने पूछ लिया था।

''तुम अकेले बोर नहीं हो जाते। मम्मी से कहो तुम्हारे लिए बहन लाकर दे। वह तुम्हारे साथ खेलेगी, तुम्हारे हाथों पर राखी भी बाँधेगी।''

तब नन्हे मासूम पार्थ ने कितनी मासूमियत से कहा था,

''ताई जी की बेटी मेरे हाथों में राखी बाँधती है न...''

''अपनी तो अपनी होती है, दूसरों से क्या उम्मीद रखना...''

मासूम पार्थ सगी चचेरी का फर्क नहीं जानता था, दीदी भी तो नहीं चाहती थी कि वो उस फर्क को जाने या समझे। खून के रिश्ते सिर्फ खून के रिश्ते होते हैं। बहन सिर्फ बहन होती है, सगी या चचेरी नहीं पर सोचने और होने में बहुत फर्क होता है। जमीन–जायदाद के कारण दीदी का अपनी जिठानी के साथ सम्बन्ध खराब हो गए और सम्बन्धों की टूटन के साथ रिश्तो ने दम भी तोड़ दिया। दीदी की जेठानी ने अपनी बेटी से पार्थ को राखी बंधवाना बंद कर दिया। पार्थ उस दिन कितना रोया था, दीदी बताती थी जब भी राखी का त्यौहार आता, वह उदास हो जाता। सुबह जल्दी उठ जाने वाला पार्थ उस दिन देर सुबह तक सोता रहता है, दीदी भी उसे जगाती नहीं थी। जानती थी उसका मासूम दिल किस कशमकश से गुजर रहा है, जानती थी उसकी इस कशमकश का इलाज उनके पास शायद किसी के पास नहीं है। कितना कसमसाई थी वो उस दिन...

''ये दुनिया ऐसी ही है।''

पंकज ने उसे सांत्वना देते हुए कहा था। धरती भी तो माँ है, वो भी अपने कोख में न कितने रंग समेटे रखती है। वो भी तो एक माँ थी। नवीन के आगमन की सुगबुगाहट ने उसके जीवन मे खुशियाँ भर दी। नवीन ने सिर्फ उसकी कोख नहीं भरी थी, वो उम्मीद थी, उसके खोये हुए सम्मान को वापस लाने में, वो उसकी रहगुजर थी। क्या इतना आसान था उस कोख को यूँ अपने शरीर से बाहर निकल देना। वह सिर्फ उसके एक माँ होने की पहचान नहीं था, एक औरत होने की भी पहचान थी। सच कहूँ तो बना दी गई थी, कम से कम उसकी वजह से वो बाँझ होने के आरोपों से मुक्त तो हो ही गई थी पर नवीन के विदेश जाने के बाद वो फिर से वही जीवन जी रही थी। सच कहा है किसी ने स्त्रियाँ पैदा नहीं होती स्त्रियाँ बना दी जाती हैं।

नवीन के पैदा होने से पहले अकेली वो तब थी और आज भी... नवीन के पैदा होने से पहले वो और पंकज पति–पत्नी थे पर उसके पैदा होने के बाद वह सिर्फ माता–पिता ही बनकर रह गए। नवीन जब छोटा था तो उसकी छोटी–छोटी चीजों का ध्यान रखना उसके भविष्य के लिए सपने गढ़ना फिर उन सपनों की परिणति के लिए प्रयास करना... उन सपनों की परिणति के पश्चात फिर से नए सपनों को बुनना यही तो उसका जीवन रह गया था।

नवीन के सपनों के ताने–बाने में जिंदगी की चादर न जाने कब और कितनी बढ़ गई कि खुद की इच्छाओं और सपनों की चादर खुद में ही सिमट कर रह गई। स्कूल में हमेशा भूगोल में पूरे नम्बर मिलते थे पर जिंदगी का भूगोल उसे कभी समझ नहीं आया। आधे–पूरे से सपने टूटी–फूटी सी ख्वाहिशें के सहारे वो आज तक जीती आ रही थी।

आज भी मौसम बदलने के साथ नवीन की पैदाइश के समय लगाया गया वह इंजेक्शन उसे रह–रह कर टीस दे जाता है पर उस टीस के साथ चेहरे पर मातृत्व की झलक भी साथ ही उभर आती है। इस दर्द के लिए वह कितने वर्षों तक तड़पी थी। आज भी नवीन को याद कर उसके हाथ अपनी कोख पर चले जाते हैं। हर करवट हर सांस के साथ सिर्फ नवीन उसकी कोख में जी नहीं रहा था बल्कि वह भी नवीन के साथ जी रही थी। एक माँ अपनी संतान से सिर्फ गर्भनाल से जुड़ी नहीं होती बल्कि उसके अस्तित्व से भी जुड़ी होती है। क्या इतना आसान था नवीन के उस पहले घर को अपने शरीर से अलग कर देना, नवीन न सही पर उससे जुड़ी हुई यादें आज भी उसे एक क्षण को तड़पाती थी तो दूसरे ही पल उसके चेहरे पर सहज मुस्कान ले आती थी। जब उसने पंकज को नवीन के आगमन की खबर दी थी तो पंकज की आँखें सहज ही सजल हो आई थी, उसका चेहरा गुलाब की तरह खिल गया था।

''आप पापा बनने वाले हैं।''

सिर्फ इस एक वाक्य से पंकज ने एक पल में पति से पिता तक के सफर को जी लिया था। जिंदगी साँप–सीढ़ी का खेल ही तो थी, जिसमें हर पासे के साथ जिंदगी अचानक से पलट जाती है। क्या सच में इतना आसान था उसके लिए यह ऑपरेशन... जानती थी हर चीज भावनाओं में बह कर नहीं सोची जाती। वर्षों तक किसी घर में रहने के पश्चात उस घर को छोड़ना क्या इतना आसान होता है, अपनी जगह से हटने की वेदना को समझना आसान कहाँ होता है। एक इंसान अपने जीवन में चाहे जितने भी घर बना ले पर पहला घर पहला ही होता है क्योंकि वो सिर्फ घर नहीं उसकी उम्मीदों, ख्वाहिशों और सपनों की जमीन होती है। उस जमीन को उससे छीन लेना क्या आसान हैं।

पंकज और नवीन उसका भला ही तो चाहते थे पर क्या सचमुच ये इतना आसान था। क्या यूट्रेस सिर्फ उसके लिए सिर्फ एक अंग भर ही था, क्या सचमुच...!

डॉ. रंजना जायसवाल, लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश–231001
मो. : 9415479796, ई–मेल : ranjana1mzp@gmail.com

✧ ✧ ✧

कविता

नदी हूँ मैं

मैं नदी हूँ
अविरल है मेरी धारा
मेरी मंजिल विराट सागर
विघ्न बाधाओं की आदी मैं
मार्ग के व्यवधान को
लाँघती फलाँगती
निरंतर गंतव्य की ओर अग्रसर
मैं नदी हूँ
पहाड़ों से बूँद बूँद टपकती
अपना अस्तित्व विस्तारित करती
बहती जाती हूँ निर्बाध
अपनी धारा को विस्तीर्ण करती
विराट समतल को सींचती
मैं नदी हूँ
परन्तु, ये क्या हुआ?
अठखेलियाँ करती मेरी
वेगवती धारा
अनायास ठहर सी जाती है
मानव सभ्यता के विकास प्रतीक
सेतुबंधों में बंधी मैं
अकुला उठती हूँ
मेरा अस्तित्व

कुम्हलाने लगता है
अंतः आहत हो उठता है
पहाड़ की निर्विकार बेटी
आकार लेने लगती है
मेरी धाराएं बँटने लगती हैं
क्षीणकाय शिथिल हो मैं
नील गगन को तकने लगती हूँ
और
लक्ष्य से पहले ही
दम तोड़ने लगती हूँ
मैं नदी, किनारों में बँध
बंधन की अकुलाहट में कैद
बेजान आकृति सी
परिलक्षित हो उठती हूँ
मैं नदी हूँ
नीलांचला, पयस्विनी
स्वयं में सिमटती
प्रियतम के आलिंगन को तरसती
मंझधार में ठहरी
गंदली धारा में अपनी परिणति देख
मेरे कंठ अवरूद्ध हो जाते हैं
अंतर्मन सिसक हो उठता है
आँखें भर आती हैं
आत्म चित्कार उठता है
प्रतीक्षारत सागर
हुंकार उठता है
जल प्रलय का तांडव
एक बार फिर

सृष्टि विलय की
उद्घोषणा कर
नदी मुक्ति को चेतावनी,
दे डालती है
बस करो, अब बस भी करो
बहुत बाँध लिया मुझे
बहुत साध लिया मुझे
मैं नदी हूँ
उन्मुक्त, स्वच्छंद बहनेवाली
अमृत धार
मुझे इस ठाँव मत बाँधो
मुझे इस गांव मत बाँधो
मुझे सभ्यता की बंदिनी मत बनाओ
मुझे मेरी लय में बहने दो
नदी हूँ मैं
मुझे मेरी लौ में बहने दो।

सुमेधा पाठक, 'अमलतास', आवास–12/35, इंद्रपुरी, पोस्ट–केशरी नगर, पटना–800024
मो. : 9430890536, ई–मेल : sumedha0708@gmail.com

✧ ✧ ✧

शमशेर की कविताओं में रूप, रंग, गंध और स्पर्श की अभिव्यक्ति

डॉ. अर्चना त्रिपाठी

शमशेर की उत्कृष्ट कविताएँ वे हैं जिनमें उनकी इंद्रिय– बोधात्मक संवेदनशीलता सक्रिय है और जहाँ वाक्य बेवजह टूटे नहीं है। जहाँ उनके चित्रकार और कवि में सामंजस्य हो गया है वहाँ वह अपनी भावना को विविध वर्णों के विविध अनुपातों में अपने ढंग से मिला घटाकर रूप देते हैं, जहाँ वह रूप रंग के आंतरिक ऐक्य को चेतना पर उदित कर देते हैं। 'सावन' उनकी एक श्रेष्ठ कविता है।

शमशेर तोड़ कर रख देने वाली ऐंद्रिकता के कवि हैं व रूप रंग से विशेष प्रभावित हैं। ये वस्तुओं के किसी आयाम को उस वस्तु से निकाल कर कहीं और फिट करके अपने भाव के अनुसार वस्तुओं को रूपाकार करते हैं। अगर नीला आकाश निर्मल हो, तो चाँदनी में नीलिमा होती है स्वच्छ निर्मल आईना भी नीला होता किंतु आईना ठोस होता है इसलिए शमशेर कहते हैं –– एक नीला आईना बेठोस –– सी यह चाँदनी।

नीला आईना और चाँदनी के सादृश्य – विधान जैसा, यह सादृश्य पहले काव्य में नहीं था। तीव्रतम ऐंद्रिकता का अधिकांश शमशेर के यहाँ नारी– रूप को समर्पित है। शमशेर नारी की अक्सर ठोस प्रतिमा बनाते हैं, निम्नोन्नत उभार, गोलाइयों कोणों वाली प्रतिमा। नारी देह की भूख है कि शमशेर के लिए नारी इतना मूर्त है। शमशेर ने उसे अपनी भूख और सौंदर्य कल्पना के अनुकूल गढ़ा है। नारी– देह का शिल्प नई कविता में शमशेर के यहाँ सर्वाधिक सटीक है –

सुंदर उठाओ निज वक्ष
और कस–उभार क्यारी, भरी गेंदा की
स्वर्णरक्त
क्यारी भरी गेंदा की :
तन पर
खिली सारी
अति सुन्दर! उठाओ।1

कुछ कविताओं को छोड़कर अगर शमशेर का नख– शिख चित्रण प्रस्तुत किया जाए, तो वह निहायत उत्तेजक व ऐंद्रिक होगा। जहाँ शमशेर के मुक्त रंग शैली के अंतः सूत्र पकड़ में आते हैं वहाँ शमशेर की कविता हिंदी काव्य की बड़ी उपलब्धि होती है। वह हमारे भाव– कोष को समृद्ध करती है। गठे हुए, सूक्ष्म सूत्रों से शमशेर अपने ढंग से भाव निर्मित करते हैं। 'आओ' कविता इनका श्रेष्ठ उदाहरण है। दिवंगता पत्नी पर लिखी हुई हिंदी की श्रेष्ठ कविता विभिन्न कविता के केंद्रीय विषय से इतने दूर नहीं जाते कि वह केंद्रोमुखी भाव परिधि के बाहर छिटके पड़े रहे। ऐसा स्वप्निल बिंब जो अपनी दृश्यता में इतना वास्तविक है–– दिवंगता प्रिया के समान जो स्मृति में इतनी सजीव है वह स्मृति नौका में शमशेर के पास आती है :

तैरती आती है बहार
पाल गिराए हुए
भीने गुलाब––पीले गुलाब के
तैरती आती है बहार
ख्वाब के दरिया में उफक से जहाँ मौत के रंगीन पहाड़ हैं।2

शमशेर की उत्कृष्ट कविताएँ वे हैं जिनमें उनकी इंद्रिय– बोधात्मक संवेदनशीलता सक्रिय है और जहाँ वाक्य बेवजह टूटे नहीं है। जहाँ उनके चित्रकार और कवि में सामंजस्य हो गया है वहाँ वह अपनी भावना को विविध वर्णों के विविध अनुपातों में अपने ढंग से मिला घटाकर रूप देते हैं, जहाँ वह रूप रंग के आंतरिक ऐक्य को चेतना पर उदित कर देते हैं। 'सावन' उनकी एक श्रेष्ठ कविता है। इस कविता में शमशेर का संवेदनशील इंद्रिय बोध विशेष रूप से वर्ण – बोध द्रष्टव्य है।

बिंब की चर्चा में शमशेर विशेष उल्लेखनीय हैं। शमशेर की कविता में अभिव्यक्ति की समृद्धि प्रकट होती है। उनकी भाषा के द्वारा और उनकी कविता में आए बिंबो के द्वारा। बिंबों का जो संसार शमशेर की रचनाओं में प्रकट हुआ है, उसमें उनकी कविताओं का सौंदर्य व्यक्त होता है उदाहरणार्थ –

मकई – से वे लाल गेहुंए तलवे मालिश से चिकने हैं।.....
सुखी भूरी झाड़ियों में व्यस्त
चलती– फिरती पिंडलियां।
(मोटी डालें, जांघों से से न अडे.!)3

शमशेर की कविताओं में अनेक रंग है। वैसे तो सारी रंग– सृष्टि हल्के रंगों की है, किंतु एक सांवलापन और हल्कापन सतत रहता है। हल्की रेखाओं और रंगों से वे ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं कि पाठक के मन पर उसकी एक छाप अंकित हो जाती है। पूरी सृष्टि में जो सारा रंग बिखरा पड़ा है, उसके प्रति एक कौतुक – भाव, आश्चर्य – भाव कवि के मन में है। उषा–काल में रंगों का यह खेल पूरे वातावरण को चमत्कृत करता है। इसी चमत्कृति का कवि ने 'उषा' शीर्षक कविता में वर्णन किया है––

'' प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो स्लेट पर या लाल खड़िया चाक मल दी हो''3

इस कविता का सारा सौंदर्य रंग– सृष्टि में हैं तथा सारा चमत्कार भी। भोर से लेकर सूर्योदय का वर्णन है इस कविता में। जितनी तीव्रता और गति से आकाश में रंग परिवर्तन होते हैं, उसे यथावत वर्णित करते हुए कवि शमशेर आरंभ करते हैंः प्रातः नभ था बहुत नीला शंख जैसे..... ध्यातव्य है कि प्रातः कालीन नीलिमा को बताने के लिए नीले शंख का बिंब चुना है। कालिमा –युक्त नीले शंख से सिर्फ रंग बताना हो ऐसी बात नहीं है। 'शंख– ध्वनि' शुभ का प्रतीक है। तो जब नीले शंख – सा आकाश है, तब वह मंगलमय बेला है, यह बात ज्ञात हो जाती है।

धीरे–धीरे सूर्य बिंब दिखने के पहले की लालिमा से पूरा आकाश रंग गया है गहरा केसरी। संभवत यह एक दिन का देखा हुआ सूर्योदय नहीं है। वह देखी गई अनेक उषाओं का चित्र है। जब कभी काले मेघ आकाश में छाए होते हैं, तब यह लालिमा केसरी– रंग– युक्त बहुत ही नयनरम्य दिखती हैं। कवि की कल्पना है कि गहरी काली सिल पर लाल केसर धुल गया हो, और जो रंग– मिश्रण बना है यही है यह आकाश। वह गहरापन थोड़ा हल्का हो रहा है, अतः एक बिंब कवि के मन में उठता है। स्लेट पर लाल खड़िया चाक मल दिया गया हो। यहाँ पर आकर सिल की स्याही और केसर की लाली दोनों ही हल्की हो जाती है, क्योंकि अब सूर्योदय होने वाला है। आकाश में उजाला हो रहा है। रात के अंधेरे को धारण की हुई शंख– सी नीली उषा अब गायब हो चुकी है, और उपस्थित होती है पूर्व दिशा में एक गौर झिलमिल देह, आकाश की नील जल में।

यहाँ पर 'गौर' शब्द पर ध्यान दें, तो यह ज्ञात होता है कि गौर वर्ण मानव– देह के साथ जुड़ा रहता है। प्रकृति से उसे जोड़कर कवि एक मानवीय स्पर्श का संकेत देते हैं जो एक मृदु काम चेतना जगाता है। 'झिलमिल' के कारण वह मांसल नहीं बनती फिर 'नीलजल' कहकर आकाश को तरल एवं पारदर्शी बना देते हैं।

कवि कहते हैं कि उषा का यह रूप भूल भुलैया डालने वाला जादू टूट रहा है 'सूर्योदय हो रहा है'। बहुत ही अल्पकाल का यह पूरा खेल है, कवि ने इसे बड़ी कुशलता से चित्रित किया है, कवि जब कहते हैं :

सूरज का गोल पाल संध्या के
सागर में अरहर दोहरा है
ठहरा है.....4

यह नयनों के लिए उत्सव है, शाम का सुनहरा सागर आक्षितिज लहरा रहा है और उसमें सूरज गोल पाल की तरह है। तभी शाम कितनी सजीव हो उठती है। आँखों के कोरों से आक्षितिज एक सुनहरा बादली रंग सागर लहरा उठता है। सूर्य डूब रहा है, और सागर की

सतह, पर इसलिए वह जल में प्रतिबिंबित है ––तभी दोहरा है। सागर भी दोहरा है प्रथमतः शाम के कारण सुनहरा हुआ सागर, और आकाश का बादली रंग – सागर। यह पाल चुकी सूर्य का है, इसलिए गोल है किंतु पाल गोल नहीं होते। फिर वह 'ठहरा' भी है जबकि पाल गतिशील होते हैं। किंतु कवि ने जिस क्षण को वर्णित किया है, वह सूर्यास्त का है, इसलिए समय मानो ठहर – सा गया है तभी तो वह 'ठहरा' है ––शाम सागर है, आकाश इंद्रधनुषी ताल है :– 'पूरा आसमान का आसमान एक इंद्रधनुषी ताल नीला सांवला हल्का गुलाबी

बादलों का धुला पीला धुआं ''5

आकाश तरल और पारदर्शी है। कहीं पर वह' नील जल' है तो कहीं 'इंद्रधनुषी ताल' है कहीं पर उसमें 'गौर देह' है तो कहीं 'सादा मत्स्य'। दिशाओं से बंधे इस ताल में नीले, सांवले, हल्के गुलाबी और पीले रंगों का सम्मिश्रण है। जिसमें एक मत्स्य है, जो ऊपर से तो सादा है किंतु उसके भीतर ताल की समस्त रंगीनियाँ हैं।

शमशेर की अधिकतर पीले नीले और सांवले रंगों से कविता को रंगते हैं। कहीं–कहीं गुलाबी और सुनहरी छटा भी आ जाती है।

शमशेर की कविताओं में बिंब उनकी कविता के अर्थ विकास में योग देते हैं इसीलिए उनके बिंब कई बार वर्गीकरण की सीमा का अतिक्रमण करते हैं। क्योंकि उनकी रचना प्रक्रिया जटिल है और अभिव्यक्ति संकेतात्मक, इसलिए उनके बिंब अधिकतर संकुल होते हैं। शमशेर इंद्रिय और अतिंद्रीय दोनों अनुभूतियों को अपनी रचनाओं में बिंबों के द्वारा प्रस्तुत करते हैं। ''एक नीला दरिया बरस रहा है।

और बहुत चौड़ी हवाएँ हैं मकानात है मैदान किस कदर उबड़ – खाबड़''6

एक नीले दरिया के बरसने की कल्पना के साथ कविता की शुरुआत होती है। आकाश में जब श्वेत बादल लहरों की तरह छाए होते हैं, तब कई बार आकाश नीला दरिया–सा लगता है।

शमशेर की ''सावन'' शीर्षक कविता का आरंभ है–– बरसाती मौसम और बरसाती आकाश :

''मैली हाथ की धुली खादी
सा है आसमान जो बादल का पर्दा है वह मटियाला धुंधला– धुंधला
एकसार फैला है लगभग
कहीं–कहीं तो जैसे हल्का नील दिया हो 3
जैसे गोल गया हो कोई अपनी हल्की मेहंदी वाले हाथ''7

सावन का आकाश है धूल और वर्षा के बादलों से आकाश स्वच्छ नहीं रहा ––मटियाला हो गया है। बादलों का मटियाला पर्दा एक सार फैला है पर पूरा नहीं–– लगभग, क्योंकि कहीं कहीं पर आसमान, असमान रूप से नील दिया गया हो, ऐसा लगता है

शाम का समय है, डूबते सूरज का हल्का एहसास आसमान में झलक रहा है, किंतु यह गुलाबीपन काले बादलों और शाम के गहरेपन से मिश्रित है। इसलिए जो रंग वे देते हैं, वह हैः ''जैसे घोल गया हो कोई अपनी हल्की मेहंदी वाले हाथ।'' बादल के धूमिल पर्दे की पीछे हैं : धूमिल अंगनारे के पीछे

वह मौन गुलाबी झलक'' ।8

और बाद में मेहंदी वाली बात। स्वाभाविक रूप से एक लजाई, ललाई अंगना की कल्पना की जा सकती है, जो अपने हल्के मेहंदी वाले हाथ धो रही है।

शमशेर की कविता में गुलाब कत्थई है –––

''कत्थई गुलाब
दबाए हुए हैं नर्म – नर्म केसरिया सांवलापन मानो
शाम की''9

शमशेर चित्रकार थे। अतः उनकी कविताओं में भी विभिन्न रंग प्रमुखता पाते हैं, रंगों की जितनी कविताएँ शमशेर के यहाँ प्राप्त है अन्यत्र नहीं। जिस प्रकार चित्र रंगों से भी ज्यादातर बनते हैं वैसे ही बिना किसी रंग के शमशेर की कविता भी नहीं बनती।

''एक पीली शाम
पतझड़ का जरा अटका हुआ पत्ता शांत मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुख कमल
कृश म्लान हारा – सा 10

इस कविता में दो चित्र साथ में आते हैं––– प्रेयसी का मुख और पीली उदास पतझरी शाम। इसी में पूरी कविता बनती है और अर्थित होती है। शाम कैसी है? पीले रंग की। आगे चलकर यह दोनों बिंब अभिन्न होकर एक बन जाते हैं। पीली उदास पतझर की शाम में एक अटका हुआ पत्ता और प्रिया की पीले उदास मुख पर एक अटका हुआ आँसू यही आगे चलकर संध्या काश में एक संझातारा बन जाता है। सही में पीली उदास शाम प्रेयसी के मुख में परिवर्तित हो जाती है और प्रेयसी का मुख मानो शाम में विस्तार पा जाता है। इस उदास पतझरी शाम में सांझ का तारा जितना उदास लगता है, वह उदासी प्रेयसी की आँखों की कोर में अटके आँसू से एक हो सकती है। कविता तब तक हमारे सामने खुल नहीं सकती–– जब तक कि इन बिंबों की यह संकुल स्थिति खुलती नहीं है। उनकी एक और कविता, जिसका आरंभ इन पंक्तियों से होता है ––

''वो एक हरा – नीला सा– कगार– न था
समंदर के झागों से गिरा हुआ।
और कहीं– कहीं कभी–कभी उनसे आच्छादित''

कविता की शुरुआत से ही कवि वस्तुस्थिति को नकारते चलते हैं। नकारने की इसी प्रक्रिया में वे सर्वनाम को संज्ञापित करते चलते हैं, और विशेषणों के सहारे एक चित्र खींचते –

चलते हैं 'नहीं' में स्वीकृति का बोध —— वह केवल ''कगार'' न था ऐसी बात नहीं है। वह कगार, जो नहीं था उसे विश्लेषित करते हैं रंग – ''हरा – नीला – सा। यहाँ'' निग्नेशन न रंग का है, न कगार का, बल्कि रंगों के साथ कगार की स्थापना है। पहली पंक्ति का 'निग्नेशन', उसके अस्तित्व को और सुदृढ़ बनाता है, सिद्ध होता है, एक कगार समंदर के झागों से आच्छादित है।

संभवत कवि यह कहना चाहता है कि वह सिर्फ कगार नहीं था। यानी वह कगार तो था ही, साथ ही था ''एक लाल भूरी चिड़िया'' के लिए एक ''ऐन उपयुक्त निजी वातावरण''। यहाँ पर एक विशेष चिड़िया की बात है, कभी कहते हैं किसी लाल भूरी चिड़िया। 'यह' एन उपयुक्त निजी वातावरण बहुत स्पष्ट नहीं है, पर शायद उसके अस्तित्व के लिए होने के लिए यही वातावरण उपयुक्त था। उपयुक्त कविता भी, हरे, नीले, भूरे रंग से रंगी हुई है, कवि रंगों से स्पष्ट करता है अपनी बात। न्यूनतम शब्द, निर्मान्त वक्तव्य तथा स्पष्ट पक्षधरता के उत्तेजक समन्वय से ही ऐसी कविता संभव होती है। एक और कविता में कवि सत्य के रंगों को चित्रित करता है –––

''सत्य का रंग? पूछो एक संग
एक – जनता का दुख एक
हवा में उड़ती पताका हैं अनेक
धन्य दानव क्रूर स्थिति कंगाल बुद्धिः मजू घर मर एक जनता का अमर वर :
एकता का स्वर अन्यथा स्वातंत्रय इति।

निष्कर्ष––शमशेर की समस्त कविताओं पर दृष्टिपात करते हैं, तो अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं जिनमें रंग की सफल अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। ऐसा रंग अन्य कवियों में अप्राप्य है। शमशेर की कविताओं में रंगों का ऐसा सफल समायोजन उन्हें एक विशिष्टता प्रदान करता है। रंगो के जरिए अपने सुख–दुख, अनुभवों को रचना का रूप देते हैं तथा उनके रंग, चित्र भी खींचते हैं। रंगों का ऐसा विशिष्ट उपयोग हमें अन्य कवियों में कम ही दिखता है। यही शमशेर की विशेषता है जो उन्हें औरों से अलग कर एक नई पहचान देता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. ''एकज मुद्रा से'' 'प्रतिनिधि कविताएँ' 'शमशेर बहादुर सिंह राजकमल प्रकाशन पृष्ठ 34, 2. प्रतिनिधि कविताएँ शमशेर बहादुर सिंह, 3. शमशेर, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 102, 4. एक मौन, कुछ कविताएँ पृष्ठ 44, 5. आसमान का आसमान कुछ कविताएँ पृष्ठ 41, 6. ''चुका भी हूँ नहीं मैं'' पृष्ठ 17, 7. ''सावन'' कुछ और कविताएँ पृष्ठ 60, 8. ''सावन'' और कविताएँ पृष्ठ 60, 9. प्रतिनिधि कविताएँ शमशेर बहादुर सिंह पृष्ठ 145, 10. प्रतिनिधि कविताएँ शमशेर बहादुर सिंह पृष्ठ 101

डॉ. अर्चना त्रिपाठी, श्री अरविंद महिला कॉलेज, काजीपुर, पटना–800 004
मो. : 7033643268, ई–मेल : atripathy835@gmail.com

✧ ✧ ✧

सच्चिदानंद प्रेमी का काव्य संग्रह 'कैसे गीत गाऊँ'

डॉ. करुणा पीटर 'कमल'

काव्य संग्रह : कैसे गाऊँ गीत
कवि : डॉ. सच्चिदानन्द प्रेमी
प्रकाशक : उत्कर्ष प्रकाशन
मूल्य : 150/–

प्रत्येक साहित्यकार अपने जीवन में भोगे हुए यथार्थ को अपने साहित्य में व्यक्त करता है। साहित्यकार की रचना जितना ही यथार्थ के समीप होगा, उतना ही उसे अपनी कृति में सफलता मिलती है। कोरी कल्पना पर आधारित कृति का यश स्थायी नहीं होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी–अपनी विधि से अपने यथार्थ को कल्पना के साथ मिश्रित कर व्यक्त करता है और यह अभिव्यक्ति अनायास होता है। किसी भी साहित्य सृजन में असली महत्व इन्हीं अनायास पर आधारित कल्पनाओं का होता है तथा लेखक अपनी इन्हीं कल्पनाओं–घटनाओं को काव्यों में चित्रित करता है।

प्रस्तुत पुस्तक में डॉ. सच्चिदानन्द प्रेमी जी के गीत तथा कविताएँ प्रखरता के साथ प्रस्तुत हुए हैं। उन्होंने अपने काव्य का संग्रह 'कैसे गाउँ गीत' में जीवन के विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनकी सारी कविताएँ रोचक एवं सार्थक हैं। इनमें जीवन के भिन्न–भिन्न रंग समाहित हैं। इनके गीतो में भावों की प्रवणता और साहित्य की लावण्यता है। अपनी कविताओं में कवि ने सभी रसों तथा भावों को समाहित करने का प्रयास किया है, जिससे इनकी कविताएँ गेय बन पाई हैं।

सच्चिदानन्द जी की कविताओं से उनकी सकारात्मक विचार धारा का पता चलता है। वे जीवन के विषम परिस्थितियों में आशावान बने रहना चाहते हैं तथा जीवन में नवीनता के पक्षधर हैं। कवि उम्मीद का दीपक जलाकर अपने जीवन के खालीपन को हरना चाहते हैं। वे जन–जन के मन में प्रेम और भाईचारे की भावना का संचार करना चाहते हैं। उनकी यह भावना कविता की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है– 'बिन्दु–सिन्धु का मिलन सुनिश्चित, जिससे बिहंसे प्रभा अखंण्डित; हृदय–हृदय में रहे परस्पर–श्रद्धा–भक्ति–प्रतीत।'

सामाजिक परिवर्त्तन हमारी सभ्यता–संस्कृति, हमारे मूल्यों को निगलते जा रहे हैं, जिसे देख कर कवि चिंतित प्रतीत होते हैं क्योंकि मनुष्य आधुनिकता को धारण करने में आपसी सौहार्द्र को ही भूल गया है। पारस्परिक प्रेम की जगह वैमनस्य ने ले रखा है। कवि अपनी यथाशक्ति से नवीन सृजन का आह्वान करते हुए कहते हैं कि :– 'नेह मिटे राग मिटे भावना मिटी, द्वेष–घृणा की अजीब कामना जुटी; चेतना विलुप्त यहाँ हुई सुजान की, भावना की तृप्तिहीन प्रार्थना कटी!.........नवीन सर्जना करो।'

कवि की विचार धारा आशावादी है और उसकी अभिव्यक्ति उनकी कविता 'प्रिय यह दिवाली की रात' में होती है। पर्व मनुज के जीवन में उल्लास और उमंग लेकर आता है। खासकर दिवाली की रात अमावस की कालिमा पर दीयों के माध्यम से विजय प्राप्त करती है। हर मनुष्य इस त्योहार का बेसब्री से अपने जीवन में इंतजार करता है। यह त्योहार मनुष्य के जीवन में खुशियों की सौगात लेकर आती है और मनुष्य इन्हें एक ही रात में बटोर लेना चाहता है। पर जीवन की नश्वरता से वह डरता भी है। यह जीवन क्षणभंगुर है तथा कवि इसे स्वीकार करते हैं। वे जीवन की सुंदरता का आनंद लेना चाहते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि न जाने कब जीवन की गति रुक जाए। इस हताशा व निराशा में कवि उस पर विजय पाकर खुशियाँ समेट लेने की चेष्टा करते हुए लिखते है :– 'प्रिय यह दिवाली की रात! पता नहीं मधुदीप बुझे कब–हो जाये फिर प्रात, आओ मिल–जुलकर दोनों कर लें, मधुर प्रणय की बात!'

भारतीय परंपरा में त्योहारों का बहुत महत्व है और प्रेमी जी इससे मिलनेवाली खुशी को जीवन में समेट लेना चाहते है। होली ही ऐसा त्योहार है जो आपसी मैल तथा मनमुटाव को दूर कर मनुष्य को प्रफुल्लित कर देता है। विभिन्न रंगों में रंगकर मनुष्य के बीच का आपसी अंतर ही खत्म हो जाता है। सभी समानता के रंग में रंग जाते हैं। कवि की इस भावना को उनकी इन पंक्तियो में देखी जा सकती है :–

कुछ के भूरे कुछ के काले,
कुछ के भगवा कुछ के पीले,
मुझमें तुझमें भेद न कुछ भी–
प्रणय जगत आधार।

देश की गरीबी से कवि का मन आहत है। मनुष्य इतना स्वार्थी प्रवृत्ति का है कि उसे अपने सुख के सिवाय कुछ दिखता ही नहीं है। गरीब अपनी बदहाली में मर रहे हैं और संपन्न वर्ग पर उनकी दरिद्रता का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता है। गरीब के जीवन से खुशियाँ जैसे रूठ गई हैं। कवि उनकी दशा देखकर बेचैन हो उठते हैं। गरीबों का दर्द और उनकी पीड़ा प्रेमी जी की कविता की इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है :–

'बस गए महल प्रदिप्तअदिप्त देख झोंपड़ी, लुटे प्रसन्न मौन मन, गंध पा सिसक पड़ी; पूर्णिमा बसंत की, आस मौन वर्तिका, होलिका में जल गई। मधुर आग जल गई।'

कवि के मन में देश के वीर सपूतों के प्रति श्रद्धा का भाव है। वीरों के बलिदान की वजह से सारा जग सुख चैन से निर्भीक होकर जीता है, सदैव खुशियाँ मनाता है परन्तु कवि कहते हैं कि उन वीरों के घर में गम की उदासी छाई रहती है। उत्सवों में उनकी अनुपस्थिति घरवालों को खलती हैं। उनके बगैर त्योहारों का उत्साह फीका पड़ जाता है। दीवाली की प्रकाशपूर्ण रात भी उन्हें अंधकारमय लगती है। तब भी ये वीर अपना सबकुछ न्योछावर कर देश की गरिमा व स्वतंत्रता के लिए तत्पर रहते हैं। कवि उनके मार्ग को दीपकों से सजाकर उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करते हुए कहते हैं :– 'कफन बांध फिर पर मतवाले–ज्योति पर्व पर दीप जलाने, जाएँ सज दूँ मग दीयों से, भाव यही उर में जगता है! सारा जग जगमग लगता है!

संसार में धोखा, रिश्वतखोरी, बेईमानी का बोलबाला है। इस जग में बिरले ही कोई निःस्वार्थ भाव से कार्य करता है। संसार के छल–प्रपंचों से कोई भी व्यक्ति अछुता नहीं रह पाता है। मनुष्य का अंतरतम यदि दृढ़ भी है तो मानवीय दुर्बलताओं के कारण वह बाह्य परिवेश में ढ़लने लगता है। इसी को कवि 'खुद तो मैली की न चुनरिया' कविता में दर्शाते हैं।

कवि का प्रकृति प्रेम भी उनकी कविताओं में मुखरित हुआ है। कवि वसंत के आगमन पर उसका स्वागत करते हैं। ऋतुराज के आने से चारों तरफ हरियाली छा जाती है, जिससे प्राकृतिक सुषमा निराली हो जाती है। पेड़–पौधे नव किसलय के रूप में नए वस्त्र धारण करते है। इस ऋतु में रंग–बिरंगे फूलों से प्रकृति का अद्भुत श्रृंगार तो होता ही है जीव–जंतु प्राणी सभी में नव जीवन का संचार होने लगता है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति की सुन्दरता तथा मधुरता का अद्भुत चित्रण किया है। प्राकृतिक सुन्दरता इतनी चित्ताकर्षक होती है कि मनुष्य तो क्या पशु–पक्षी, जीव–जन्तु भी अपने दुखों को भूलकर नये उत्साह और जोश से भर जाते हैं। इसके मनोरम सौंदर्य को देखकर मनुष्य के नीरस जीवन में नवजीवन का संचार होने लगता है। समस्त सृष्टि जाग्रत हो जाती है और खिली–खिली नजर आती है। 'ठूंठ नीम पर कोंपल – कोमल है कदम्ब बौराया; मंजराई–अमराई, कोयल ने मधुरस बरसाया; जूही–चम्पा के फूलों में मन है भूला–भूला!'

जीवन कठिन तथा संघर्षमय है। कवि कहते हैं कि ईश्वर बहुत उदार हैं। उन्होंने मानव के जीवन को रसमय बनाकर मनुष्य को अनुग्रहित किया है। जीवन में सुख–दुख का क्रम लगा ही रहता है। कठिनाइयों के समय मनुष्य को हताश–निराश होने की आवश्यकता नहीं है और न ही अपना मनोबल कम करना चाहिए बल्कि हमें जीवन पथ पर उम्मीद की लौ जलाए रखनी चाहिए और अदम्य साहस के साथ हर विघ्न को पार करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिए। कवि बाधाओं को पार करते हुए हिम्मत रखने की बात करते हुए कहते हैं कि :– पथ पर बाधा– बंधन आए, किन्तु न तिल भर मन घबराए; कण–कण पर मैं सदा लुटाता–अपनी पावन प्रीत चलूँ!

कवि के मन में देश के प्रति श्रद्धा की भावना है। भारत विविधताओं का देश है। यहाँ हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी धर्म और जाति के लोग रहते हैं और सभी मिल–जुलकर एक साथ रहते हैं। इसी कारण भारत अनेकता में एकता के लिए विश्व विख्यात है। भारतवासी हर त्योहार, हर मौसम का मिल–जुलकर आनंद उठाते हैं। वे त्योहारों के रंग में इस कदर रंग जाते हैं कि आपस में कोई भेद ही नहीं रह जाता है। भारत के सौहार्द्रपूर्ण परिवेश को कवि ने 'प्यारा हिन्दुस्तान' कविता में कुछ इस तरह उकेरा है :– त्योहारों में वर्ष बीताते हंसी–खुशी का मेला, सबके मन का सरगम मिलता, कोई नहीं अकेला; बाल–वृद्ध सब हिल–मिल करते–नया–नया अभियान! अपना प्यारा हिन्दुस्तान!

देश में व्याप्त अराजकता से कवि का मन आहत है। उनकी कविताओं में कहीं देश के प्रति चिंता का भाव दार्शनिक रूप में प्रकट हुआ है तो कहीं उनकी कविता में निःस्वार्थ प्रेम और शिक्षा की कमी नजर आती है। शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार आधुनिक दौर में एक चिंतनीय विषय है। गुरु–शिष्य के बीच मर्यादा का हनन हो रहा है। आचरण की शुद्धता का कोई मोल न रहा। गुरु–शिष्य के मधुर रिश्ते में आई कड़वाहट को दर्शाते हुए कवि कहते है :– अन्तेवासी कल–वल–छल में–लिप्त गुरु का ध्यान न धरते। गुरु शिष्य–करतव पर रोते–बटुक अहर्निश खुद पर रोता।

कवि नारी सम्मान के प्रति सजग और जागरूक हैं। वैदिक काल से ही नारी समाज में पूजनीय रही है। उसे कभी शक्ति तो कभी विद्या की देवी के रूप में पूजा जाता है। आधुनिक युग की नारी समाज में हर प्रकार का योगदान देने में सक्षम है। वह हर प्रकार की जिम्मेदारी का निर्वाह करने में समर्थ है। किन्तु इसके बावजूद आज समाज में उसकी दशा चिंतनीय हैं। नारी का हर परिपेक्ष्य में शोषण होता है, उस पर कई पाबंदियाँ लगाई जाती है। उसका बचपन, शैशव, यौवन सबकुछ छिन जाता है। नारी के इस चिंतनीय दशा का अपनी कविता में बखूबी चित्रण करते हुए कवि कहते हैं कि– कलियाँ झुलस गईं बचपन में यौवन का तूफान न आया; पतझड़ पर इठलाया मन्मथ, नव तरू–द्रुम ने खोई छाया, कोयल भी तो कूक न पाई, उलुओं ने ही डोरी डाली।

कवि देश की दुर्दशा को देखकर अत्यंत व्याकुल हैं। कवि देश के उत्थान के लिए देश की युवाओं के कंधों को मजबूत आधार मानते हैं और देश के पुनः निर्माण के लिए युवाओं का आह्वान करते हैं। युवा जोश से भरे और सामर्थ्यवान होते हैं। उनमें युग बदलने की शक्ति होती है। कवि नव युवकों को अपनी पूरी चेतना और शक्ति से परिवर्तन के लिए जाग्रत कर रहे हैं। कवि अपनी आशावादी और उन्नतिशील विचारधारा को दर्शाते हुए कहते हैं :– जागो युवा मातृभूमि के क्या सपने में खोए, चौर–द्वार से घुसकर कोई घी से मूँछ न धोए। खुशियाँ गाँव नगर में छाए– गूंजे मन–संगीत।

'बोलो वंदे मातरम्!' कविता में कवि सच्चिदानन्द जी की देश के वीर सपूतों के प्रति अपार श्रद्धा का भाव उभर कर सामने आया है। कवि युद्ध में तैनात एक वीर योद्धा के मनोभावों को बड़ी कुशलता से इस कविता में व्यक्त करते हैं। उसे अपने परिवार की याद तो आती है किन्तु वह अपनी भारत माँ की रक्षा को परम कर्त्तव्य मानता है। वह माँ के दुःख को मिटाना चाहता है। देश के शत्रुओं को परास्त करने का दृढ़ संकल्प करता है। इसके लिए वह अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तत्पर है। योद्धा यह उम्मीद करता है कि वह भारत माँ के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकुशल वापस लौटेगा और नहीं तो शहादत प्राप्त कर माँ के ऋण से उऋण हो जाएगा। कवि ने भारत के वीर सपूत के इस भाव को दर्शाते हुए लिखा हैं:– तू तो मेरे प्राण–प्राण में–कभी न तुझको सकता भूल, दृढ़ संकल्प है वाणी तेरी, दुश्मन होगा ही निर्मूल; बोलो वंदे मातरम्!

सच्चिदानंद जी के इस काव्य संग्रह पर दृष्टि डालने पर मैंने पाया कि इन्होंने बड़े धैर्य, सहिष्णुता एवं संवेदनशीलता के साथ अपने भावों और विचारों को शब्दों की माला में पिरों कर कविता का रूप प्रदान किया है। इन्होंने अपनी कविताओं में सभी रसों को समाहित करने को कोशिश की है। इनकी कविताएँ सरल भाषा में रुचिकर एवं गेय हैं। आज हिन्दी का चहुँ दिशा में विकास हो रहा है, ऐसे में कवि सच्चिदानन्द प्रेमी का यह काव्य संग्रह साहित्य के भंडार को समृद्ध करने में सहायक का काम करेगी।

डॉ. करुणा पीटर 'कमल', अध्यापिका, डॉन बॉस्को एकाडमी, पटना–800 011
करूणालय, मकान संख्या–04, रोड नं0–10, कोठिया विकास नगर, पटना–10
मो. : 9546138889, ई–मेल : karuna.kamal2015@gmail.com

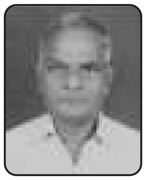

अन्तस की पुकार

राम किशोर सिंह विरागी

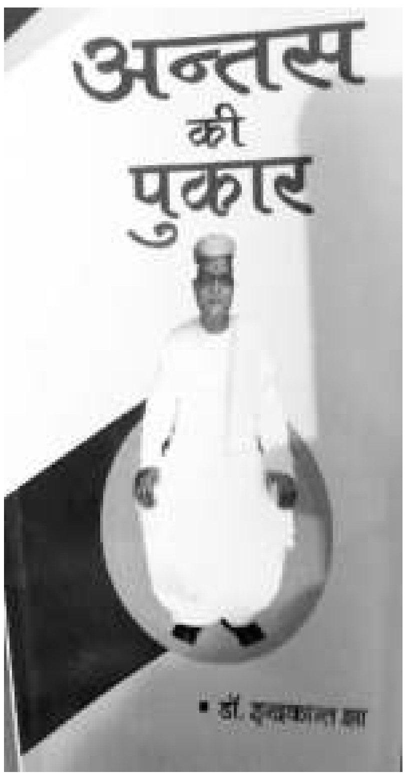

काव्य संग्रह – अंतस की पुकार
कवि – डॉ. इन्द्रकांत झा
प्रकाशक – इन्द्रालय प्रकाशन
मूल्य – 300/–

अन्तस की पुकार–डॉ० इन्द्रकान्त झा की एक अनुपम और अनमोल काव्य–रचना है। यह आधुनिक हिन्दी साहित्य (काव्य) का रत्न है। डॉ० इन्द्रकान्त झा मनीषी, चिंतक, दार्शनिक और ऋषि हैं। यह उनके काव्य (साहित्य) में स्पष्ट रूप से झलकता है। वह कवि हैं। 'अन्तस की पुकार' काव्य संग्रह से उनके ऋषि चिंतन होने का प्रमाण मिलता है। इनका चिंतन और चरित्र दोनों शुद्ध और मूल रूप से आध्यात्मिक और धार्मिक हैं। इनकी रचना और लेखन ही केवल आध्यात्मिक और धार्मिक नहीं है बल्कि सम्पूर्ण जीवन ही आध्यात्मिक और धार्मिक है। इनका आचरण और व्यवहार भी भरपूर रूप से आध्यात्मिक और धार्मिक है। इनका आचार और विचार सम्पूर्ण रूप से आध्यात्मिक और धार्मिक है। आध्यात्म इनके अन्तस (अंतः करण, आत्मा, हृदय, मन) में गहरे रूप से आया है। तभी तो अन्तस की पुकार ऐसी श्रेष्ठ और उच्च कोटि की काव्य–रचना प्रकट है। अध्यात्म की गहराई में उतरे बिना ऐसी कविताओं का प्रकट होना संभव नहीं है।

'अन्तस की पुकार' काव्य संग्रह में कुल चौहत्तर (74) कविताएँ संकलित हैं। सभी कविताएँ अन्तस (अन्तः करण, आत्मा, हृदय, मन) में से प्रकट होकर लेखनी के

द्वारा कागज पर अंकित हो पाई हैं। इन कविताओं में जो भाव, विचार और आशय हैं– बीज रूप में अन्तस में विद्यमान हैं और वही बीज अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और विकसित हुई हैं। इस काव्य संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि 74 कविताओं 73 कविताओं का शीर्षक अलग– अलग नाम से नहीं बल्कि एक ही नाम से है – 'प्रभु मेरे!' प्रभु मेरे शीर्षक या इन दोनों शब्दों से ही इन कविताओं का श्री गणेश है। इनमें 73' प्रभु मेरे! से प्रारंभ है जबकि एक अपवाद स्वरूप कविता 'रे मानव' '(संख्या–5) से प्रारंभ है। 'प्रभु मेरे! दो शब्दों से संबोधित करके कविताओं का प्रारंभ होता है और प्रभु से जीवन, जीव, जगत, जन जन के लिए मंगलकामना की जाती है। मानव और जीवन और जगत में समस्याएँ प्राचीन काल या यो कहें कि जब से सृष्टि है तब से समस्याएँ हैं और समस्याएँ बनती और चलती आ रही हैं। यह जगत और जीवन समस्याओं से कभी भी पूर्णतः मुक्त नहीं रहा है। समस्याओं के समाधान में प्रभु (परमात्मा, भगवान, ईश) की कृपा अनिवार्य है। केवल मानव (हमारे) प्रयत्न और प्रयास से ही समस्याओं का समाधान नहीं हो पाता है। प्रभु (ईश) की कृपा के बिना असंभव है। आध्यात्मिक ग्रंथों में कर्त्तापन का अहंकार (अहंभाव) नहीं रखने के लिए चेतावनी दी गई है। बार–बार यह चेतावनी दी गई है। यह कि वास्तविक कर्त्ता परमात्मा ही है। इसीलिए कर्त्तापन का भाव अन्तस (मन और अन्तकरण) में न पालो। वेद में जो मंत्र हैं स्तुतिपरक हैं। चाहे वह गायत्री मंत्र हो, या महामृत्युंजय हो या फिर अन्य कोई भी मंत्र हो। 'वेद' के सारे मंत्र स्तुतिपरक (प्रार्थना मूलक) ही है जिसमें जीव, जगत और जीवन के मंगल (कल्याण) के लिए स्तुति (कामना) की गई है। 'वेद' के मंत्र संस्कृत में हैं जो स्तुति परक हैं।

'अन्तल की पुकार' में जो कविताएँ– प्रभु मेरे! से प्रारंभ करके संबोधित की गई हैं, वे भी स्तुति परक प्रार्थना मूलक ही हैं जिसमें प्रभु से जीव, जगत और जीवन के लिए मंगलकामना की गई है। कवि के द्वारा जीवन में कल्याण के लिए बार–बार प्रभु मेरे! इन दो शब्दों से स्तुति की गई है।

आधुनिक हिन्दी कविता के इस संग्रह में सरल, सरस, सुगम और सुबोध भाषा–शैली में रचना की गई है। जिन कविताओं को पाठक सहज और सम्यक रूप से पढ़ लेता है और पढ़कर समझ लेता है। समझ करके अपने अन्तस में ग्रहण कर लेता है। ग्रहण करके मनन करता है। मनन करके अपने मन में मंथन करता है। मंथन करके प्रभु की ओर ध्यान ले जाता है। पहले कवि के अन्तर में पुकार उठती है और उस कवि के द्वारा रचित कविताओं के द्वारा – पाठक के अन्तस में पुकार उठती है। यह पुकार जब 'प्रभु मेरे! से उठती है तब मन को बल मिलता है। अन्तस मन ही जीवन है। यह सर्वविदित सत्य और तथ्य है। दार्शनिकों, चिंतकों और मनीषीगण के द्वारा प्रतिपादित है कि मन जब ठीक रहे तब सब ठीक रहता है। मन में जो भाव तरंगे उठती हैं उसी के अनुसार अपना कार्य, व्यवहार, आचरण, विचार और आचार बनता है। और, जीवन का निर्माण होता है और होता रहता है। मन में जब श्रेष्ठ भाव तरंगे उठती हैं तन अपना आचार और विचार भी उच्च कोटि श्रेष्ठ हो जाता है। और जीवन में श्रेष्ठता आती

है या आती रहती है। तब जीवन में शांति और आनंद का आगमन होता रहता है। जीवन का लक्ष्य है– शांति और आनंद।

'अन्तस की पुकार' में रचित कविताओं के पाठ कर मनन और मंथन से मन को बल मिलता है। बार–बार प्रभु मेरे! के दो शब्दों को धारण करके मन में श्रेष्ठ और उच्चकोटि के भाव तरंगों का निर्माण होता है। मन श्रेष्ठता की ओर चल देता है और जाता रहता है। जीवन और जगत में समस्याएँ हैं; तब से है जब से सृष्टि है। परंतु आजकल वर्तमान में समस्याएँ भीषण रूप से बढ़ रही है। सबसे बड़ी समस्या है – मानवता के ह्रास की। मानवता के ह्रास के कारण समस्याएँ अधिक बढ़ रही हैं। मन में निराशा, हताशा, तनाव और अवसाद का निरंतर बढ़ना जारी है। कवि अपनी कविताओं में इस चिंता की ओर भी संकेत करते हैं –

क्यों पसरा है जग में
छल छद्मों का जाल
क्यों करता है मानव
धोखा, शोषण विश्वासघात
कृतघ्नता का क्यों पढ़ा पाठ (कविता सं–4)

अन्तस् में उज्ज्वलता भर दो
दुष्ट भाव सागर में डुबोकर
जाति– पाँति का भेद मिटा दो
सबके मन में प्रेम जगाकर

जग में सुख–शान्ति का साम्राज्य बसा दो
धरती से अम्बर तक सुख–शांति फैला दो। (कविता संख्या–13)

मानव–मन से
जाति का भेद मिटा दो
सबके मन में अपनापन का भाव जगा दो। (कविता सं 38)

शांति और आनंद जीवन के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं या यो कहें कि जीवन और जगत के प्राण हैं –

मन एक रहेगा
जग में सुख शान्ति के
सरोवर में कमल खिलेगा
सुगंधि जिससे मिलेगा (कविता संख्या– 36)

शील स्वभाव
आत्मा का सौंदर्य है।

शरीर है आत्मा का मंदिर
परमात्मा का सौगात
इसीलिए शीलवान पुरुष को देखकर
विरोधी भी पक्ष आ जाता है (कविता संख्या– 57)

ऐसे क्षण में प्रार्थना करने पर
आंतरिक शांति मिलती है। (कविता संख्या 73)

डॉ० इन्द्रकान्त झा रचित यह काव्य– संग्रह आधुनिक हिन्दी काव्य–रचना सागर में एक अमूल्य रत्न है जिससे मानव और जगत का कल्याण होना निश्चित है। प्रभु मेरे! इन कविताओं के पाठ (मनन–मंथन) से मन को बल मिलेगा। मन को बल मिलने पर जीवन में बल मिलेगा। जीवन में शांति, सुख और आनंद का आगमन होगा। जीवन में शांति, सुख और आनंद का आगमन होने पर समस्याओं का समाधान होगा – समाधान हमेशा होता रहेगा। जीवन सफल और सार्थक होगा। जीवन में सफलता मिलेगी। जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने में अग्रसर होगा।

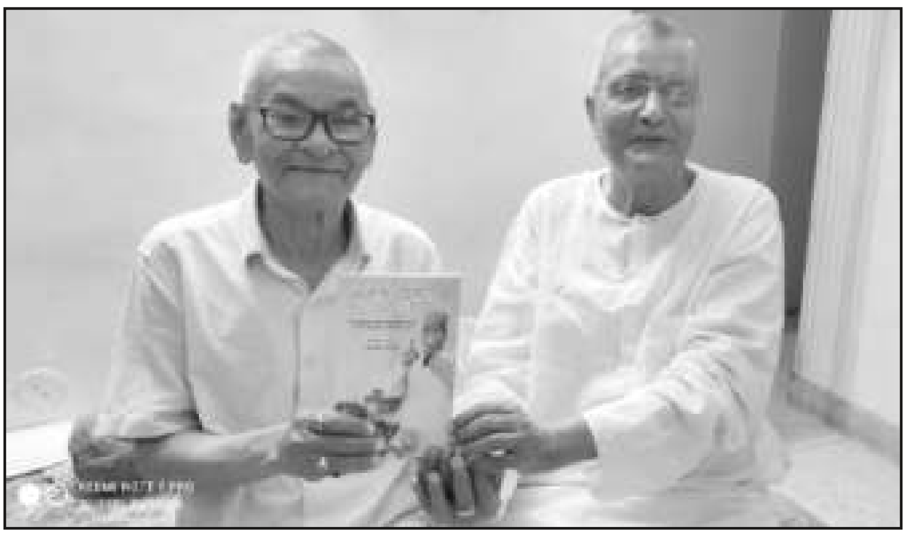

राम किशोर सिंह विरागी, किशोर भवन, काजीपुर क्वार्टर्स डॉ. एके. सेन पथ, पटना–800004
मो. : 9006458372

✧ ✧ ✧

'गीता महाबोध' का दर्शन

डॉ. हरेराम सिंह

कृष्ण को 'वर्क' चुनने में और इसे करने में शर्म नहीं आती है। 'महाभारत' के असल नायक वे ही प्रतीत होते हैं। वे सबकुछ जान रहे हैं। वे दूरदर्शी हैं, ज्ञानी हैं, बुद्धिवाले हैं। इसलिए ऐसे महान पुरुष का अभिभाषण सुनना भला किसे पसंद न होगा! कुरुक्षेत्र में अर्जुन को मोह से दूर ले जाना आसान काम न था। और यह बताना कि जब अपने अधर्म व अनीति के मार्ग पर चल पड़ते हैं, तो ऐसे जन को मोह और माया त्यागकर इन्हें दंड देना या ऐसे से युद्ध करना महान् व धर्म का कार्य है।

भारतीय संस्कृति एवं समाज में कृष्ण न सिर्फ एक नायक हैं बल्कि वे दार्शनिक भी हैं। उनकी उपस्थिति मन को ही नहीं बल्कि पूरे लोकजीवन को रोमांच व खुशी से भर देने वाली है। जहाँ कृष्ण हैं वहाँ उमंग है, प्रेम है, भ्रातृत्व है और प्रकृति के साथ तादात्म्य है। कृष्ण का जीवन हमारा आनुषंगिक है, प्रेरणा स्रोत है। कृष्ण ने जहाँ तक संभव हो पाया है कृषि–संस्कृति को अपने जीवन का अंग बना लिए और इसे बचाने हेतु, कृषकों, पशुपालकों, पशुओं आदि की हिफाजत के लिए, पर्वतों, वनों के प्यार के लिए, अपने गाँव के लिए इंद्र जैसे बड़े शासक से टकराते हैं। अपने मामा कंस से माँ और पिता के लिए पंगा लेते हैं। अन्याय व अत्याचार को वे पूरे समाज से मिटाकर 'रास शैली' पर बल देते हुए पूरे जीवन को आनंदोत्सव बना देते हैं, अर्थवान बना देते हैं। उनके जीवन की आधारशिला रचती हैं एक ओर 'मइया' और दूसरी तरफ 'गइया'! कृष्ण का जीवन संघर्षों, अभावों और तनावों से भरा पड़ा है। वे कभी भी 'आराम' नहीं करते हैं। आए दिन और हर घड़ी उन पर आफत ही आफत है। और तो और पशुपालक, किसान और सामान्यजन का प्रतिनिधित्व करना, उन्हें समझाना, मनाना आसान नहीं हैं। जो गँवार हैं उनके लिए और उनके जीवन के लिए खुद को समर्पित

कर देना कृष्ण के बूते की ही चीज है। कृष्ण बाँसुरी वादक हैं और राधा से उन्हें असीम मुहब्बत है। प्रेम ही उनके जीवन के केंद्र में है। वे अपनों के लिए निश्छल हैं। पर दुश्मनों के लिए चतुर भी। वह एक रणनीतिकार हैं। रण करना जानते हैं। पर कई को वे चकमा भी देते हैं— इसलिए वे रणछोड़ भी हैं। मतलब यह कि वे युद्ध बंधी—बंधाई परिपाटी पर नहीं करते। उनमें सजगता है और शत्रु को पहचाने और उसे पछाड़ने की कला भी है। उनमें युद्धकला से लेकर कामकला की गहन जानकारी है। वे संभोग के लिए बदनाम नहीं हैं पर सारी अहीरिनें उन पर मरती हैं, जान लुटाती हैं। वे निडर भी हैं और मृदुभाषी भी। इसलिए वे शत्रु के शत्रु और प्रेमी के प्रेमी हैं। उनका बचपन अपने माता—पिता के प्यार से वंचित रह गया। इसलिए वे यशोदा व नंद जी के प्यार को कभी भूले नहीं और अपने पूरे चरित्र से यह साबित करने की कोशिश की है कि जो तुम्हें अपना मान लिया है उसका तुम हमेशा के लिए हो जा। इस प्रकार वे क्षत्रिय रहते हुए भी अपने को डी—क्लास किया है। वे सर्वहारा के नायक हैं। उनमें राम भी नजर आते हैं, और बाद के बुद्ध और अशोक भी। वे दरिद्रों पर दया बरसाते हैं। सुदामा इसके प्रमाण हैं। यह अलग बात है कि सुदामा की पीढ़ी कृष्ण की पीढ़ी को बोली—वचन से कितना इज्जत करती है!

कृष्ण को 'वर्क' चुनने में और इसे करने में शर्म नहीं आती है। 'महाभारत' के असल नायक वे ही प्रतीत होते हैं। वे सबकुछ जान रहे हैं। वे दूरदर्शी हैं, ज्ञानी हैं, बुद्धिवाले हैं। इसलिए ऐसे महान पुरुष का अभिभाषण सुनना भला किसे पसंद न होगा! कुरुक्षेत्र में अर्जुन को मोह से दूर ले जाना आसान काम न था। और यह बताना कि जब अपने अधर्म व अनीति के मार्ग पर चल पड़ते हैं, तो ऐसे जन को मोह और माया त्यागकर इन्हें दंड देना या ऐसे से युद्ध करना महान् व धर्म का कार्य है। यहाँ कृष्ण की न सिर्फ दंड नीति बल्कि न्यायपरकता का भी बोध होता है। डॉ. ललन प्रसाद सिंह का ' गीता महाबोध' (2021) कृष्ण के इसी रूप से परिचित कराता है और उनका यह रूप कुरुक्षेत्र में उभरकर सामने आया था। कुरुक्षेत्र का मैदान जंग का मैदान नहीं; बल्कि ज्ञान की तपोभूमि नजर आता है जहाँ कृष्ण जैसा गुरु दुनिया को दूसरा कोई दिखाई नहीं पड़ता! कारण कि कृष्ण पूरे जीवन दर्शन को वहाँ निचोड़कर रख देते हैं। ताकि अर्जुन वास्तविक दुनिया को समझ पाएँ। डॉ. ललन प्रसाद सिंह अपने इस पोएट्री—ग्रंथ में तीन आलेख 'द गीता इज अ गाइड', 'दर्शन—दृष्टि', 'गीता—कमेंट्री अर्थात् भाष्य' के द्वारा भारतीय चिंतन पद्धति, विश्व दर्शन की समाजवादी व्याख्या के द्वारा कृष्ण और गीता के औचित्य पर इस तरह केन्द्रित हैं कि इसके आगे वे तमाम लोग व दर्शन बौने नजर आते हैं जो शोषक के पक्ष में कहीं न कहीं भूमिका निभाते हैं। केवल मार्क्स व बुद्ध को छोड़कर और आमजनों की जो सोचते हैं उन्हें छोड़कर सभी गौण हो जाते हैं। 'गीता' को देखने व उसका अवगाहन करने से ऐसा लगता है कि यह भारतीय चिंतन—मनन की सार ईकाई है या तत्त्व है। इसलिए वे इस बात को उद्धृत करने से बाज नहीं आते जिसमें यह कहा

गया है कि " भगवदगीता में उपनिषद–रूपी गउओं का दुग्ध श्री कृष्ण द्वारा दुहकर एकत्रकर दिया गया है।" कृष्ण इस दुग्ध को अर्जुन को पिलाकर उसके चिंतन को पुष्टकर रहे हैं और भ्रम का निराकरण भी। इसीलिए डॉ. ललन प्रसाद सिंह उपनिषदों की व्याख्या व परिचय भी 'दर्शन दृष्टि' आलेख में करवाते हैं। 'गीता' ऊर्जा को केंद्रित करने की कला भी सिखाती है। इसलिए डॉ. ललन प्रसाद सिंह ने 'द गीता इज अ गाइड' आलेख में लिखते हैं कि 'द परसन, हुस साईकी इज नॉट कॉनसंट्रेड एण्ड काम, इज नॉट अचीव द न्यू नॉलेज।' आगे वह यह भी उद्धृत करते हैं– "प्रेमा पुमर्थो महान।" और इस तरह सचमुच गीता को, गीता के महत्त्व को प्रतिपादित कर देते हैं। पर, डॉ. ललन प्रसाद सिंह की महान उपलब्धि यह है कि वे संपूर्ण गीता को नया जीवन दे दिया है! यह नया जीवन क्या है जो गीता को इन्होंने बड़ी ही मधुरता व प्रेम से दिया है, वह है– लोक भाषा यानी आम बोलचाल की हिंदी में पद्यानुवादकर उसकी पहुँच आमजन तक बढ़ा दिया है! मिट्टी के घर, झोपड़ी के वाशिंदों के लिए इन्होंने गीता को सहज बना दिया है। यह काम कभी तुलसीदास ने वाल्मीकि कृत रामायण की कथा को अवधी में 'रामचरितमानस' लिखकर सहज बना दिया था। और बनाते वक्त एक कवि की हैसियत से बहुत कुछ खुद के विरच डाले थे। पर, डॉ. ललन प्रसाद सिंह ने 'गीता' जैसे दर्शन को न्याय दिलाने के लिए अपना कुछ अलग से विचार नहीं डाला बल्कि वे लोकाकांक्षा, जनभाषा का ख्याल करते हुए भारत की प्रसिद्ध भाषा हिंदी में इसे अनुवादित कर इसे दीर्घजीवी बना दिया है। ऐसा कभी विश्व साहित्य में इतालियन कवि व साहित्य सिद्धांतकार दान्ते (1265–1321) ने अपने 'डिवाइन कमेडी' को देशज इतालियन में लिखकर किया। इस तरह डॉ. ललन प्रसाद सिंह ने गीता–महाबोध के द्वारा गीता के मूल दर्शन को सही मायने में घर–घर पहुँचाने का काम किया है और इन्होंने सदियों की इक खास भाषा के वर्चस्व व उसके द्वारा उत्पन्न गतिरोध को भी तोड़ा है:

अर्जुन उवाच
समाधिस्थ स्थिरबुद्धिवान का, केशव क्या है लक्षण।
कैसे भाषन कैसे बैठन, कैसे उसका ब्रजन।। (54)
श्री भगवानुवाच
जब वह त्याग देता है, अपने मन की सर्व कामना।
संतुष्ट हुआ करता है, तब आत्मेन ही आत्मना।स
"साधत–साधत जब वह, थिर बुद्धि हो जाता है।
वही पुरुष हे अर्जुन स्थितप्रज्ञ कहलाता है।। (55)
जिसका मन उद्वेगरहित है। दुख पाने में शांतिचित्त है।
सुख मिलने में नहीं स्पृहा। विगत हुए भय क्रोध अरू मोहा।
मननशील जो ऐसा रहता। स्थिर बुद्धि वही कहाता।। (56)

डॉ. ललन प्रसाद सिंह का 'गीता महाबोध' उत्कृष्ट साहित्यिक रचना है। साहित्य की कसौटी पर वह खरी उतरती है। विश्व मानव को चेतना सम्पन्न बनाने के साथ–साथ वह उन्हें तर्कशील, विवेकवान, ज्ञानी, परिपक्व, संवेदनशील व मानवीय बनाती है। 'गीता' मनुष्यता के पक्ष में सदैव खड़ी रही है। जिस तरह राम ने अपने जीवन को उत्सर्जित कर रावण जैसे शक्ति से टकराते हैं और समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्तियों के सहारे न केवल लंका विजय पाते हैं बल्कि उनसे मित्रता का संबंध बना यह संदेश देते हैं कि 'अस्पृश्यता' निम्न विचार वाले व्यक्तियों के मस्तिष्क की उपज है। जबकि सच है कि मानव मानव एक समान है और उस मानव में अपार शक्ति है जिसके बदौलत वे न सिर्फ दुसाध्य से दुसाध्य कार्य आसानी से कर पाते हैं बल्कि उस कार्य के महत्त्व से सबको चौंधिया देते हैं। छठी ईसा पूर्व शाक्यकुलभूषणम् गौतम बुद्ध ने भी अपने आचरण, दर्शन व त्याग से क्या राजा, क्या किसान, क्या व्यापारी, क्या शूद्र (अछूत) सबको जीत लिया था और उनके लिए नया दर्शन का द्वार खोल दिया था जहाँ किसी तरह के भेवभाव न थे। बाद में स्त्रियों को भी उन्होंने 'संघ' में जगह देकर समानता का शंखघोष किया।

कृष्ण ने जो गीता का संदेश दिया है शायद उस युग के लोग उनके इस विराट रूप का दर्शन कभी कर पाए हों! खुद अर्जुन भी कृष्ण को उतना नहीं जान पाया था। निरंजन कुमार' निर्भय' ने ''गीता संवाद'' काव्य पुस्तक की अपनी भूमिका में महर्षि व्यास को उद्धृत किया है जिसमें वे गीता के संबंध में कहते हैं –

कृष्ण योगेश्वर क्यों हैं? क्योंकि वह न सिर्फ योग–दर्शन के महान पंड़ित हैं बल्कि उनका पूरा जीवन योग से प्लावित व योगमय है! उन्हें उपनिषदेश्वर कहिए या सांख्येश्वर अतिशयोक्ति न होगी। और इसी कारण कृष्ण सबके प्रिय हैं।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरै।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

और 'गीता' में स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम।।

(गीता 9.32)

हे अर्जुन! स्त्री, शूद्र तथा पापयोनि चाण्डालादि जो भी मेरे शरण आते, वे परमगति को ही प्राप्त होते हैं। पर, यह देखने लायक है कि उसी 'गीता' में अर्जुन का वह दारुण रूप

व किंकर्तव्यमूढ़ की स्थिति भावक को उस स्थिति में लाकर खड़ा कर देता है जहाँ 'नाट्यशास्त्र' के गुणों की तरह वह सोचने पर बाध्य हो जाता है कि न जाने अर्जुन अपने गांडीव का इस्तेमाल करेगा या भी नहीं? डॉ. ललन प्रसाद सिंह काव्यकला के साधारणीकरण के सिद्धांत से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भावक या पाठक को वहाँ और उस स्तर पर ले जाते हैं जहाँ कोई भी कुशल कलाकार ले जाना चाहेगा। वे गीता के प्रथम अध्याय के 30–31 वाँ श्लोक का पद्यानुवाद इस तरह प्रस्तुत करते हैं–

मम हाथे गांडीव गिरंता। अंग–त्वच अति जलंता।।
भ्रमित होत जात मेरो मन। स्थित रहन समर्थ न तन।।
हे केशव! लक्षण विपरीता। कुलजन हन्ते नहीं देखी हिता।।

डॉ. ललन प्रसाद सिंह ने अष्टादश अध्याय के अंत में यानी 78वाँ श्लोक के पद्यानुवाद में जो तरलता दिखाई है और उससे जो समवेत् राय बनी है वह भी बड़ी अद्भुत है–

जहाँ श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। जहाँ पार्थ धनुर्धर हैं।।
वहीं विजय श्री व विभूति। वहीं मेरो अचल है नीति।।

कृष्ण योगेश्वर क्यों हैं? क्योंकि वह न सिर्फ योग–दर्शन के महान पंड़ित हैं बल्कि उनका पूरा जीवन योग से प्लावित व योगमय है! उन्हें उपनिषदेश्वर कहिए या सांख्येश्वर अतिशयोक्ति न होगी। और इसी कारण कृष्ण सबके प्रिय हैं। कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि श्री कृष्ण बचपन से ही स्त्रियों और बाद में स्त्री सखा की बदौलत ही कूटनीति व चतुराई का पाठ सहजता से पढ़ लिया। कृष्ण के लिए स्त्रियाँ सदा पाठशाला की तरह रही हैं और इसी वजह पुरुष रहते हुए भी उनमें पूर्ण मानवीय गुणों का विकास हुआ है। उनका यह कहना– ''मईया मोरी मैं नहीं माखन खायो।'' जीवन को आह्लाद से भर देता है! डॉ. ललन प्रसाद सिंह अपने ''गीता महाबोध'' में उस आह्लाद को पूरी तरह जी रहे हैं इस कामना के साथ कि आमजन का जीवन भी आह्लादमय हो। इसके लिए वे 'भक्ति' से ज्यादा 'कर्म' पर बल देते हैं। गीता का दर्शन 'कर्म' को केंद्र में स्थापित करता है। ध्यान से देखें तो गीता परजीवी लोगों को बड़ी दृढ़ता के साथ विरोध करता है। गीता के इस पद्यानुवाद से उस दृढ़ता व विरोध को बल मिला है। न्याय निमित लड़ना प्रत्येक मनुष्य का धर्म (फर्ज) है! और यही गीता का महान् संदेश भी।

डॉ. हरेराम सिंह, स्कूल व्याख्याता, उच्च माध्यमिक विद्यालय, रोहतास
ग्राम+पो. : करूप ईंगलिश, भाया : गोड़ारी, जिला : रोहतास–802214
मो. : 8298396621, ई–मेल : dr.hrsingh08@gmail.com

✧ ✧ ✧

''राष्ट्र की प्रगति में साहित्य का योगदान''

रूमन कुमारी

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया और साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की तथा सभ्य बनाने का काम किया। मानव की विचारधारा में परिवर्तन लाने का कार्य साहित्य द्वारा ही किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि किसी भी राष्ट्र या समाज में आज तक जितने भी परिवर्तन हुए वे सब साहित्य के माध्यम से ही हुए, उदाहरण स्वरूप फ्रांस की राज्य क्रांति के जन्मदाता वहाँ के साहित्यकार रूसो और वाल्टेयर हैं।

शोध सार :

साहित्य समाज का दर्पण है, साथ ही समाज और राष्ट्र का पथ प्रदर्शक भी। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से प्राप्त होती है। साहित्य लोक जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन–सहन, खान–पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है "ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है"।1 संस्कृत के विद्वानों के अनुसार साहित्य का अर्थ "हितेन सहितम्सहवासहितम्, तस्यभावःसाहित्यम्"। अर्थात् जिसमें हित का भाव, लोक–मंगल का भाव विद्यमान हो, वह साहित्य है। साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य समाज का मार्गदर्शन करना भी है। मैथिलीशरण गुप्त जी के शब्दों में–

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।"2

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी साहित्य की राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी बतलाई है, उन्होंने लिखा है, "साहित्य केवल

वाग–विलास का साधन नहीं होना चाहिए, उसे मनुष्यता का उन्नायक होना चाहिए।" परन्तु आज देश का साहित्यकार अपने कर्त्तव्य का पालन न करते हुए देशवासियों का ईमानदारी से पथ–प्रदर्शन नहीं कर रहा है।

बीज शब्दःसाहित्य, योगदान, उन्नति, उपयोगी, लोकहित, पथ–प्रदर्शक, क्रांति, परिस्थिति,जनमानस आदि।

मूल आलेख :

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया और साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की तथा सभ्य बनाने का काम किया। मानव की विचारधारा में परिवर्तन लाने का कार्य साहित्य द्वारा ही किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि किसी भी राष्ट्र या समाज में आज तक जितने भी परिवर्तन आए वे सब साहित्य के माध्यम से ही हुए, उदाहरण– फ्रांस की राज्य क्रांति के जन्मदाता वहाँ के साहित्यकार रूसो और वाल्टेयर हैं। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, विकृतियों, अभावों, विषमताओं आदि के बारे में लिखता है और इनके प्रति जनमानस में जागरूकता लाने का कार्य करता है। साहित्य जनहित तथा लोकमंगल के लिए होता है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है तो साहित्य जनमानस का पथ–प्रदर्शक बन मार्गदर्शन करता है। मानव समाज का एक अभिन्न अंग है, जीवन में मानव के साथ क्या घटित होता है उसे साहित्यकार अपने शब्दों में लिखकर साहित्य की रचना करता है। कवि और लेखक अपने समाज के मस्तिष्क भी हैं और मुख भी। साहित्यकार समाज के भावों को व्यक्त कर सजीव और शक्तिशाली बना देता है। इसके माध्यम से हम अपने राष्ट्रीय इतिहास से, अपने देश की गरिमा से, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से और अपने परंपरागत रीति–रिवाजों, आदर्शों एवं विचारों से परिचित होते हैं। प्राचीन काल में भारतीय सभ्यता अति समृद्ध थी। हमारी सभ्यता इतनी उन्नत थी कि हम आज भी उस पर गर्व करते हैं। कालांतर के बाद भारत सैकड़ों वर्षों तक गुलाम रहा। समाज और राष्ट्र की परिस्थितियाँ बदलती गई, साहित्य का स्वरूप भी बदल गया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने भविष्य के बारे में विचार व्यक्त किया, चिंता व्यक्त की–

"हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारे आज मिलकर यह समस्याएँ सभी।"3

हिंदी साहित्य में विभिन्न युगों के परिवर्तन बड़े ही स्पष्ट रूप से घटित हुए हैं। समस्त देश में जो सांस्कृतिक विचार धारा प्रसारित होती रही, वही कुछ अंतर के साथ विविध परिवेशों और आयामों में व्यक्त होती रही।

वेद प्रेरणाप्राद मंत्रों के महान सागर हैं। इनसे जीवन में महान प्रकाश एवं सहारा प्राप्त

होता है। जीवन के पथ में जब हम किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने को निराश्रित पाते हैं, उस क्षण वेदों के मंत्रों से निराशा की घनघोर घटा में विद्युत का एक स्फूरण होकर आशा का संचार करता है। जहाँ श्रीमद्भागवत गीता श्लोकों के माध्यम से मानव को नैतिक मूल्यों की शिक्षा तथा गीता दर्शन का बोध कराती है, वहीं रामायण में वर्णित उपदेश मानव–जाति को भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार का संदेश देते हैं। मानव जीवन की थाती के रूप में प्राचीन साहित्य जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में मानव के कल्याण हेतु उचित पथ प्रदर्शक का कार्य करता है।

आगे चल कर मध्य कालीन साहित्य एवं धार्मिक आंदोलन ने हिंदी साहित्य को कबीर, सूरदास, तुलसी, नानक, मीरा जैसे संतकवि दिए। इनकी कविताएँ इतनी लोकप्रिय एवं उत्कृष्ट है कि भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा गया। "भक्तिकालीन कवियों की कविता का स्वर मानवतावादी है। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण भक्त कवियों ने संकीर्ण मनोवृति से ऊपर उठकर मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए जनता को प्रेरित किया। विभिन्न वर्ग एवं वर्णों के वितण्डतावादी स्वरूप, वर्ग–संघर्ष, धार्मिक भेदभाव, विधि निषेधों से जर्जरित भारतीय जीवन में भक्ति आंदोलन मनुष्य सत्य के स्वपन को संजोता है। यह रूढिग्रस्त समाज और उसकी अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश तथा जिजीविषा की तीव्रतम अभिव्यक्ति थी। इस प्रकार मध्यकालीन भक्ति काव्य मूलतः सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में सामने आता है जिसमें भक्ति साधना का नहीं बल्कि भावना का विषय बन रही थी।"4

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय समाज और संस्कृति के जहाँ एक और उन्नायक हैं, वहीं दूसरी ओर सुधारक भी हैं। तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों, कुरीतियों, ऊँच–नीच, छुआ–छूत, जाति–पाती के भेद–भाव को दूर कर के तुलसीदास ने एक स्वस्थ समाज की स्थापना की। तुलसी के युग में जनता मुगलों के शोषण और आतंक से भयभीत थी। समाज में फैली विकृतियाँ, विसंगतियाँ, नैतिक विडंबनाएँ आदि से सामाजिक बंधनों का पतन हो रहा था। भारतीय समाज रूढ़ियों और धार्मिक बेड़ियों में जकड़ गया था।

अतः तुलसीदास के सामने सामाजिक संगठन का सबसे बड़ा दायित्व था। इस दायित्व को उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से पूरा किया। तुलसीदास 'कवितावली' में तत्कालीन समाज का चित्रण करते हैं,

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज, नचाकर कोचाकरी।"5

तुलसी की काव्य चेतना में जीवन मूल्य एवं मानव मूल्यों का समन्वय है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में मधुर आदर्श तथा उत्कर्ष की भावना 'रामचरितमानस' में सर्वत्र दिखाई देती है।

सीधे–सीधे ढंग से कही गई बात का वैसा असर नहीं होता जैसा कि काव्यात्मक ढंग से कही गई बात का होता है। महाराजा जय सिंह नई रानी के प्रेमपाश में बंद कर राजकाज से विमुख हो गए थे। राज्य के लिए शत्रुओं की ओर से खतरा हो सकता था। बिहारी जी के एक ही दोहे ने महाराजा को अपना कर्त्तव्य बोध करवा दिया।

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहीं विकास इहिकाल।
अली कली ही सोंबंध्यौ आगे कौन हवाल।।"6

भक्ति काल के कवियों में कबीर का स्थान सर्वोच्च है। इन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से समाज में फैले आडंबर, मिथ्या, पाखंड और कर्मकांड का डटकर विरोध किया। कबीर का उद्देश्य सिर्फ बुराई ढूँढकर वर्णन करने तक सीमित नहीं था, अपितु नए आदर्श और व्यावहारिक मापदंड स्थापित करना भी था। इन्होंने अपनी निम्नलिखित साखियों के माध्यम से समाज में फैली इन बुराइयों पर चोट की–

जिस प्रकार राजपूत राजा आपसी फूट के कारण शत्रुओं, विदेशियों के गुलाम हो गये थे, उसी प्रकार छुआछूत और साम्प्रदायिकता की भावना के बल पर अंग्रेज देश को कमजोर करने की चाल चल रहे थे। उस चाल को रोकने, देश को शक्तिशाली बनाने के लिए साहित्यकारों ने देशवासियों में समानता, भाईचारा, प्रेम की भावना भरने का प्रयास किया। प्रेमचंद जी आदि कथाकारों ने कहानियों, उपन्यासों के माध्यम से यह कार्य किया। प्रेमचंदजी ने 'कायाकल्प' उपन्यास में हिन्दू–मुस्लिम समस्या, किसानों की समस्या आदि पर प्रकाश डाला। 'गोदान' में किसान समस्या, 'निर्मला' में नारी समस्या, 'कर्मभूमि' में अछूतों की समस्या पर प्रकाश डाल कर राष्ट्र की प्रगति में योग दिया है।

"हिंदू मूआ राम कहि, मुसलमान खुदाई। "और
"ऊँचे कुल का जनमिया, जे करनी ऊँच–नीच न होइ। "और
"मोको कहाँ ढूँढ़े बंद, मैं तो तेरे पास में
नामैं देवल नामैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।"7

मध्यकालीन समाज धर्मांधता, गुलामी, सांस्कृतिक पतन के गर्त में फँसते जा रहा था। इस आवश्यकता को पहचान कर भूषण ने छत्रपति शिवाजी जैसे युग पुरुषों से प्रभावित होकर अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की अलख जगाई। तदनंतर सूर्यमल मिश्रण और केसरी सिंह बारहठ ने राष्ट्रीयता की भावना को आगे बढ़ाया।

भूषण की ओजपूर्ण कविता से पाठक वीर रस जनित शक्ति स्फूर्ति का अनुभव करता है और आनंद विभोर हो जाता है।

"इंद्र जिमि जंभ पर, बाडवसुअम्भ पर

त्यों मलेच्छ बंस पर सेर शिवराज हैं।।"8

इसी प्रकार राजपूतों की विस्मृत हो चुकी वीरता की भावना को पुनः जागृत करने का कार्य 'सूर्यमल मिश्रण' ने किया। 'मिश्रण' जी राष्ट्रीय विचारधारा और संस्कृति के पुरोधा रचनाकार रहे हैं। आंतरिक एवं बाहरी शक्तियों के दबाव के बीच किंकर्तव्यविमूढ़ राजपूती शासक परंपरागत राजपूती वीरता और सैनिक क्षमता खोते जा रहे थे। तब सूर्यमल मिश्रण ने उनमें राष्ट्रीय चेतना को जगाने का महत्वपूर्ण काम किया।

"इक डंडी गिण एकरो, भूले कुल साभाव
सूरा आलस ऐसे में, अकज गुमाई आव।"9

अर्थात् अंग्रेजी कंपनी का एकछत्र आधिपत्य देखकर भारत के शूरवीर अपने कुल के प्रभाव को भूल गए और अंग्रेजों के पराधीन हो गए। उन्होंने आलस्य और भोग विलास में जीवन व्यर्थ गंवा दिया।

इसी प्रकार केसरी सिंह बारहठ के लिए कविता क्रांति का हथियार थी। काव्य के माध्यम से यह तत्कालीन नरेश और जनता को समय–समय पर जगाते रहे। उनका 'चेतावणी राचूँगटिया' का दोहा हिंदी साहित्य में प्रसिद्ध है।

"घणघलियाघमसांण, राणा सदा रहिया निडर
पेरबता फुरमाण, हलचल किमफतमल हुवै।"10

अर्थात् अनगिनत व भीषण युद्ध लड़ने के बावजूद भी मेवाड़ के महाराणा कभी किसी युद्ध से न तो विचलित हुए और न ही कभी किसी से डरे। उन्होंने हमेशा निडरता ही दिखाई। लेकिन हे महाराणा फतेह सिंह! आपके ऐसे शूरवीर कुल में जन्म लेने के बावजूद लॉर्ड कर्जन के एक छोटे से फरमान से आपके मन में किस तरह की हलचल पैदा हो गई यह समझ से परे है।

जिस प्रकार राजपूत राजा आपसी फूट के कारण शत्रुओं, विदेशियों के गुलाम हो गये थे, उसी प्रकार छुआछूत और साम्प्रदायिकता की भावना के बल पर अंग्रेज देश को कमजोर करने की चाल चल रहे थे। उस चाल को रोकने, देश को शक्तिशाली बनाने के लिए साहित्यकारों ने देशवासियों में समानता, भाईचारा, प्रेम की भावना भरने का प्रयास किया। प्रेमचंद जी आदि कथाकारों ने कहानियों, उपन्यासों के माध्यम से यह कार्य किया। प्रेमचंदजी ने 'कायाकल्प' उपन्यास में हिन्दू–मुस्लिम समस्या, किसानों की समस्या आदि पर प्रकाश

डाला। 'गोदान' में किसान समस्या, 'निर्मला' में नारी समस्या, 'कर्मभूमि' में अछूतों की समस्या पर प्रकाश डाल कर राष्ट्र की प्रगति में योग दिया है। इसी क्रम में 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेंदु जी ने धर्म संबंधी आडंबरों और छुआछूत का विरोध कर आवाज बुलंद करते हुए लिखा" बहुत हमने फैलाये धर्म, बढाया छुआछूत का कर्म।"

19वीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना का मुख्य स्वरूप सामाजिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान था। बीसवीं शताब्दी मे राजनीतिक संघर्ष की समस्या बलवती हो गई। इस युग में भारतेंदु जी ने अतीत का गौरव गान किया, वर्तमान के प्रति असंतोष दिखाया और भविष्य के प्रति आस्थामई दृष्टि का परिचय दिया। इन्होंने न केवल हिन्दी खड़ी का मार्ग प्रशस्त किया बल्कि अपनी कालजई रचनाओं से हिंदी साहित्य को भी समृद्ध किया। हिन्दी को राष्ट्र–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उनका योगदान अविस्मरणीय है। भाषा प्रेम पर उनकी प्रसिद्ध कविता 'निज भाषा उन्नति' की ये पंक्ति भाषा आन्दोलन में प्रेरणा स्रोत रही–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा–ज्ञान के, मिटे न हिय को सूल।।"11

इसी क्रम में' माखन लाल चतुर्वेदी', 'जयशंकर प्रसाद', 'निराला', 'रामधारी सिंह दिनकर', 'सुभद्रा कुमारी चौहान' आदि साहित्यकारों ने देशवासियों में राष्ट्रीय भावना जगाने का प्रयास किया।

जयशंकर प्रसाद ने राष्ट्र के अतीत का गौरव गान कर देशवासियों के मन से हीन भावना दूर करने का प्रयास किया। प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटक 'चंद्रगुप्त' में कार्नेलिया के मुख से भारत के सांस्कृतिक मूल्यों की प्रशंसा करवाई है –

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।"12

राष्ट्रीय चेतना की अमर गायिका तथा वीर रस की एकमात्र हिंदी कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान 'झाँसी की रानी' तथा 'वीरों का कैसा हो बसंत' जैसी रचना लिखकर लाखों युवकों के हृदय में देश प्रेम की भावना को जगाने का काम किया। 'झाँसी की रानी' शौर्य गीत सुनकर हम देशभक्ति की भावना से हर्षित हो उठते हैं –

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,"13

'भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना अत्यंत उदात्त स्वर में दिखाई देती है। इनकी देश प्रेम से ओतप्रोत कविता 'पुष्प की अभिलाषा' की पंक्ति 'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक' कोई कभी नहीं भूल सकता। भारतीय स्वाधीनता सेनानियों के साथ जेल में किए गए दुर्व्यवहारों को अपनी कविता 'कैदी और कोकिला' में दर्शाया है। किस प्रकार लोगों में अंग्रेजों की अधीनता से मुक्त होने की भावना प्रबल हो उठती है–

"क्या? देखन सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश–राज का गहना,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुँआ।"14

महाकवि निराला जी अपने काव्य में आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विभिन्न समस्याओं को लेकर इनका समाधान खोजने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। निराला जी का समय स्वाधीनता आंदोलन का समय था। भारतीय संस्कृति के साथ दूसरी संस्कृतियों की टक्कराहट का समय था। ऐसे समय में परंपरा और आधुनिकता, जड़ता और गतिशीलता के बीच के द्वंद्व को दिखाते हुए और इनका समाधान प्रस्तुत किया। जीवन मूल्य से समाज को परिचित कराने के लिए निराला जी ने 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति' और 'तुलसीदास' जैसी महत्वपूर्ण कविताओं की रचना की। 'राम की शक्ति पूजा' में शक्ति का आह्वान करते हुए देशवासियों में शक्ति का संचार कर उनको जगाने का काम करते हैं। 'तुलसीदास' कविता में प्राचीन मूल्यों को पुनः स्थापित करते हुए दिखाई देते हैं। भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त होने पर देश में किस तरह अंधकार छाया हुआ है इसका मार्मिक चित्रण 'तुलसीदास' कविता में किया है। भारतीय संस्कृति किस प्रकार अधोगति को प्राप्त हुई, किस प्रकार एक कवि इस अंधकार को दूर करने की चेष्टा करता है –

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छा या सांस्कृतिक सूर्य
अस्मित आजरे–तमस्तूर्यदिङ्मण्डल य
उरके आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान य
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।"15

निराला मानवतावादी कवि हैं। उनके साहित्य में जन सामान्य या दीन दलितों के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति दिखाई देती है। 'सरोज स्मृति' में सामाजिक नीतियों और रूढ़ियों पर तीखा व्यंग्य किया है। 'कुकुरमुत्ता', 'वह तोड़ती पत्थर', 'जागो फिर एक बार' आदि कविताओं के माध्यम से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का संदेश दिया है।

हिंदी साहित्य में रामधारी सिंह 'दिनकर' जी की पहचान राष्ट्रकवि के रूप में है। उनका साहित्य राष्ट्रीय जागरण व संघर्ष के आह्वान का जीता जागता दस्तावेज है। 'दिनकर' जी के यहाँ राष्ट्रीय चेतना कई स्तरों पर व्यक्त हुई है। इनकी कविताएँ मूलतः ओज और तेज की कविताएँ हैं। जिनमें सुप्त और कायर व्यक्ति को जगाने की क्षमता है। मन में जोश भर देती हैं, अन्याय एवं अत्याचार का खुला विरोध मिलता है, असमानता, भेदभाव एवं शोषण के खिलाफ उग्र स्वर सुनाई देता है। 'कुरुक्षेत्र' में 'दिनकर' जी कहते हैं,

समरनिंद्य है धर्मराज, पर,
कहो, शांति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी
बनी हुई सरला है?
क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो ।
उसको क्या, जो दंतहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो ?16

इसी क्रम में साहिर लुधियानवी का गीत 'साथी हाथ बढ़ाना' हमें नैतिकता को ध्यान में रखकर ही आगे बढ़ना चाहिए की सीख सिखाता है,

"साथी हाथ बढ़ाना
एक अकेला थक जाएगा, मिलकर बोझ उठाना ।
साथी हाथ बढ़ाना।"17

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं। इन्हें' विप्लव–गायन' कविता से क्रांतिकारी कवि के रूप में ख्याति प्राप्त हुई। वे राष्ट्र को नव चेतना से भरने हेतु पुरानी, सड़ी–गली मान्यताओं के विनाश की बात करते हैं। विकास और गतिशीलता को अवरुद्ध करने वाली प्रवृत्तियों से संघर्ष करके नया सृजन करना चाहते हैं।

"कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ–
जिससे उथल–पुथल मत जाए,
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए।"18

निष्कर्ष :

साहित्य की राष्ट्र की दृष्टि से बड़ी उपयोगिता है। महान् साहित्यकारों की कृतियाँ राष्ट्र की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती हैं, राष्ट्र के लिए मार्ग दिखाती हैं, भविष्य के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करती हैं, गलतियों के बारे में सचेत करती हैं। हमारा साहित्य

नवयुवकों में, देशवासियों में अपनी सभ्यता, संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने वाला, देशभक्ति की भावना भरने वाला, छुआछूत आदि बुराइयों को दूर करने वाला रहा है। आज भारतीय साहित्यकारों का पवित्र कर्तव्य है कि वे ऐसे साहित्य का निर्माण करें जिससे राष्ट्र के आत्म– गौरव और गरिमा की वृद्धि हो।

सन्दर्भ :

1. डॉ विवेक शंकर, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.51
2. मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी, दशम संस्करण (1984), .पृ. 171
3. वही, पृ. 4
4. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (कक्षा–11 एवं 12), आर. एस. टी. बी., जयपुर, संस्करण–2016, पृष्ठ. 33
5. सटीक देवनारायण द्वेदी, तुलसीदास, कवितावली, प्रकाशक– एस. बी. सिंह, काशी पुस्तक भंडार चौक, बनारस, पृ. 203
6. प्रो. बिराज, बिहारी सतसई, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली–6, पृ. 33
7. क्षितिज भाग–1, एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 91, 92
8. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (कक्षा–11 एवं 12), आर.एस.टी.बी., जयपुर, संस्करण–2016, पृ. 83
9. सं. नरोत्तम दास स्वामी, नरेंद्र भाणावत, लक्ष्मी कमलय सूर्यमल मिश्रण, वीर सतसई, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, संस्करण–1988,पृ. 69
10. सं. नरोत्तम दास स्वामी, नरेंद्र भाणावत, लक्ष्मी कमलय सूर्यमल मिश्रण, वीर सतसई, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, संकरण–1988,पृ. 42
11. मंजरी, उ.प्रदेश, ISBN: 9788130933474, पृ. 27
12. जयशंकर प्रसाद,चंद्रगुप्त
13. वसंतभाग–1, एन.सी.ई.आर.टी, पृ.69
14. क्षितिज भाग–1, एन.सी.ई.आर.टी., पृ.108
15. निराला, तुलसीदास, राजकमल प्रकाशन, पृ. 11
16. सरयू, आर.एस.टी.बी. , जयपुर, ISBN : 978–93–87089–47–1, पृ. 38
17. वसंतभाग–1, एन.सी.ई.आर.टी., पृ.43
18. वसंतभाग–2, एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 141

रूमन कुमारी, 66 टाईप–III, सी.आई.एफ.एस. यूनिट एस.एस.जी., नोयडा (यू.पी.–201306)
मो. : 9968373330, ई–मेल : rumanraj.17@gmal.com

✧ ✧ ✧

मीठेश निर्मोही साहित्य अकादेमी

आलोक रावल

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली की ओर से नई दिल्ली स्थित 'कमानी सभागार' में सुप्रतिष्ठ मराठी लेखक, कवि एवं आलोचक भालचंद्र नेमाडे के मुख्य आतिथ्य में साहित्य अकादेमी पुरस्कार 2021 अर्पण समारोह सम्पन्न हुआ।

समारोह में 24 भाषाओं के पुरस्कार विजेता साहित्यकारों में शामिल राजस्थानी और हिन्दी के सुप्रतिष्ठ कवि, कथाकार आलोचक, संपादक, तथा अनुवादक मीठेश निर्मोही को उनकी राजस्थानी काव्य कृति 'मुगती' के लिये देश के सर्वोच्च एवं सुप्रतिष्ठ साहित्य अकादेमी पुरस्कार 21 से समादृत किया गया।

समारोह में अकादमी के सचिव के. श्रीनिवास राव ने निर्मोही के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को रेखांकित कर, अकादमी के उपाध्यक्ष डॉ. माधव कौशिक ने माल्यर्पण कर तथा अध्यक्ष डॉ. चन्द्रशेखर कंबार ने मीठेश निर्मोही को साहित्य अकादमी की ओर से शॉल, प्रशस्ति पत्र एवं पुरस्कार स्वरूप एक लाख रुपये की राशि का डी. डी. भेंट किया।

ज्ञातव्य रहे कि मीठेश निर्मोही जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर से प्रथम श्रेणी से दर्शन शास्त्र में एम. ए. तथा जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर से प्रथम श्रेणी प्रथम स्थान (तीन गोल्ड मेडल –

विश्वविद्यालय, थानचंद मेहता एवं राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर प्रदत्त) से राजस्थानी साहित्य में एम.ए. हैं। आप राजस्थानी भाषा के संवैधानिक मान्यता के आन्दोलन से भी सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं। आपने राजस्थानी साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका ''आगूंच'' का वर्षों तक संपादन भी किया है।

आपके राजस्थानी में ''आपै रै ओलै ओलै–दोलै ''तथा ''मुगती'' (कविता संग्रह), अमावस, एकम अर चाँद (कहानी संग्रह), आधुनिक राजस्थानी कविताओं, आज की राजस्थानी कहानियाँ, तथा राजस्थानी साहित्य पद्य संग्रह (संपादित) और हिन्दी में ''चेहरों की तख्तियों पर ''एवं'' चिड़िया भर शब्द ''(कविता संग्रह) तथा ''शब्द की संगत'' (संपादित कविता संग्रह) प्रकाशित हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली तथा नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली आदि से प्रकाशित 46 संकलनों में आपकी कविताएँ, कहानियाँ और अन्य रचनाएँ संकलित हैं।

मीठेश निर्मोही को जो पुरस्कार इससे पहले मिले

मीठेश निर्मोही को राजस्थानी कहानी संग्रह 'अमावस एकम अर चांद' पर राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर प्रदत्त प्रसिद्ध 'मुरलीधर व्यास राजस्थानी कथा साहित्य पुरस्कार' (2005) तथा इससे पहले वर्ष 1987 में उनकी राजस्थानी कहानी 'बंधण' पर विपुला (तेलगु पत्रिका) द्वारा आयोजित सर्व भाषा कथा प्रतियोगिता में सैकिंड प्राइज मिल चुका है। इन पुरस्कारों के अतिरिक्त उन्हें वर्ष 1988 में 'ज्ञान भारती, कोटा' से हिन्दी कविता संग्रह ''चेहरों की तख्तियों पर'' महाकवि निराला पुरस्कार, वर्ष 2007 में हिन्दी कविता संग्रह ''चिड़िया भर शब्द'' पर राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर प्रदत्त ''सुधीन्द्र कविता पुरस्कार'', वर्ष 2009 में ''ओ मृत्यु! (हिन्दी कविता) पर अखिल भारतीय स्तर राजस्थान पत्रिका प्रदत्त ''सृजनात्मक साहित्य पुरस्कार''।

2010 में हिन्दी कविता संग्रह ''चिड़िया भर शब्द'' पर शिव वीणा संस्थान, कोटा से राष्ट्रीय स्तर पर ''श्रीमती कांता वर्मा साहित्य पुरस्कार'', वर्ष 2012 में उनके समग्र रचना कर्म पर ''पाँचवां अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन, तासकंद–उज्बेकिस्तान प्रदत्त ''सृजनश्री सम्मान'', वर्ष 2013 में त्रिसुगंधि कला, साहित्य एवं संस्कृति संस्थान, जालौर प्रदत्त ''कवि पद्मनाभ सम्मान'', वर्ष 2018 में पन्द्रहवें अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन, मास्को–रूस प्रदत्त ''श्री सलेक चंद जैन अन्तरराष्ट्रीय'' साहित्य सम्मान तथा वर्ष 2021 में ही उन्हें पीस पोएट हू चेंज द वर्ल्ड (वर्ल्ड आइकॉन ऑफ लिटरेचर) पुरस्कार तथा राजस्थानी कविता संग्रह 'मुगती' पर 'गोइन्का फाउण्डेशन, बंगलौर' प्रदत्त एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपये के 'मातुश्री कमला गोइन्का राजस्थानी साहित्य पुरस्कार' से समादृत किया जा चुका है।

आलोक रावल, सह सचिव, कथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थान, जोधपुर।

✧ ✧ ✧

'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत एवं आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की पावन स्मृति पर संगोष्ठी'

कवि नये–नये शब्दों को गढ़ता है
–डॉ0 सदानन्द प्रसाद गुप्त

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत एवं आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की पावन स्मृति पर संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 20 मई, 2022 को पूर्वाह्न 9.30 किया गया।

डॉ0 सदानन्द प्रसाद गुप्त, मा0 कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की अध्यक्षता में आयोजित संगोष्ठी में सम्माननीय अतिथि डॉ0 प्रेमशंकर त्रिपाठी, कोलकाता; डॉ0 कलानाथ मिश्र, पटना एवं डॉ0 आनन्द कुमार सिंह, भोपाल व्याख्यान हेतु पधारें।

अभ्यागतों का स्वागत करते हुए श्री पवन कुमार, निदेशक, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान ने कहा– उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत और आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की पावन स्मृति को समर्पित इस संगोष्ठी में पधारें। सभी विद्वानों का उ0प्र0 हिन्दी संस्थान

परिवार स्वागत एवं अभिनन्दन करता है। हमारे लिए यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर व्याख्यान देने हेतु पटना से डॉ0 कलानाथ मिश्र हमारे बीच पधारे हैं। आज हिन्दी साहित्य में छायावाद के नाम से प्रसिद्ध काल खण्ड के प्रमुख हस्ताक्षर सुमित्रानन्द पंत जी की जयंती है, उन्हें प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में स्मरण किया जाता है। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर चर्चा करने हेतु भोपाल से डॉ0 आनन्द कुमार सिंह जी उपस्थित हैं। हम उनका स्वागत एवं अभिनन्दन करते हैं। इसी क्रम में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विद्वान आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री जी का भी जन्म दिवस माई माह में मनाया जाता है, उनका स्मरण करते हुए हम विशेष आभारी है, डॉ0 प्रेमशंकर त्रिपाठी जी के प्रति जो कोलकता से हमारे बीच पधारे हैं और आचार्य शास्त्री जी के विराट व्यक्तित्व एवं उनके रचना संसार से हमें परिचित करायेंगे। मा0 कार्यकारी अध्यक्ष महोदय के प्रति भी हम हृदय से आभारी हैं। आपके कुशल मार्ग दर्शन में हिन्दी संस्थान अपनी साहित्यिक गतिविधियों में निरन्तर सजग है। निराला जी की सरस्वती वंदना को सस्वर हमारे मध्य प्रस्तुत करने वाली डॉ0 पूनम श्रीवास्तव को भी शुभकामनाएँ। पत्रकार बंधुओं, मीडिया कर्मियों एवं हमारे अनुरोध पर पधारें सभी साहित्य अनुरागियों, हिन्दी प्रेमियों का भी स्वागत एवं अभिनन्दन है। आशा है स्मृति समारोह के अवसर पर आयोजित इस संगोष्ठी में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों से हम सभी लाभान्वित होंगे। शुभकामनाएँ।

डॉ0 कलानाथ मिश्र ने कहा – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व प्रभावशाली था, सच्चे अर्थों में वे महावीर थे। वे भाषा वैज्ञानिक, समाज सुधारक, युगप्रर्वतक, चिन्तक, सम्पादक, आलोचक थे। द्विवेदी जी नव जागरण तथा राष्ट्रीय एकता के लिए समर्पित थे, उनकी रचनाओं में इसकी व्यापक झलक मिलती हैं। वे कहते थे कि ज्ञान का विकास विवेकपूर्ण चिन्तन से ही हो सकता है, वाणी को परिभाषित किये जाने की आवश्यकता पर बल देते थे। उनका कहना था कि जो समर्थ होते हुए भी साहित्य की सेवा व अभिवृद्धि नहीं करता है, उसे समाज विरोधी की संज्ञा देते थे। वे आध्यात्मिकता से भी काफी प्रभावित रहे। सरस्वती पत्रिका का सम्पादन करके साहित्यिक क्षेत्र में पथ–प्रदर्शक के रूप में जाने जाते हैं, भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। वे अनुवादक के रूप में साहित्यिक परिदृश्य पर अमिट छाप छोड़ गये हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी साहित्य के क्षेत्र में युग पुरुष के रूप में जाने जाते है। 'प्रिय प्रवास' उनकी चर्चित व महत्वपूर्ण रचनाओं में है। उन्होंने खड़ी बोली में भी काफी कार्य किया।

डॉ0 आनन्द कुमार सिंह ने कहा– पंत जी को मिश्र बंधुओं ने कहा था कि सुमित्रानन्दन पंत जी साहित्यिक मापदण्डों को पूर्ण करते हुए महाकवि की संज्ञा प्रदान की थी। पंत जी ने खड़ी बोली के स्वर को बदल दिया। पंत जी के काव्य में पल्लव, उच्छ्वास महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। अज्ञेय जी ने कहा था कि पंत जी से भावी रचनाकार पीढ़ी सीखने का कार्य करेगी। पंत जी ने ब्रजभाषा काव्य की आलोचना करते हुए कहा कि खड़ी बोली की

स्वर्णिम आशा की कल्पना की थी। खड़ी बोली की महत्ता का वर्णन करते हुए पंत जी ने कहा खड़ी बोली साहित्य के क्षेत्र में स्वर्णिम अध्याय जोड़ेगी व मार्ग प्रशस्त करेगी। उनकी मान्यता थी कि खड़ी बोली साहित्य को गद्य एवं काव्य में समृद्ध करेगी। पंत जी बिम्ब विधान की परिकल्पना करते हुए लिखते हैं कि काव्य को परिपूर्ण करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। पंत प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उनका मानना था कि काव्य में संगीतात्मकता प्रधान तत्व है। वे सवैया एवं कविन्त में परिमार्जन के पक्ष में थे। पंत जी की कविता में कल्पना जगत की प्रधानता है। उनकी पल्लव व गुंजन काव्य रचना साहित्य जगत में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पंत जी का मानना था कि काव्य में सदैव परिमार्जन की आवश्यकता होती है।

सहारा

चिन्तन से ज्ञान का विकास : कलानाथ

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की स्मृति में संगोष्ठी का आयोजन

डॉ0 प्रेमशंकर त्रिपाठी ने कहा– आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी आधुनिक काल के आलोचक रहे हैं। शास्त्री जी की संस्मरणकारों में अग्रणी भूमिका रही है। वे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। सम्मोहक वक्ता थे। आलोचक विद्वान, लेखक, राजनीतिज्ञ थे। शास्त्री जी के साहित्य की चर्चाएँ कम हुई हैं। शास्त्री जी ने संस्मरण, आलोचना व रिपोतार्ज लेखन में अपनी महत्वपूर्ण लेखनी चलायी। उनकी लगभग 30 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। शास्त्री

जी को जानने के लिए उनके साहित्य में प्रवेश होकर ही जाना जा सकता है। शास्त्री जी ने कहा कि प्रभावित करना तथा प्रभावित होना जीवंतता का प्रमाण है। शास्त्री जी ने पथ के पड़ाव को मंजिल नहीं मानी। उनमें राष्ट्रीयता का भाव प्रचुरता से रही। 'सुधियाँ उस चन्दन के वन की संस्मरणात्मक रचनाओं में महत्वपूर्ण रही है। 'आलोक हुआ अपना–पन' भी संस्मरणात्मक रचनाओं में शास्त्री जी ने रामविलास शर्मा व अमृत राय, धर्मवीर भारती तथा बाबा नागार्जुन पर भी संस्मरण लिखा। वे अपने विरोधी विचारधारा वाले साहित्यकारों के सम्बन्ध में सहजभाव से रचना करते थे। वे सिद्धहस्त कवि व प्रवचनकार थे। 'प्रखर मेघा अडिग विश्वास' रामविलाश शर्मा पर लिखा महत्वपूर्ण संस्मरण है।

अध्यक्षीय सम्बोधन में **डॉ0 सदानन्दप्रसाद गुप्त,** मा0 कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने कहा – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को साहित्य जगत में कम मूल्यांकन किया गया जो कि चिंता का विषय है। द्विवेदी जी का समय मातृ भाषा को महत्व देने का रहा है। उनका मानना था कि मातृ भाषा के बिना स्वराज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। मौलिकता अपनी भाषा में ही व्यक्त की जा सकती है। द्विवेदी जी का जीवन तप व तपस्या का जीवन है। वे राष्ट्रभाषा के मूर्तिवान स्वरूप हैं, समालोचक के रूप में उनका स्थान अग्रणी रहा है। द्विवेदी जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी रहे। पंत की 'पल्लव' रचना महत्वपूर्ण रही है। पंत को शिल्प व सौन्दर्य का कवि कहा गया है। पंत के लिए प्रकृति एक दूसरा संसार है मानते हुए अपनी रचनाएँ की। पंत छायावाद को व्यक्तिनिष्ठ नहीं बल्कि मूल्यनिष्ठ मानते है। पंत की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के तत्व विराजमान हैं। पंत जी हमारे सामने मानवतावादी रचनाकार के रूप में आते हैं। भारत में मानवतावाद चराचरवाद के रूप में हमारे सम्मुख आता है। विष्णुकांत शास्त्री जी में सम्मोहनकारी क्षमता थी। शास्त्री जी बंग्ला भाषा अनुवाद कार्य भी किया है। शास्त्री जी का मानना था कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए साधना की आवश्यकता होती है। कवि नये–नये शब्दों को गढ़ता है। शास्त्री जी पण्डित्यपूर्ण, आत्माभिमानी, सहज व्यक्तित्व के धनी थे।

डॉ0 अमिता दुबे, सम्पादक, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान ने कार्यक्रम का संचालन किया। इस संगोष्ठी में उपस्थित समस्त साहित्यकारों, विदुत्तजनों एवं मीडिया कर्मियों का आभार व्यक्त किया।

डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

✧ ✧ ✧

'अंग जनपद की साहित्य को संजोने में हरिलाल कुंज जी का अतुलनीय योगदान है! डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह लिखित 'पूर्वोत्तर भारत के संत–साहित्यकार : हरिलाल कुंज' में उनका अद्भुत वर्णन है जो आगामी पीढ़ी के लिए पठनीय है। हरिकुंज जी की यात्रा पार्टी ने नेपाल महाराज से सम्मान प्राप्त किया था जो वस्तुतः अंग जनपद का सम्मान है!'

पूर्वोत्तर भारत के अध्यात्म, कला, साहित्य, संस्कृति और फोटोग्राफी के केन्द्र थे हरिलाल कुंज जी : पूर्णिमा

मनाई गई श्री हरिलाल कुंज की जन्मशती–समारोह

उक्त बातें सोमवार 13 जून 2022 को, स्थानीय स्वामी विवेकानंद पथ (बुढ़ानाथ चौक) अवस्थित 'एसएमएस मिशन स्कूल' में, 'बिहार बंगाली समिति चंपानगर' एवं 'बरारी शाखा भागलपुर' और 'भाषा क्रिस्टीर मेला मिलन भागलपुर' के संयुक्त तत्वावधान में, पूर्वोत्तर भारत के लब्ध प्रतिष्ठ संत–साहित्यकार एवं अंगजनपद के सांस्कृतिक महाप्राण श्री हरिलाल कुंज की जन्मशती समारोह में, बतौर मुख्यअतिथि बिहार के पूर्व सूचना उपनिदेशक श्री शिवशंकर सिंह पारिजात ने कही।

अध्यक्षता करते हुए तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त बंगला विभागाध्यक्ष प्रोफेसर (डॉ.) विनय

कुमार माहता ने कहा– 'बंगला के सुविख्यात साहित्यकार डॉक्टर बलायचांद मुखोपाध्याय 'वनफूल' जी के साथ हरिलाल कुंज जी से मेरा परिचय हुआ था और फिर तो मैं उन्हीं का होकर रह गया। हरिबाबू बंगला भाषा एवं कई वाद्ययंत्रों के बहुत अच्छे जानकार होने के साथ–साथ बहुत ही सधे हुए फोटोग्राफर थे!'

विशिष्ट अतिथि श्री पारस कुंज ने कहा– 'मेरे पिता श्री हरिकुंज जी एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। उन्होंने 'श्री मीरा जयंती महोत्सव' के माध्यम से सम्पूर्ण भारत में महिलाओं को न सिर्फ सम्मान ही दिलवाया बल्कि उनकी तलाश कर महिला–वक्ता के तौर पर उन्हें प्रस्तुत किया और खासकर रंगमंच पर महिला प्रतिभाओं को उजागर किया। जिसकी प्रमाण हैं– वृन्दवादन की देवी शकुन्तला गोस्वामी, पलामू की मानसकोकिला कृष्णा मिश्र, प्रसार भारती की बिनेदवाला सिंह, वैष्णव दासी, उमा भारती, डॉ. शारदा देवी वेदालंकार, डॉ. मीना सिंह, डॉ. राधा शुक्ला, मीना तिवारी, अभिलाषा गुप्ता आदि!'

विशिष्ट अतिथि अंग्रेजी के प्रतिष्ठित पत्रकार श्री गौतम सरकार ने कहा– 'अपने बचपन में भागलपुर के बंगालीटोला की कालीबाड़ी और दुर्गाबाड़ी में होने वाले यात्रापार्टी के कार्यक्रमों में हरिकुंज जी को वायलिन, हारमोनिया और चाँदखोल बजाते हुए देखा करता था। तब मैं उन्हें जानता भी नहीं था बावजूद इसके उनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक और प्रभावशाली लगता था, मन करता कि उन्हें देखता ही रहूँ!'

हरिकुंज जी की तृतीय सुपुत्री श्रीमती पूर्णिमा रामजी केसरी ने कहा– 'श्री हरिलाल कुंज जी पूर्वोत्तर भारत के अध्यात्म, कला, साहित्य, संस्कृति और फोटोग्राफी के केन्द्र थे। बचपन से मैं उनके साथ मीरा जयंती तथा श्रीमती चमेली कांजीलाल जी की 'संगीत भारती' में भी जाती थी और उनके निर्देशन में नृत्य सीखा करती थी। मैं बहुत ही बड़भागी हूँ कि वे मेरे स्वनामधन्य पिता जी थे! आज उनकी जन्मशती समारोह कर आपने एक पुनीत कार्य किया है। इसके लिए आयोजकों के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ!'

प्रसिद्ध पत्रिका 'उल्लू' के संपादक हास्य–व्यंग्य कवि श्री अश्विनी कुमार 'भागलपुरी' ने कहा – 'श्री हरिलाल कुंज जी से मुझे, मारबाड़ी पाठशाला के मेरे शिक्षक पंडित दामोदर शास्त्री ने मिलवाया था। तभी से मैं उनका भक्त हो गया था। साहित्यिक आयोजनों सहित उनकी 'गौरांग संकीर्तन' के साप्ताहिक कार्यक्रमों में हनुमान बनकर उनके साथ–साथ रहा करता था। उनका वायलिन ढ़ोता रहता था। शानदार व्यक्ति थे हरिबाबू!'

पूर्व नगर पार्षद श्री विरेन्द्रनारायण सिंह 'मनोज' ने कहा– 'हरिकुंज जी! जिन्हें मैं हरिचाचा कहा करता था। उन्होंने शोखिया फोटोग्राफरों का एक 'अमेच्योर फोटोग्राफर्स

एसोसिएशन' बनाया था, जिसके अध्यक्ष बरारी स्टेट के श्री केशव मोहन ठाकुर थे और सचिव मैं था। उसमें नगर के सुविख्यात चिकित्सक डॉक्टर अजय कुमार मित्रा 'कातू बाबू', बिहार कृषि महाविद्यालय सबौर के प्रोफेसर एम. ए. मतिन, एवं श्री शैलेन्द्र सर्राफ आदि भी थे। हरिकुंज चाचा हमलोगों को फोटोग्राफी की बारीकियाँ को सिखाते और बताते थे। वे कला के बहुत बड़े साधक थे और वैसा ही अद्भुत व्यक्तित्व था उनका!'

श्री हरिलाल कुंज जन्मशती समारोह के आरंभ में छोटी–सी नन्हीं बच्ची बेबी रेबेका तुहीना दत्ता ने रविन्द्र संगीत 'जोदि तोमार डाक सुने ना कोई, तुमी ऐकला चलो रे'... पर एक सुंदर भावनृत्य प्रस्तुत किया।

इस अवसर पर 'एसएमएस मिशन स्कूल' के शिक्षाविद निदेशक श्री कौशल किशोर सिंह ने हरिकुंज जी पर लिखा श्री आनन्द शंकर माधवन जी बड़ा ही रोचक और दुर्लभ संस्मरण– 'भागलपुर में है ही क्या हरिकुंज और उनकी चित्रशाला के!'... बहुत ही सारगर्भित अंदाज में सुनाया।

रंगकर्मी अभिनेता डॉ. जयंत जलद ने हरिकुंज जी के संदर्भ में अपने रोचक – संस्मरण सुनाने हुए उनके लिखे एक गीत – 'मेरे नयनों के पानी, बेदर्दी दुनिया ने तेरी विरह व्यथा न जानी!' ... को सस्वर गाकर सुनाया।

प्रसार भारती भागलपुर के सेवानिवृत्त संगीत प्रभारी सुरमणी पंडित शंकर मिश्र नाहर ने कहा– 'हरिकुंज जी मेरे 'हरिचाचा' थे! मैं जब बड़ा हुआ और संगीत से जुड़ा, तो मुझे देख–सुन कर उन्होंने मेरे पिता पंडित केदारनाथ मिश्र 'नाहर' से कहकर मुझे अपने पास बुलवाया। तब से ही मैं उनके सानिध्य मैं आया और संगीत की बारीकियों से परिचित हुआ। सचमुच वे संगीतकला के मर्मज्ञ और पारखी थे!'

'बिहार बंगाली समिति बरारी शखा अध्यक्ष श्री तरूण घोष, सचिव श्री असीम कुमार पाल, चंरानगर शाखा की सचिव श्रीमती काकुली बनर्जी 'भागलपुर रंग महोत्सव' के संयोजक श्री दीपक कुमार ने मंचासीन अतिथियों का पुष्पगुच्छ देकर सम्मानित किया।

उपरोक्त के अलावा जन्मशती उत्सव में, श्री हरिकुंज जी की तृतीय पुत्रवधु श्रीमती राधा पारस कुंज, द्वितीय सुपौत्र श्री सावन चंदन कुमार, चतुर्थ सुपौत्री सुश्री शिल्पी पारस कुंज सहित डॉ. लीना दत्ता, सर्वश्री कुमार योगेन्द्र, देवाशीष बनर्जी, दीपक कुमार केसरी, सबोध कुमार भौमिक, सुमित मिश्र नाहर, कालीचरण चक्रवर्ती, उदय चंद्र आचार्या आदि उपस्थित थे।

समारोह का संयुक्त संचालन 'बिहार समिति के प्रदेश अध्यक्ष सर्वश्री तापस घोष और रौशन कुमार रवि ने किया।

जे.डी.विमेन्स कालेज एवं विश्व संस्कृत हिन्दी परिषद के संयुक्त तत्वावधान में 'साहित्य और पर्यावरण' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में उपस्थित गणमान्य साहित्यकारों के साथ डॉ. कलानाथ मिश्र।

आयाम की एक दिवसीय साहित्योत्सव के उद्‌घाटन के अवसर पर अरूण कमल, मदन कश्यप, उषाकिरण खान, आलोक धन्वा, वीणा अमृत आदि।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

नृपेंद्र नाथ गुप्ता

1 सितम्बर 1934 - 12 जून 2022

स्मृति शेष श्री नृपेंद्र नाथ गुप्ता प्रशासनिक सेवा से संबंधित अधिकारी होने के साथ एक बड़े भाषाविद् और साहित्यकार के रूप में विख्यात हुए। वैसे तो हिंदी साहित्य के सांगोपांग विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है लेकिन राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को महत्त्व दिलाने की दिशा में उनका उत्साह सदैव पुण्य-स्मरणीय रहा है। राष्ट्रभाषा हिंदी और हिंदी साहित्य की सेवा के निमित्त वे 'नव भाषा भारती संवाद' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का संपादन/प्रकाशन भी करते थे।

हिंदी साहित्य में उनकी ख्याति का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि वर्ष 2008 ई में उनके 75 में जन्मोत्सव के अवसर पर अमृत महोत्सव के रूप में उनके ऊपर केंद्रित 'राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवी' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया गया जिसमें पूर्व प्रधानमंत्री-कवि अटल बिहारी बाजपेयी ने शुभकामना संदेश लिख भेजा था।

निश्चित रूप से उनका शरीर-त्यागना हिंदी भाषा और साहित्य के लिए एक अपूरणीय क्षति है। साहित्य यात्रा परिवार उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करता है।

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685